मेरी भावना

(प्रवचन)

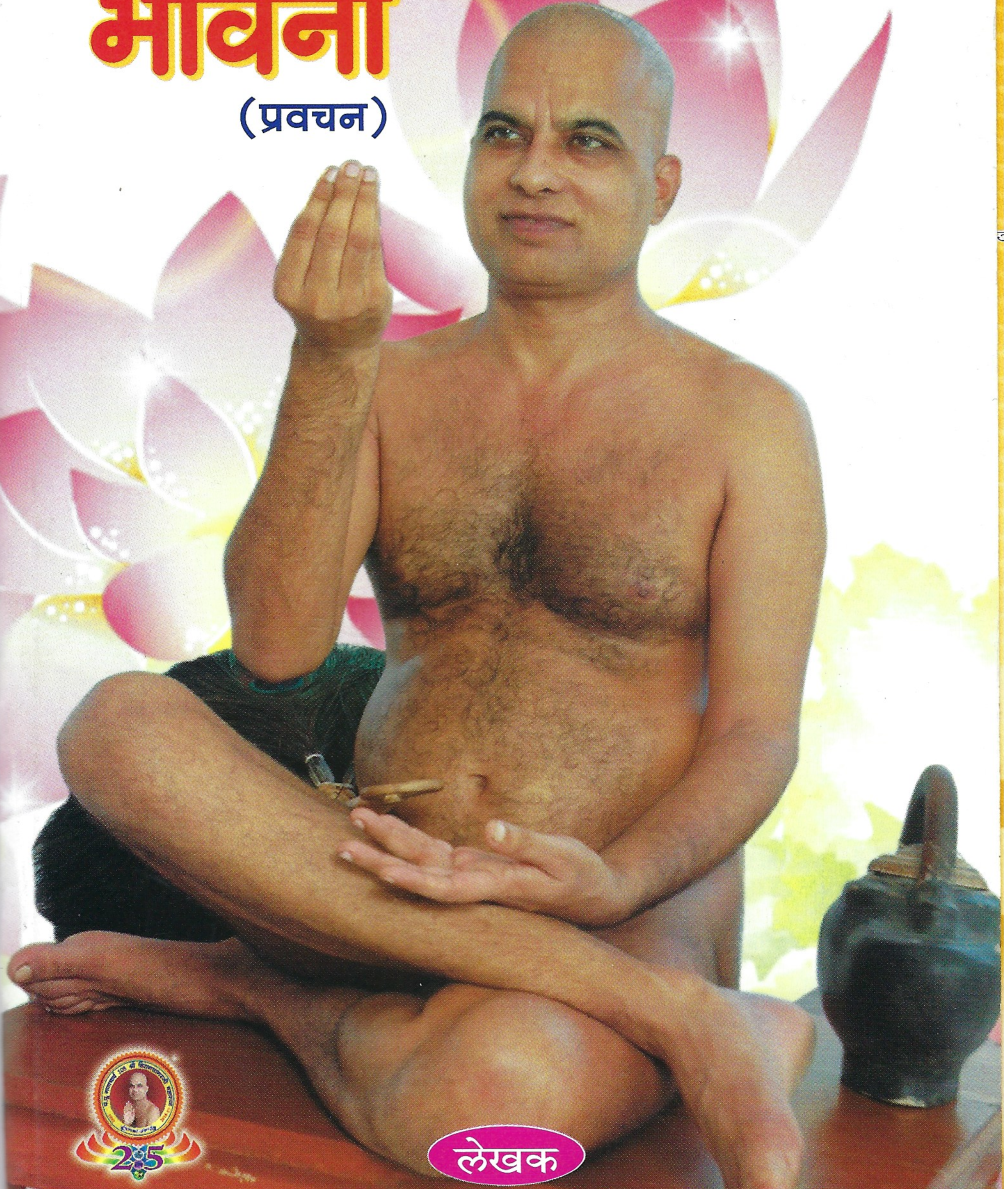

लेखक

प. पू. राष्ट्रसंत युगप्रमुख श्रमणाचार्य, गणाचार्य श्री 108 विरागसागरजी महाराज

परम पूज्य गणाचार्य श्री 108 विरागसागर जी महाराज से संबंधित भजन-प्रवचन एवं कार्यक्रमों की ऑडियो व विडियो सी.डी.।

पुण्यार्जक

[redacted]. श्रीमान् कैलाशचंदजी-श्रीमान् राजकुमार
श्रीमती संगीता पवैया, सदर बाजार, भिण्ड (म.प्र.)

प्रसंग

परम पूज्य युगप्रमुख श्रमणाचार्य, राष्ट्रसंत, गणाचार्य श्री 108 डॉ. विरागसागरजी महाराज के ''**राष्ट्रीय रजत आचार्य पदारोहण महोत्सव**'' वर्ष 2016-2017 के सुअवसर पर

* * *

कृति

मेरी भावना प्रवचन

प्रवचन

प.पू. राष्ट्रसंत गणाचार्य श्री 108 विराग सागर जी महाराज

* * *

प्रेरणा

पू. श्रमणी आर्यिका श्री 105 विशिष्ट श्री माता जी

* * *

संकलन

आर्यिका 105 श्री विवक्षा श्री माता जी

* * *

संपादन

आर्यिका श्रमणी श्री 105 विदक्षा श्री माता जी

* * *

प्रकाशक

श्री सम्यग्ज्ञान दिगम्बर जैन विराग विद्यापीठ

बताशा बाजार भिण्ड (म.प्र.)

प्रसंग : परम पूज्य युगप्रमुख श्रमणाचार्य, राष्ट्रसंत, गणाचार्य श्री 108 डॉ. विरागसागरजी महाराज के ''राष्ट्रीय रजत आचार्य पदारोहण महोत्सव'' वर्ष 2016-2017 के सुअवसर पर

कृति : मेरी भावना 'प्रवचन'

प्रवचन : प.पू. उपसर्ग विजेता गणाचार्य श्री 108 विरागसागरजी महाराज

प्रेरणा : पू. श्रमणी आर्यिका श्री 105 विशिष्ट श्री माता जी

संकलन : श्रमणी आर्यिका श्री 105 विवक्षा श्री माता जी

सम्पादन : श्रमणी आर्यिका श्री 105 विदक्षा श्री माता जी

संस्करण : 2010 प्रथम भीण्डर (राज.)
नवम्बर 2016 द्वितीय, भिण्ड (म.प्र.)

प्रतियाँ : 1000

पुण्यार्जक : स्व. श्रीमान् कैलाशचंदजी
श्रीमान् राजकुमार-श्रीमती संगीता पवैया
सदर बाजार, भिण्ड (म.प्र.)

प्राप्ति स्थान :
1. श्री सम्यग्ज्ञान दिगम्बर जैन विराग विद्यापीठ
चैत्यालय मंदिर, बतासा बाजार, भिण्ड (म.प्र.)
संपर्क सूत्र-पं. वीरेन्द्र जैन, मो. 9754803220
2. आचार्य श्री विरागसागर विद्यापीठ (बी.एड. कॉलेज)
पुष्प विहार कॉलौनी, बीना- 470113,
जिला- सागर (म.प्र.) मो. 9425135816
3. विराग फाउण्डेशन
सी/ओ, श्री अरुण कोटडिया, 11-ए. विक्रम नगर सोसायटी, उस्मानपुरा, अहमदाबाद- 380013 (गुज.)
मो. 9825900124
4. श्री भूपेन्द्र शांतिलाल शाह
13, वृंदावन सोसायटी, डेरी रोड, मेहसाना-2 (गुज.)
मो. 9898494914, 9829452020
5. विराग महिला मंच, बोरीवली, मुंबई (महा.)
6. पुष्पा जी, जयपुर (राज.)
7. तिलोक प्रिंटिंग प्रेस, बीकानेर
8. पंकज जैन, विराग युवा मंच, इन्दौर (म.प्र.)

मुद्रक : तिलोक प्रिंटिंग प्रेस
बीकानेर मो. 9314962474/75

कृतिकार का परिचय

अपनी अलौकिक ज्ञानधारा से अखिल विश्व में ज्ञानज्योति के उद्योतक, दार्शनिक-वैज्ञानिक, अद्वितीय चिंतनकार, अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग धारा से प्रवाहित समस्त शिष्यों को न्याय-तर्क, नय-युक्ति, सिद्धान्त-व्याकरण, अध्यात्म-आगम के गूढ़ात्मक रहस्यों का सरल-सुलभ रीति से अध्ययन कराने वाले निपुण अध्यापक, अनेकानेक शास्त्रों के गहन तल स्पर्शी अध्ययनकार, मंथन-चिंतन से लब्ध नवनीत सम शुद्धोपयोग, सम्यग्दर्शन, आगम चक्खू साहू, सल्लेखना से समाधि, परम दिगम्बर जैन मुनि आदि सप्रमाणिक शोधात्मक, अन्वेषात्मक, विद्वत जगत में बहुचर्चित कृतियों के कृतिकार, सिद्धांत धवल ग्रंथ की 16 तथा जयधवल ग्रंथ की अनेक मूर्धन्य विद्वानों के मध्य सफल वाचना करने वाले श्रेष्ठ वाचनाकार, आचार्य कुंदकुंद स्वामी के वारसाणुवेक्खा व रयणसार व शील पाहुड, लिंग पाहुड ग्रंथों पर प्रथम '**सर्वोदयी रत्नत्रय वर्धनी**' तथा श्रमण प्रबोधिनी व श्रमण संबोधिनी नामक संस्कृत टीका के अनुपम टीकाकार जिनकी टीका में पूर्वकालीन प्राचीन आचार्य अमृतचन्द्र, जयसेन, प्रभाचन्द्राचार्य की विषय विवरण पूर्णता व्यवहार-निश्चय नयों का सयुक्तिक विवेचन, व्याकरण की शुद्धता-प्रौढ़ता-सौष्ठता के साथ सरल-सुगमता उनके अनुपम लेखन रचना चातुर्यता का प्रतीक है उनकी बहुप्रज्ञता ने उन्हें विद्वानों तथा भक्तों के द्वारा ज्ञान दिवाकर, न्याय-मार्तण्ड, न्यायभास्कर, सिद्धांतरत्न, सिद्धांत-चक्रव्रर्ती, विद्या-वारिधि, अध्यात्म-सिद्धांतवारिधि आदि उपाधियों से अलंकृत कराया है।

पूज्य गुरुवर के मुखारविंद से मुखरित अध्यात्मक स्वाध्याय का रसपान करते समय तो जो आत्मशुद्धि का संचार होता है वह वचनागोचर है क्यों कि मन कहता है कि काश मैं भी निर्गंथ पद को धारण करता तो अहर्निश ऐसा ही निजात्मा का निश्चय रूप से आस्वादन करता। पूज्य गुरुवर का स्वाध्याय मात्र बाह्य नहीं, बल्कि स्वपर की अतंरात्मा को स्पर्शित करता है तभी तो उनकी वाणी की मार्मिकता, भावों को निर्मलता से भर देती है। जब आप स्वाध्याय करते हैं तो उसके ही रहस्य में पूर्णरूप से डूब जाते हैं करुणामयी प्रकरण में आपके वचनों से करुणा, वीरमयी प्रकरण से वीरता, वैराग्यमयी प्रकरण में वीतरागता झलकती है। चम्पापुर व भोजग्राम की रोचक घटना कि सामूहिक पद्मपुराण का वाचन पूज्य गुरुवर कर रहे थे प्रकरण था गर्भवती अंजना सती के जंगल में होने वाले अनगिनत दु:खों का कि पढ़ते-पढ़ते कण्ठ रुघ गया आँख से जल ही नहीं, अपितु करुणा का नीर बहने लगा। पूज्य गुरुवर ने स्वाध्याय 2-3 बार पढ़ने का पुन:-2 प्रयास भी

किया लेकिन निष्फल हो अपाय धर्मध्यान ही गहन विचार धारा का प्रवाह प्रारंभ हो गया। पूज्य गुरुवर से पूछा-क्या कारण है आपकी इस अवस्था का? पूज्य गुरुवर बोले-कुछ नहीं, मैं सोच रहा था कि एक निरपराध स्त्री पर एक साथ कितने दुखों का पहाड़ टूट पड़ा कैसे वह दुख सहती होगी? उसकी वेदना ने मेरी अन्तरात्मा को विह्वल कर दिया। ऐसे कृतिकार की ज्ञानाराधना, आत्मस्थिरता, भावभंगिना उनको एक सच्चे स्वाध्याय प्रेमी की कोटी में विराजमान करती है।

ऐसे सरस्वती पुत्र पूज्य गुरुवर का जन्म ज्ञानबालसूर्य के रूप में 2 मई 1963 को पथरिया (दमोह) ग्राम में ज्ञान मनीषी श्रीमान् कपूरचंद्रजी व धर्मपरायण माता श्रीमती श्यामादेवी के गृह में हुआ। अरविन्द की ज्ञान कलायें वैराग्य में वृद्धिगंत हुई और श्रेयसी सन्मति पाने पहुँचे तपस्वी सम्राट परम पूज्य आचार्य श्री सन्मति सागर जी के चरणों में 20 फरवरी 1980 बुढ़ार (शहडोल) में गुरुकृपा से बन गए क्षु. पूर्णसागर। 9 दिसम्बर 1983 की शुभ घड़ी वात्सल्य रत्नाकर परम पूज्य आचार्य श्री विमल सागर जी का अथाह रत्नत्रय वात्सल्य बरसा कि औरंगाबाद की धरती पर दिगम्बर बाना ओढ़ मुनि विराग सागर जी हो गये। साधना-ज्ञानाराधना, धर्म-प्रभावना, आकर्षण व्यक्तित्व ने ही द्रोणगिरी अवनि पर पूज्य आचार्य विमल सागर जी के आशीष-आज्ञा तथा विद्वान भक्तों की अधिकाधिक अनुनय-विनय से 8 नवम्बर 1992 को उदित हुए एक जाज्वल्यमान ज्ञानसूर्य (सूरि) के रूप में आप बने आचार्य विराग सागर जी महाराज।

जिनकी माधुर्य हृदयस्पर्शी आगम के मोती बिखेरती वाणी प्राणीमात्र को वरवश ही मोक्षपथ आत्महित पथ पर प्रयाण की प्रेरणादायिनी बनती है।

जिनका प्रवचन साहित्य जनमेदनी को धार्मिकता के साथ नैतिकता की बहुपयोगी पाठ सिखाता हे। ऐसे तेजोर्मय ज्ञानपुंज गणाचार्य श्री 108 विराग सागर जी महाराज के चरणों में शत्-शत् नमन।

यह तो ज्ञानपुंज कृतिकार के एक मात्र ज्ञान किरण का चारित्र अल्पाक्षरों में विवर्णित है। अलौकिक व्यक्तित्व चारित्र प्रभाव आदि गुणों का अवलोकन निर्वचनीय है फिर भी निस्पृही संत आदि कृतियों के माध्यम से विराट प्रतिभापुंज का चारित्र प्राप्त हो सकता है।

ऐसे श्रमण संस्कृति के महान आचार्य प.पू. गणाचार्य श्री 108 विराग सागर जी महाराज के चरणों में कोटिशः नमोस्तु।

डॉ. नेमिचंद जैन

खुरई (म.प्र.)

प्रस्तावना

सत्साहित्य हमारा चिंतन ही नहीं, जीवन भी बदल देते हैं। अत: व्यक्तित्व व चारित्र निर्माण में सत्साहित्य अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

प्रस्तुत साहित्य कृति 'मेरी भावना' पर हुए प्रवचनों पर आधारित है। मेरी भावना पं. जुगल किशोर मुख्तार रचित पद्य रचना है जो यथानाम तथा गुण को चरितार्थ करती है। यह कवि की ही नहीं जन-जन की '**मेरी भावना**' है। जाति, पंथ, संप्रदाय की गंध से रहित यह कृति '**सर्वजनहिताय**' का विश्वव्यापी रूप ले चुकी है। यही कारण है कि शालेय पाठ्य-पुस्तकों में भी इसे स्थान दिया जा रहा है। इसी महत्वपूर्ण कृति का आधार लेकर प.पू. राष्ट्रसंत, गणाचार्य गुरुदेव श्री 108 विराग सागर जी महाराज के मुखारविन्द से महत्वपूर्ण अमृत प्रवचनों का लाभ मुंबई निवासियों को मिला। श्रुत सेवा और गुरु भक्ति के इन महत्वपूर्ण कार्यों के लिए प्रेरणादायी पूज्य आर्यिका श्री 105 विशिष्ट श्री माता जी को कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। क्योंकि उनकी प्रेरणा से संकलन कर्त्री आर्यिका विवक्षा श्री माता जी एवं संपादन कर्त्री आर्यिका विदक्षा श्री माता जी ने इस कठिन कार्य को भी सहजता से पूर्ण किया है। अत: मैं तीनों माता जी को इस सराहनीय कार्य के लिए आभारी होता हुआ वंदामी करता हूँ।

परम सौभाग्य का विषय है कि परम पूज्य गुरुदेव गणाचार्य श्री 108 विराग सागर जी महाराज की सुशिष्या पूज्य आर्यिका श्री 105 विशिष्ट श्री माता जी (ससंघ 11 माताजियों) के चातुर्मास का स्वर्णिम अवसर इस वर्ष हम भीण्डरवासी प्राप्त कर सके हैं। जिस समय भी हम आर्यिका संघ के दर्शनार्थ पहुँचते हैं तो वृद्ध से वृद्ध क्षुल्लिका माता जी तक को ज्ञानाभ्यास में रत देखते हैं जिसमें हमें आत्मिक प्रसन्नता होती है और इन महान विभूतियों को जन्म देने वाले महान चेतन शिल्पिकार प.पू. गुरुदेव के प्रति बहुमान जाग्रत होता है-धन्य है गुरुदेव! जिन्होंने हर शिष्य को समय के सदुपयोग की कला सिखाई है, '**ज्ञान-ध्यान-तपोरक्ति**' बनाया है। धर्म व मोक्षमार्ग का सच्चा रसास्वादन कराया है।

अंत में पाठकों से यही कहना है कि पूज्य गुरुदेव के इन अमृत प्रवचनों की एक-एक बूँद का पपीहे की तरह पान कर लीजिए फिर देखिये आपके जीवन में कैसा क्रांतिकारी परिवर्तन आता है।

बूँद-बूँद भी अमृत है, पीना देकर ध्यान।
ये है मेरी भावना, जग का हो कल्याण।।

गुरु चरण चंचरीक

प्रतिष्ठाचार्य पंडित अमरचन्द जैन शास्त्री, भीण्डर

आस्था के सुमन

आज का भौतिक युग अविरल पाश्चात्यता की ओर बहता जा रहा है तथा आर्य संस्कृति का निरंतर ह्रास होता जा रहा है। आज का व्यक्ति मात्र दिखावा, बनावटीपन व ऊपरी/बाह्य विकास में लगा हुआ है फलस्वरूप नैतिक मूल्यों का प्रतिक्षण पतन होता जा रहा है। ऐसे समय में आज '**संत-समाज**' का उत्तरदायित्व बढ़ गया है कि किस प्रकार हम देश-राष्ट्र व समाज को सही दिशा निर्देशन प्रदान करें। उस उत्तरदायित्व का निर्वाह करते हुए "**मेरी भावना**" जो कि पंडित जुगल किशोर द्वारा रचित है इसका विशद व्याख्यान करते हुए परम पूज्य राष्ट्रसंत गणाचार्य श्री 108 विराग सागर जी महाराज ने व्यक्तित्व निर्माण व राष्ट्र, समाज विकास के रहस्यात्मक सूत्र प्रदान किये हैं। '**मेरी भावना**' की एक-एक पंक्ति सद्गुण रूपी चासनी से भरी है। जो व्यक्ति के सर्वांगीण विकास में कार्यकारी है।

पूज्य आचार्य भगवन् की आकर्षक वक्तृत्व शैली जो कि प्राणी मात्र के हृदय को उद्वेलित कर देती है अंतरंग विकास हेतु और सुधार के सूत्र प्रारंभ हो जाते है। व्यक्ति के अंतरंग की खोटे गुरु वचनामृत रूपी चोटों से शीघ्र दूर हो जाती है तथा एक नई चेतना प्रादुर्भूत होती है। सहज व सरल शब्द शैली जिसे एक बालक भी सहजता से समझ सकता है तथा सदाचार, शिष्टाचार व नैतिकता के सूत्रों को आत्मसात कर सकता है। '**मेरी भावना**' प्रवचन में उमड़ी महानगर मुंबई की जनता इस बात की साक्षी है कि हर एक दिल प्यासा सा रहता था गुरुवाणी सुनने। हर चेहरे पर होती थी-एक हर्ष भरी मुस्कान जो उनके दिनभर के तनावग्रस्त, व्यस्त जीवन के भार को कुछ हल्का कर देती थी। आज समाज, देश व राष्ट्र को ऐसे बहुमूल्य सूत्रों की अत्यंत आवश्यकता है। जो उनके सर्वांगीण विकास में सहकारी है।

हमें पूर्ण विश्वास है कि यह कृति मेरी भावना-प्रवचन अपने आप में अनुपम व अनूठी होगी, जिसमें संपूर्ण समयोचित शिक्षाओं से समन्वित गुरुवाणी का अमृत रस भरा हुआ है। पूज्य गुरुवर के मंगल आशीर्वाद तथा प.पू. आर्यिका श्री 105 विशिष्ट श्री माता जी की प्रेरणा से गुरुवर के प्रवचनों का संकलन एवं सम्पादन जैसा जटिल कार्य गुरु प्रसाद व आशीष से पूर्ण किया है। वास्तव में यह कार्य सागर को गागर में भरने की युक्ति को चरितार्थ करता है, फिर भी श्रुतसेवा व

गुरुभक्ति की शक्ति से प्रेरित होकर तथा हमारे साथ-साथ जन-जन प्राणी मात्र का कल्याण हो, सभी पू. गुरुवर की अनुपम वाणी का रसास्वादन कर कल्याण पथ पर अग्रसर हो, इसी भावना से सरस्वती का उपहार एवं गुरुवर के प्रसाद को श्रुतवाहिनी द्वारा अर्थात् साहित्य में लिपिबद्ध करने का लघु प्रयास हम द्वय माताजी ने किया है, त्रुटियां निश्चित है क्योंकि हम अज्ञ हैं, अतः पूज्य गुरुवर हमें क्षमा करके हम लोगों को ऐसे ज्ञानोपयोग में अहर्निश लगे रहने, गुरु श्रुत सेवा करने का आशीष प्रदान करें क्योंकि गुरु सेवा ही मुक्तिपथ का अद्वितीय मेवा है।

अंत में परम पूज्य प्रातः स्मरणीय गुरुदेव के पावन श्री चरणों में त्रय भक्ति पूर्वक कोटिशः नमोऽस्तु करती हुई उनके मंगल आशीर्वाद की कामना करती हूँ।

गुरु चरणानुगामिनी

पू. श्रमणी आर्यिका विवक्षा श्री एवं

पू. श्रमणी आर्यिका विदक्षा श्री माता जी

उेपींशपींी

चलो भाये निज भावना 9
खाली नहीं, भरा रहूँ 14
सच्चे देव का ज्ञान करूँ 19
रागी नहीं वीतरागी बनूँ 25
विरागी गुरु के चरण नमूँ 32
सत्समागम में मगन रहूँ 39
मुक्तिपथ का पथिक बनूँ 45
दया स्वीकार करूँ 50
सत्य धर्म श्रंगार करूँ 54
पर, धन, वनिता को न गहूँ 60
संतोषामृत पान करूँ 65
प्रभुता नहीं लघुता धरूँ 70
मद ईर्ष्या को सदा तजूँ 76
व्यवहार कुशल, उपकारी बनूँ 80
सबमें मैत्री भाव धरूँ 86
हृदय में करूणा नीर भरूँ 91
क्रोध नहीं साम्य भाव धरूँ 97
प्रसन्न हो, गुणों में प्रीति करूँ 103
सेवा कर बड़भागी बनूँ 108
उपकारी का ऋणी रहूँ 114
दोष नहीं गुण वरण करूँ 121
न्याय मार्ग अढिग बढूँ 124
सुख-दुख में समताभाव धरूँ 129
सहनशीलता आत्मसात् करूँ 137
दुखी नहीं सबको सुखी करूँ 141
नित्य नये मंगल गाऊँ 148
नव भव को सफल करूँ 153
ईति भीति सब दूर भगाऊँ 159
न्याय प्रिय कर्तव्यनिष्ठ बनूँ 165
धर्मशांति हित भावना भाउँ 170
मोह नहीं प्रेम सुरभि महकाऊँ 174
परस्पर प्रेम भाव बढ़ाऊँ 180
कटुक नहीं मधुर भाषा बोलूँ 188
देशोन्नति और वस्तु रूप विचारूँ 195

चलो भायें निज भावना

भव्य मनीषीयो!

जैन धर्म का सबसे बड़ा प्राण आत्मचिंतन, आत्मध्यान, आत्म कल्याण है। इस हेतु हम मुनियों के दर्शन, पूजन करते हैं, आहारदान देते हैं और उनके पवित्र उपदेश को सुनते हैं। सभी के पीछे एक मात्र आत्म कल्याण की ही भावना छिपी होती है। परंतु अधिकांश प्राणी जगत जन्म से मृत्यु तक संसार की ही बातें करता है संसार में ही जीवन बिताता है, संसार को ही देखता है, संसार में ही घूमता है लेकिन एक काम शेष रह जाता है जो बाद में पश्चाताप का कारण बन जाता है वह है आत्म कल्याण। जिन्दगी में प्राणी हर चीज की कीमत करता है लेकिन व्यक्ति के जीवन में आत्म कल्याण का मूल्यांकन नहीं हो पाता और जब तक जीवन में आत्म कल्याण की कीमत नहीं होती तब तक आत्म कल्याण शब्द मात्र प्रवचनों में सुनने-सुनाने में रह जाता है परंतु आत्म कल्याण हो नहीं पाता। जिसके लिए जीवन भर प्रार्थना करते हैं कि

दिन रात मेरे स्वामी मैं भावना ये भाऊँ।
देहान्त के समय में, तुमको न भूल जाऊँ।।

परंतु होता यह है क अंत में हम भगवान को ही भूल जाते हैं। विरले ही पुण्यात्माओं को अंत समय में भगवान का स्मरण, गुरुओं का स्मरण रह जाता है। भगवान के अभिषेक के भाव मन में आ जाए, ऐसे व्यक्ति बहुत कम होते हैं। कष्ट पड़ने पर णमोकार को, भगवान को स्मरण करने वाले बहुत कम लोग ही मिलते हैं। अरे बाप रे! मम्मी! भैया! को याद करने वाले बहुत मिल जाते हैं। हम निरंतर प्रार्थना करते हैं तब से करते हैं जब होश में आते हैं। जब हमारा होश जगता है। वह क्षण वैराग्य का होता है। तीर्थंकर ऋषभदेव जो कि प्रथम प्रजापति थे, उनका

अखंड राज्य था वे एक क्षत्राधिपति थे। वे ऋषभदेव महाराज राजसिंहासन पर विराजे थे, चारों ओर मंत्रीगण, सभासद आदि विराजे थे राजसभा लगी हुई थी अनुचर सेवा में तत्पर थे। कोई पवन विलोड़न कर रहा था। पहले पंखे नहीं होते थे। अनुचर ही चँवर लेकर खड़े रहते थे। जिनकी सेवा व्यवस्था में सैनिक पहरा दे रहे थे। जिनकी राज सभा में देवतागण भी विराजे थे। तभी प्रश्न किया गया-महाराज! आज सभा में कुछ मनोरंजन होना चाहिए। राजसभा में मनोरंजन इसके पीछे भी रहस्य था। मनोरंजन तो एक मात्र माध्यम था। वास्तविकता तो कुछ और ही थी। सौधर्म इंद्र ने प्रस्ताव रखा और कहा-महाराज! यदि आपका आदेश हो तो स्वर्ग की विभिन्न कलाओं में पारंगत नृत्यांगना नीलांजना अपना नृत्य प्रस्तुत करना चाहती है। जहाँ स्वर्ग की नीलांजना पृथ्वी पर स्वयं नृत्य करे, तो लोगों का साहजिक आकर्षक व लोगों की उपस्थिति अपने आप थी। सब इंतजार में थे कि अब नीलांजना का नृत्य प्रारंम्भ हो। ऋषभदेव ने सभी की ओर एक दृष्टि डाली और 'ऊँ' कहकर स्वीकृति प्रदान की। सौधर्म इंद्र जो कि हाथ जोड़े खड़ा था स्वीकृति प्राप्त होते ही नीलांजना को संकेत करता है और नीलांजना का नृत्य प्रारंम्भ हो जाता है। वह नृत्य कोई सामान्य नहीं, अपितु विभिन्न कलाओं, विद्याओं से युक्त था। उसमें भी अनेक रहस्य छिपे रहते हैं। नृत्य कला भी बहुत बड़ा साहित्य है। नीलांजना नृत्य कला में निष्णात थी। सारे सभासद एकाग्रचित्त थे। नृत्य करते-करते ही अचानक आयु पूर्ण होने से नीलांजना की मृत्यु हो गई। सौधर्म इंद्र तैयार था जैसे ही एक नीलांजना की मृत्यु हुई तुरंत ही दूसरी नीलांजना उसके स्थान पर आ गई।

बंधुओ! चूंकि देवों का वैक्रियिक शरीर होता है मांस, हड्डी, रूधिर आदि सप्त धातुओं से रहित होता है और उनकी मृत्यु होने पर वैक्रियिक शरीर यूँ ही बिखर जाता है। मालुम नहीं पड़ता। दूसरी नीलांजना के वस्त्राभूषण, साज-सज्जा, कला आदि सर्व गुण से पहली नीलांजना के समान थे इसलिए सभा में बैठे लोग कुछ भी समझ नहीं पाये परंतु जन्म से ही तीन ज्ञान के धारी, अवधि ज्ञानी ऋषभदेव ने यह घटना अपने ज्ञान से जान ली। नृत्य तो चल ही रहा था परंतु ऋषभदेव चिंतन में डूब गये-मृत्यु! मृत्यु!! नीलांजना की मृत्यु हो गई। ठहरिये, नृत्य बंद किया जाए। महाराज के आदेश से नृत्य बंद हो गया। ऋषभदेव कुछ कहने

वाले थे इसके पहले ही लौकान्तिक देव स्वर्ग से आ गये और ऋषभदेव के हृदय में जन्मी वैराग्य भावना को जान धन्य-धन्य करने लगे कि हे महाराज! आपके विचार, ज्ञान, वैराग्य को धन्य है।

बंधुओ! सत्य ही है, धन्य है उन प्राणियों का जीवन, जो समय के पहले सावधान हो जाते हैं और आत्मकल्याण में प्रवृत्त होते हैं। वे महापुरुष हैं जिन्हें आत्म-कल्याण दिखता है जो निरंतर अपने जीवन की हर श्वांस आत्म कल्याण के लिए होता हैं। तथा पिंजरे में बंद पक्षी की तरह मुक्ति रूपी आकाश में उड़ने के लिए फड़फड़ाते रहते हैं। एक ज्ञानी सम्यगृदृष्टि जीव ज्ञान व वैराग्य शक्ति के बल पर जीता है। आचार्य श्री कुंदकुंद महाराज अपने समयसार कलश में लिखते हैं-

सम्यग्दृष्टि: भवति नियतं ज्ञान वैराग्य शक्ति:।

ज्ञानी सम्यग्दृष्टि के अंदर सदैव ज्ञान और वैराग्य शक्ति निहित होती है। वह सोचता है कैसे आत्म कल्याण के मार्ग पर आगे बढ़ूँ और अवसर मिलते ही निकल पड़ता है। जीवन का कोई भरोसा नहीं कब, किस रास्ते पर जीवन की शाम हो जाए कोई पता नहीं, कब दीपक की ज्योति बुझ जाए, किसी को पता नहीं फिर क्यों देरी करूं और वे आत्म कल्याण के पथ पर बढ़ जाते हैं ये निमित्त कहलाते हैं। निमित्त वह है जो व्यक्ति के हृदय पर प्रभाव डालता है, नैमित्तिक कार्य को उत्पन्न करता है। गौतम बुद्ध के विषय में बतलाते हैं कि वे एक राजकुमार थे एक बार वे रथ पर हो वन विहार के लिए जा रहे थे रास्ते में तीन व्यक्ति दिखे। जिनमें से एक व्यक्ति को अन्य दो व्यक्ति पकड़ कर ले जा रहे हैं उससे चलते नहीं बन रहा है वह लड़खड़ा रहा है फिर भी व्यक्ति उसे पकड़े हुए है। उन्होंने सारथी से पूछा-क्या बात है उसने कहा-महाराज ये बीमार है, अस्वस्थ है। इसके परिजन इलाज हेतु हॉस्पिटल ले जा रहे हैं। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ-अरे! क्या व्यक्ति बीमार भी होते हैं? पहले कभी उन्होंने किसी बीमार व्यक्ति को नहीं देखा था। जब वे थोड़ा और आगे बढ़े तो एक बहुत ही वृद्ध व्यक्ति को देखा। मांस सूख गया था मात्र हड्डी दिख रही थी, कमर टेढ़ी थी। दाँत गिर गये थे। दाँत गिर जाने के बाद मुख वैसा ही हो गया था जैसे आम के अंदर से गोई (गुठली) निकाल देने पर आम की अवस्था होती है। वे वृद्ध चले जा रहे थे, कहीं लकड़ी रखते, कहीं पैर जमाते। बुद्ध ने देखा तो कहा-सारथी! वह क्या है मनुष्य है या क्रीड़ा। सारथी ने कहा वह मनुष्य है ऐसा

कैसा मनुष्य? महाराज! ये वृद्ध हो गये हैं, उम्र बहुत हो गई है, हड्डी का ढाँचा रह गया है, कुछ दिन के मेहमान हैं। अच्छा, तो क्या जीवन के इस पड़ाव पर सबको आना पड़ता है। हाँ सभी को। और आगे बढ़े तो उन्हें चार लोग कंधे पर अर्थी ले जाते हुए दिखे वे बोल रहे थे अरहंत नाम सत्य है। बुद्ध ने कहा-अरे! यह क्या दिख रहा है। सारथी बोला-ये संसार से चल बसे। संसार से विदाई हो गई। आत्मा एक संसार से दूसरे संसार में चली गई। संसार बहुत बड़ा है शरीर का परिवर्तन हो गया है। यह दृश्य देख उन्हें वैराग्य हो जाता है।

संत जन निरंतर ऐसे ही संसार को देखते हैं इसीलिए जीवन में समभाव को धारण करते हैं। जबकि गृहस्थ में कभी हर्ष-कभी विषाद, कभी ख़ुशी-कभी गम, कभी संयोग-कभी वियोग दृष्टिगोचर होता है। संत कहते हैं-ये तो अनादि की कहानी है। पृष्ठ बदलते जाते हैं और आप का नम्बर लेसन (Lesson) कभी न कभी आयेगा। सभी की कहानी इतिहास की पुस्तक में लिखी है। कोई मरने के पहले पढ़ लेते हैं कोई मरने के बाद पढ़ पाते हैं, जो पहले पढ़ लेते हैं वे संत बन जाते हैं। जो बाद में पढ़ते हैं वे वास्तविकता में नहीं पढ़ पाते। उन्होंने कुछ लिखा कि नहीं कहीं ऐसा तो नहीं कि उनकी किताब कोरी की कोरी रह गई हो।

एक संपत्ती लाल जी थे उनकी आयु **74** वर्ष की थी, वे रोज आते थे उन्होंने **3000** माला फेरी, महाराजों की सेवा करने आगे रहते थे। **74** वर्ष की उम्र में सेवा करने के भाव हो जाए तो धन्य है, सेवा कराने की उम्र में करने लग जाए। धन, पवित्र व उज्ज्वल परिणाम थे। मुझे अभिषेक करना है, पूजन करनी है ऐसे उत्तम विचार जिनके हो उनकी diary बहुत कुछ कह देती है। हमारे पूर्व कर्म के उदय में क्या लिखा है यह महत्वपूर्ण नहीं। महत्वशाली वर्तमान के परिणाम हैं। मृत्यु तो सभी की होना है, कोई रोते-रोते, तो कोई हॉस्पिटल में मरता है। जो सेवा करते-करते, भक्ति करते-करते खत्म हो जाए तो उसे मरना नहीं कहेंगे मरे नहीं अमर हो गये। कोई मरकर भी अमर होता है और कोई जीकर/जीता हुआ भी मृतक के तुल्य है। ऐसा उल्लेख भगवती आराधना में मिलता है। कुछ लोग जिंदगी में कुछ भी नहीं कर पाते, क्या काम की उनकी जिंदगी। यदि मंदिर मे हाथ में माला लिये हैं और नींद भी आ गई तो भी अच्छा है, आँख खुलेगी तो माला तो दिखेगी कम से कम आगे पुन: प्रारंभ हो जायेगी।

एक व्यक्ति को प्रवचन में नींद आ गई, दूसरे व्यक्ति ने टोक दिया तो वह बोला कल से मैं प्रवचन में नहीं आऊँगा। मैंने सुन लिया कहा-जरूर आना हो सकता है जब तुम्हारी नींद खुले न जाने कौन सा शब्द तुम्हारे कान में पड़ जाए तो कल्याण का हेतु बन जाए। जिंदगी यूं ही चलती रहेगी कुछ समय परमार्थ के लिए भी निकालिए। दर्शन, पूजन, स्वाध्याय कीजिए, दान कीजिए, यह सब मृत्यु की बेला में काम आता है।

हम ऐसे ही पथ पर चलें कि हमें आत्मकल्याण का श्रेय मिले, भाग्य भरोसे नहीं रहना, क्या पता क्या लिखा है भाग्य में। भाग्य पर नहीं छोड़ना अपनी पौरूषता पर विश्वास रखना। जो पुरूषार्थ करता है वह एक न एक दिन अपने लक्ष्य को शीघ्र ही प्राप्त करता है। आप उस आत्म कल्याण के पथ को प्राप्त करें।

इसी भावना के साथ-

''यह बोलिए आदिनाथ भगवान की जय''

दिनांक 2-7-2008

बुधवार, प्रात: 9.00 बजे बोरीवली, मुंबई

खाली नहीं, भरा रहूँ

भव्य धर्म स्नेही बंधुओ!

मनुष्य जब अपने घर से निकलता है तो कुछ सोच कर निकलता है, कुछ विचार बनाकर निकलता है। उनकी कल्पना ऊँची होती है-मैं कुछ पाऊँ, मुझे कुछ मिले, मैं कुछ लेकर लौटूँ, ये उसके विचार होते हैं। घर के लोग जब विदा करते हैं तो इसी भावना से विदा करते है कि आप कुछ लेकर आएँ। छोटे-छोटे बच्चे रहते हैं तो इंतजारी करते हैं कि पापा आयेंगे तो कुछ लेकर आयेंगे। कर्मचारी भी सोचता है-मेरे मालिक मेरे लिए कुछ लेकर आयेंगे। द्वार पर खड़ा द्वारपाल भी इंतजारी करता है कि मेरे स्वामी मेरे लिए कुछ लेकर आयेंगे। जो लेकर आता है वे दे सकता है, जो खाली आया है वह कुछ दे नहीं सकता। पुराने समय की परंपरा भी है कोई व्यक्ति जब किन्हीं रिश्तेदारों के यहाँ जाता था तो खाली हाथ नहीं जाता था कुछ न कुछ साथ अवश्य लेकर जाता था और जब लौटता है तो कुछ न कुछ लेकर लौटता था। आज भी यह पद्धति बहुत जगह है। लेकर आये हैं तो काम छोड़कर आपके पास आयेंगे। बच्चे भी दौड़कर आते हैं क्योंकि पापा बाजार से कुछ लाए है। आपके पास कुछ है तो पड़ौसी का कुत्ता भी आपके सामने पूँछ हिलायेगा। यदि कुछ न दो तो कुत्ता भी चला जायेगा, नौकर-चाकर सलामी भी नहीं देते। बच्चे भी नहीं आते, किसी महोत्सव में पहुँच जाए तो कोई नहीं पूछता क्योंकि उसके पास कुछ है ही नहीं। जब इस सिद्धांत की गहराई में उतरते हैं तो लगता है खाली रहना अच्छा नहीं, भरा होना अच्छा है। खाली बर्तन रास्ते में मिल जाए तो लोग अपशकुन मानते हैं। भरा बर्तन मिल जाए तो शुभ-शकुन मानते हैं जो काम है वह पूरा होगा। खाली व्यक्ति अपशकुन व भरा शकुन माना जाता है।

व्यक्ति को भरा होना चाहिए चाहे बाहर से भरे या अंदर से। बाहर से

भरोगे तो थोड़े दिन तक चलोगे अंदर से भरोगे तो बहुत दिन तक चलोगे। बाहर की सामग्री अधिक दिन तक नहीं टिकती वह उधारी की वस्तु की तरह है फिर भी उस व्यक्ति से तो ठीक है जिसके पास कुछ भी न हो।

श्री कृष्ण चरित्र में उल्लेख मिलता है श्री कृष्ण के निकटतम के मित्र सुदामा थे, सुदामा गरीब थे लेकिन सदाचारी थे। सात्विक, उच्च विचार वाले थे, वेशभूषा सात्विक थी, लगनशील थे, मित्र के अंदर जो गुण होने चाहिए वे सब सुदामा के अंदर थे। सुदामा अपने मित्र के प्रति सदैव समर्पित रहते थे, वे श्री कृष्ण के घनिष्ठ मित्र थे, श्री कृष्ण ने पांडवों से भी मित्रता की व सुदामा से भी। आश्रम में अध्ययन किया बाद में वे राजा हो गये। सुदामा अपने घर चले गये। वह ब्राह्मण थे अत: पूजा पाठ करते थे। धीरे-धीरे परिस्थिति गिर गई। सुदामा को अपना मकान बेचना पड़ा, जो कुछ भी उसके पास धन संपदा थी वह भी बेचनी पड़ी। फिर भी दिन नहीं बदले तो पत्नी ने सलाह दी-अब तो समय ऐसा आ गया है आगे कुछ शेष नहीं रहेगा, ऐसा ही चलता रहा तो खाने को भी नहीं रहेगा। पुराने समय में ब्राह्मण व बड़े-बड़े परिवार के लोग नौकरी को अच्छा नहीं मानते थे। क्योंकि उसमें पराधीनता रहती है। परन्तु न खेती-किसानी न नौकरी तो घर का खर्च कैसे चले। तुम्हारे मित्र द्वारिकाधीश हैं, राजा हैं, वे आपके बचपन के मित्र रहे हैं आप उनके पास जायेंगे तो वे कुछ न कुछ उपाय निकालेंगे। द्वारिका बहुत दूर है इतना पैसा कहाँ कि हाथी-घोड़े से जा सकूं। पत्नी ने कहा-आप पैदल ही जाइए। जब वे घर से प्रस्थान करने वाले थे तो पत्नी बोली-मित्र के पास जा रहे हो तो कुछ लेकर जाओ। सुदामा कहता है-क्या लेकर जाऊँ कुछ भी तो नहीं हमारे पास। पत्नी ने मुट्ठी भी चावल कपड़े के छोर में बाँध दिये। जाते-जाते गिर न जाएँ अथवा कोई छीन न ले इसलिए कई कपड़े बांधकर बड़ी पोटली बना दी। सुदामा पैदल ही चल दिया, (द्वारिका की ओर प्रस्थान कर देता है।) रास्ते में नग्न पैरों में कंकड़-पत्थर चुभते हैं। मिट्टी के कारण पैर फट जाते हैं। काँच आदि लगने से पैरों में घाव हो गये। सुदामा पग विहार करते हुए द्वारिका पहुँच गये, यद्यपि द्वारपालों ने उसे अलग करना चाहा परंतु सुदामा ने द्वारपालों से कहा-मुझे भीतर नहीं जाने देते तो कोई बात नहीं मेरा संदेशा द्वारिकाधीश को देना कि आपका मित्र आया है उसका नाम सुदामा है। द्वारपालों ने समाचार पहुँचा दिया। समाचार मिलते ही श्री कृष्ण स्वयं चलकर आ गये और अपने मित्र सुदामा को गले लगा लिया व अपने साथ ले गये उन्हें सिंहासन पे

बिठाया, पैर धोये, कांटे निकाले, सुदामा मना करता है परंतु श्री कृष्ण नहीं मानते। पैर धोने के उपरांत श्री कृष्ण, सुदामा से कहते हैं-मित्र! वर्षों बाद मिले हो तो मेरे लिए क्या लाए हो। सुदामा तो पहले से ही संकुचित था, सरल प्रकृति का था, शर्म के कारण अपनी पोटली को छिपाता है। मैं आपको क्या दे सकता हूँ, आप द्वारिका के नाथ, अधिपति हो। अरे, ऐसा हो ही नहीं सकता। घर से आये हो तो हमारी भाभी ने कुछ न कुछ तो अवश्य भेजा होगा। सुदामा से रहा नहीं गया तो बोले-हाँ भेजा तो है पर....सुदामा पोटली को छिपाता है परंतु श्री कृष्णजी देख ही लेते हैं। वे छीनने की कोशिश करते हैं और अंतत: छीन ही लेते हैं। सुदामा कहता है-मेरी हँसी मत करो, मैं परिस्थिति का सताया हूँ। वे धीरे-धीरे गाँठ खोलते जाते हैं कई कपड़ों के भीतर मुट्ठी भर चावल मिल जाते हैं। श्री कृष्ण कहते हैं-मुझे मालूम था आप खाली हाथ नहीं आयेंगे। सुदामा का सम्मान इसलिए हुआ क्योंकि भरे आये हैं। बाहर से भरा व्यक्ति यदि पास में चार दाने भी लिये है तो वह शकुन माना जाता है। उनका राजसी सम्मान हुआ, भरा हुआ शुभ होता है। व्यक्ति को खाली नहीं होना चाहिए। लेकिन आप खाली ही रहते हैं कुछ लोग आज तक भर ही नहीं पाये। खाली घड़ा कोई व्यक्ति देखता है तो मुँह उतर जाता है। आपको कोई खाली देखेगा तो क्या सोचेगा। भरिये लेकिन ऐसा भरिये कि फिर खाली न हो। कुछ लोग भर तो जाते हैं पर शीघ्र ही खाली भी हो जाते हैं। ऐसे भरने से कया प्रयोजन?

भगवान महावीर स्वामी, जिनवाणी यही कहती है-अंदर से भरिये, व्यक्ति भरता तो है परंतु राग-द्वेष, कषायों से भरता है। मिथ्यात्व से भरता है। परंतु वास्तविकता में भरना है तो सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र से भरना है। क्योंकि यही धर्म है। आचार्य श्री समंतभद्र महाराज अपने रत्नकरण्डक श्रावकाचार ग्रंथ में धर्म का लक्षण बताते हुए कहते हैं-

सद्‌दृष्टि ज्ञान वृत्तानि धर्मं धर्मेश्वरा विदु:।
यदीय प्रत्यनीकानि भवन्ति भव पद्धति।।3।।

अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र को धर्म के ईश्वर धर्म ऐसा कहते हैं। तथा इसके विपरीत जो मिथ्यादर्शन, ज्ञान, चारित्र है वे तो संसार की वृद्धि के ही कारण हैं।

रत्नत्रय धर्म है अत: उससे सदा भरते रहिये थोड़ा सा भी खाली हो उसे तुरंत भरो। भरना कठिन है खाली होना आसान है। पुराने समय में व्यक्ति कुएँ से

पानी खींचते थे तो मेहनत करनी पड़ती थी। राजस्थान में तो **200-500** फुट गहरे कुएँ है। बाल्टी भर पानी भरने मे कितना पसीना बहाना पड़ता है। परंतु बाल्टी के खाली होने में पल भर नहीं लगता, थोड़ा सा हाथ लगे और सारा पानी फैलने में देर नहीं लगती।

गौतम गणधर परमेष्ठी बतलाते हैं कि केवलज्ञान पाने के लिए कितनी तपस्या करनी पड़ती है। जब भगवान से पूछा गया तो कहा-सारा जीवन दाव पर लगाना पड़ता है। और मात्र एक ही नहीं अनेक भव दाव पर लगाना पड़ता है। श्रुत की एक-एक बूँद की जो कीमत करता है एक-एक लाईन, एक-एक अक्षर की जो कीमत करता है वही एक दिन केवलज्ञान को प्राप्त करता है। यदि हमें थोड़ा सा भी ज्ञान होता है तो हम सोचते हैं कि हम तो भर गये परंतु वास्तविकता में अभी भरे कहाँ है। जब गहराई से चिंतन करते है तो लगता है निरंतर ज्ञान की वर्षा होती रहे और ज्ञान की एक बूंद भी यहाँ-वहाँ न चली जाए। सरस्वती माँ से प्रार्थना करते हैं- हे माँ सरस्वती! श्रुत का एक शब्द भी कहीं प्रमाद वश छूट न जाए यदि शब्द स्खलन हो तो भी मुझे प्रायश्चित दे दो कि भूल से भी भूल न हो। कालान्तर में हम **1** अक्षर का भी प्रमाद न करें। जिसने एक-एक अक्षर की कीमत की है वह केवली/सर्वज्ञ बन जाता है।

आज अपन सभी कितना बड़ा प्रमाद कर जाते हैं कि अक्षर क्या पाठ के पाठ ही छूट जाते हैं। परंतु हमें परवाह नहीं रहती। स्कूल का बच्चा यदि एक दिन Home Work न कर पाये तो उसे कितना Tension हो जाता है। अपने को कुछ नहीं लगता। स्कूल में कोई बच्चा देरी पहुँचे तो अपने Teacher से क्षमा माँगता है कि मुझे क्षमा कीजिए मैं आज विलम्ब से आया। हम माँ जिनवाणी के द्वारे पर देर से आते हैं। जिनवाणी का अविनय अनादर हो जाता है। आज एक अक्षर छूटा तो कल पाठ तो परसों पूरी पुस्तक छूट जायेगी। केवलज्ञान की बात तो दूर रही एक क्लास भी कम्पलीट नहीं हो पायेगी।

सिक्खों में गुरु ग्रंथ साहब का वाचन होता है। तो पहले से तैयार होकर बैठते हैं। गुरु के पहले श्रोतागण आ जाते हैं। मुसलमानों में कुरान शरीख, क्रिश्चियन में बाईबिल का पाठ होता है। तो वे पहले से ही पहुँच जाते हैं। जिनवाणी ने क्या बिगाड़ा कि हम कभी कीमत नहीं कर पाते, सोच नहीं पाते, एक प्रश्न भी

खड़ा नहीं हो पाता हे माँ सरस्वती! आपके चरणों में आने में कुछ विलम्ब कर दिया।

बंधुओ! ज्ञान का अर्थ है कि विचार तो कम से कम आना चाहिए। यदि विषय छूट गया है तो विचार आना चाहिए आज विलम्ब हो गया कल से विलम्ब नहीं होऊँगा। दूसरा दिन असावधानी, प्रमाद, बहाने का नहीं सावधानी का होना चाहिए, आपके कदम संभलें वह दिन ऐसा रहेगा जब लगेगा कि आप कुछ लेकर गये। जो सौभाग्य मानकर आता है वह कुछ लेकर लौटता है। माँ सरस्वती ने कुछ दिया तो आप उसे ऐसे रखते हैं कि वह खराब हो जाता है सरस्वती के भंडार को खर्च कीजिए। कवि कहता है-

सरस्वती के भंडार की, बड़ी अपूरव बात।
ज्यों-ज्यों खर्चे त्यों-त्यों बढ़े, बिन खर्चे घट जाए।।

आज हमने क्या पढ़ा था, क्या सुना था Revision कर लीजिए। किसी को पढ़ा दो, सुना दो, कोई न मिले तो एकांत में बैठकर Rivision कर लो। केवलज्ञान की बात ऊँची है। आज एक सीढ़ी बढ़े हैं तो आगे भी बढ़ते ही जायेंगे।

''मेरी भावना'' पाठ कितना सुंदर है। जिसके अंदर ऊँची-ऊँची बातें आम जनता के लिए समाविष्ट की गई है। राष्ट्रगीत के लिए इसका उद्गम हुआ यह महात्मा गांधी के सम्मुख रखी गई। गाँधी आश्रम में प्रार्थना के रूप में चलती है। विनोबाभावे भी जैन धर्म पर आस्था रखते थे। वे तथा महात्मा गांधी दोनों इसका निरंतर पाठ करते थे। और हम जैन होकर भी यदि पाठ न करें तो आश्चर्य है।

ऐसी पावन पुनीत भावनाओं को हम सब को एक साथ बैठकर भाना है और जीवन में चरितार्थ करना है। यही इसके अध्ययन का सार है।

इसी भावना के साथ-

''1008 अजितनाथ भगवान की जय''

दिनांक 3-7-2008
गुरुवार, प्रात: 9.30 बजे बोरीवली, मुंबई

सच्चे देव का ज्ञान करूँ

भव्य आत्महितेच्छुओ!

आज हम सभी मेरी भावना के अंदर उतर रहे हैं जैसा नाम है वैसा ही रहस्य भी भरा है। मेरी भावना यानि जो भी बोलेगा उसी की भावना है। एक Proverb है- Many man many minds अर्थात् जितने प्रकार के व्यक्ति होते हैं सभी का अपना-अपना विचार होता है, सोच होता है। मन है तो विचार है, मन है तो सोचना है, समझना है, ये सारा काम मन का होता है। असंज्ञी जीव के अंदर सोचना, समझना नहीं होता है, ये सारा काम मन का होता है। असंज्ञी जीव के अंदर सोचना, विचारना नहीं होता वे मात्र भूख व रक्षा से पीड़ित रहते है। संज्ञी की परिभाषा है- जिसके अंदर सोचने-विचारने की सामर्थ्य होती है वह भी प्राय: आजीविका के विषय में सोचता है। धर्मात्मा, सम्यग्दृष्टि, धर्म व कल्याण के विषय में सोचता है। सम्यग्दृष्टि प्रशस्त परिणाम वाला होता है। जब अच्छे विचारों में डूबता है तो ऊँचे-ऊँचे चिंतन बनाता है। भावना यानि वे विचार जो जीवन मे बार-बार उत्पन्न होते हैं। हम किसी भावना को एक बार पढ़ लेते हैं और सोचते हैं भावना भायी है परंतु वह परिपूर्ण नहीं होती। जैन शास्त्रों में भावना का अर्थ है- अनुप्रेक्षा। और प्रेक्षा यानि ध्यान। जो चिंतन को ध्यान तक ले जाए वह अनुप्रेक्षा है। भावना, विचार, सोचने का तरीका अनुप्रेक्षा है।

एक बार हमारे पूज्य आचार्य श्री ने हमें बोला चिंतन करना चाहिए। मैंने कहा-किसका करना चाहिए? आचार्य श्री बोले-यह बतलाने की बात नहीं। मैं सोच में पड़ गया-किसका चिंतन करूँ, कैसे करूँ। गुरुवर ने मुझे एक नोट बुक दी, बोले इसी में लिखना। मैंने सोचा यदि लिखूंगा और गलत हो गया तो पढ़ने वाले हसेंगे कि ऐसा लिखा जाता है। मैं पुन: महाराज के पास गया-महाराज बताइए न चिंतन कैसे करूँ। दीक्षा लिए अभी दो महीने ही हुए थे। महाराज बोले-आत्म

चिंतन करना है अत: स्वयं ही करो यदि मैंने बतला दिया तो दिशा बदल जायेगी। आप स्वयं खोजे कि चिंतन कैसे करें काफी समय सोच विचार में गया कि चिंतन कैसे करें, चिंतन क्या किया जाए कभी किन्हीं महाराजों के निकट नहीं रहा तो अनुभव नहीं था मात्र एक दिन ही ब्रह्मचारी के रूप में रहा। आचार्य श्री ने कहा था इसलिए चिंतन तो करना ही था, बस लिखना प्रारंभ कर दिया लिखूँगा, गलत होगा तो महाराज को दिखाऊँगा। पहले दिन के चिंतन में Time-Table लिख दिया। महाराज ने पूछा-चिंतन किया था' हाँ। क्या लिखा? जैसे ही महाराज ने देखा तो बोले-ये कौन सा चिंतन है। अभी सही नहीं है और फिर से लिखना। उस समय हमारी क्षुल्लक दीक्षा हुई थी तो **11** प्रतिमाओं के नाम लिख दिये। आचार्य श्री ने पुन: देखा तो बोले-ये चिंतन है क्या? चिंतन गहरा होता है। अगले दिन विस्तृत रूप में सारा वर्णन लिख दिया। मैंने कहा आचार्य श्री जिस दिन सही हो तो बतला देना। अब सारी दिनचर्या के साथ जो देखने, सुनने में आता वह भी लिख देता। कुछ दिन बाद आचार्य श्री बोलने लगे-अब सही है। पहले दिन का भी सही था यदि मैं पहले दिन ही सही बोल देता तो आप वहीं तक सीमित रह जाते। एक साल बाद डायरी पूरी हुई तो बोले-सब सही है। ये भावना है, सोच है, विचार है। आत्म कल्याण में डूबा व्यक्ति, भगवान की भक्ति में डूबा व्यक्ति कितने प्रकार का विचार कर पाता है, उन्हें नापा-तौला नहीं जा सकता परंतु जो भाव मन में बार-बार आते हैं। उन्हें ही मेरी भावना में समाविष्ट करने का प्रयत्न किया गया है। ''मेरी-भावना'' ऐसा पाठ है जिसे जैन-जैनेतर सभी प्रार्थना के रूप में पढ़ते हैं। पंडित जुगलकिशोरजी भावना के पहले काव्य में कहते हैं-

जिसने राग द्वेष कामादिक, जीते सब जग जान लिया।
सब जीवों को मोक्ष का मार्ग का, निष्पृह हो उपदेश दिया।।
बुद्ध वीर जिन हरि-हर ब्रह्मा या उसको स्वाधीन कहो।
भक्ति भाव से प्रेरित हो यह चित्त उसी में लीन रहो।।1।।

पंडित जुगलकिशोर एक गृहस्थिक विद्वान हुए हैं उन्होंने अपने विचारों को इस प्रकार लिखा कि वह ''मेरी भावना'' मात्र नहीं, अपितु जन-जन की भावना बन गई। पवित्र मन से जो आत्म गुंजन/भाव निकलते हैं वे प्राणीमात्र के लिए रूचिकर हो जाते हैं। वे फिर मेरे, तुम्हारे नहीं अपितु जन-जन के हो जाते हैं। इसलिए कोई मुझसे पूछे कि ये मेरी भावना है तो नाम की दृष्टि से कह देते हैं कि मेरी भावना है परंतु यह जन-जन की भावना है।

पहले काव्य में सच्चे देव को नमस्कार किया गया है कवि ने विशाल हृदय से परिभाषा तैयार कर रखी है जिसे हर संप्रदाय का व्यक्ति स्वीकार कर लेता है कि सच्चे देव, भगवान, ईश्वर का स्वरूप ऐसा ही होना चाहिए। हम नाम की बात करते हैं तो व्यक्ति घबरा जाते हैं। मेरे भगवान का नाम नहीं लिया। हम सभी भगवान को मानते हैं परंतु उन्हें ही जिनमें ये लक्षण घटित हो जाते हैं। जो वीतरागी है, सर्वज्ञ हैं और हितोपदेशी हैं वे ही सच्चे देव हैं। भगवान गुणों के पुंज होते हैं। ऐसा कहना भी सीमांकन करना है। भगवान के नाम तो असीम, अनंत होते हैं। सौधर्म इंद्र ने हजार नामों से भगवान की स्तुति की परंतु भगवान के नाम की वह सीमा नहीं है।

भक्तामर स्तोत्र में आचार्य श्री मानतुंग महाराज कहते हैं-कि हे भगवन्! जब गणधर परमेष्ठी भी आपके नाम की स्तुति करने में समर्थ नहीं, देवों का गुरु बृहस्पति भी आपके गुणों को नहीं गा सकता तो मैं कैसे गा सकता हूँ। हमारे पास इतनी शक्ति ही नहीं कि नामोच्चार भी कर सकें। नाम के साथ-साथ गुणों की भी कीमत की गई है। जिसके पास ऐसे गुण हो, जिनके आने पर एक भी दुर्गुण शेष न रहे। भगवान निर्दोष होना चाहिए। जब हम बाजार जाते हैं तो देख लेते हैं कि कोई वस्तु खराब तो नहीं, कपड़ा खरीदते हैं तो देखते हैं कि फटा तो नहीं, सब्जी खराब तो नहीं, सोना प्योर है कि नहीं, उसी प्रकार भगवान निर्दोष होते हैं। जिसने राग-द्वेष, काम आदि जितने भी संसार में दोष हैं वे जीते हैं राग-द्वेष, काम भी दोष है, क्रोध, मान, जन्म, मरण भी दोष हैं। दोषों की गिनती करें तो लगता है दोष कितने हैं जिनसे भगवान रहित होते हैं। **18** दोष होते हैं लेकिन प्रश्न ये उठता है कि यदि **18** दोष मानेंगे तो गुण भी **18** ही मानने पड़ेंगे लेकिन गुण अनंत होते हैं इसलिए दोष भी अनंत ही होंगे। एक-एक दोष दूर होता जाएगा तो अनंत गुण उत्पन्न हो जायेंगे। **18** दोष भी सही हैं क्योंकि ये महादोष हैं। जिनमें अनंत दोष समाहित हैं अनंत को न जान सकते हैं और न ही कह सकते हैं। न बतला सकते हैं और न सुन सकते हैं। रत्नकरण्डक श्रावकाचार में आचार्य समंतभद्र महाराज कहते हैं-

क्षुत्पिपासा जरातंक जन्मान्तक भयस्मया।
न राग-द्वेष मोहाश्च यस्याप्तः स प्रकीर्त्यते।।६।।

अर्थात् क्षुत् यानि क्षुधा, भूख। जिसने भूख को जीत लिया है वह निर्दोष है। सबसे बड़ा दोषों का पिण्ड, जनक-पेट है। लोग बोलते हैं-पापी पेट होता है। जिसके लिए व्यक्ति अनेकानेक पाप करता है। ऐसा कौन सा पाप है जो व्यक्ति पेट

के लिए न करता हो। प्रारंभिक अवस्था में रात्रि भोजन का त्याग, क्षुधा जीतने का प्रथम साधन है/सोपान है। अभक्ष्य का त्याग करो, मधु, मांस का सेवन छोड़ दो यह क्षुधाजयी बनने का तरीका है, परमात्मा की मंजिल तक पहुँचने का तरीका है। पहले कहा जाता है-जिंदगी खाने के लिए नहीं, जीने के लिए मिली है। खाकर जीवन पूरा कर देना जिंदगी का मूल्यांकन नहीं है। एक क्षुद्र प्राणी भी खा-पीकर जीवन पूरा कर देता है। वैसा तुमने भी किया तो क्या विशेषता रही। विचारशील सोचता है-सब की तरह मैंने भी जीवन जिया तो क्या विशेषता है वह विचारता है-हम अपने जीने का तरीका बदलेंगे। मेरा जीवन अलग ही होगा। वह प्रतिज्ञा करता है-अभक्ष्य कभी नहीं खायेंगे, नित्य देव दर्शन करेंगे, शुद्ध भोजन, छना हुआ पीने पीयेंगे, अमर्यादित, बाजार का नहीं खायेंगे। प्रथम सीढ़ी है जिस पर व्यक्ति चढ़ता है, एकासन-उपवास करेंगे कदम आगे बढ़ाता है।

उपवास के समय सोचेंगे हमारा अनशन स्वभाव है। अरहंत-सिद्ध परमेष्ठी अपने इसी स्वभाव में रहते हैं। दिगंबर जैन परंपरा का सिद्धान्त है कि केवली कवलाहार नहीं करते। केवलज्ञान के बाद परमौदारिक काय पुण्य योग से टिका रहता है। १ क्षायिक लाभ लब्धि होती है। जिस कारण पुण्यरूप शुभ वर्गणाओं से शरीर निर्मित होता है। कई लोग लंबे उपवास करते हैं फिर भी कोई अंतर नहीं दिखता क्योंकि लाभान्तराय का क्षयोपशम है। अरहंत-सिद्ध क्षुधाजयी है। पिपासा यानि प्यास को भी जीत लेते हैं। चूंकि संत जन उसी पक्ष के अनुगामी हैं अत: वे भी क्षुधा व तृषा को जीतने का अभ्यास करते हैं। शांत परिणामों से क्षुधा व तृषा की वेदना को सह लेते हैं। आगे कहते हैं जरा -यानि वृद्धावस्था अरहंत भगवान कभी वृद्ध नहीं होते। आदिनाथ भगवान की आयु **84** लाख पूर्व कोटि व महावीर भगवान की आयु **72** वर्ष की थी फिर भी उनमें कोई अंतर नहीं दिखता परंतु अरहंत बनने के बाद भगवान ज्यों के त्यों ही रहते हैं वृद्ध नहीं होते। आतंक-रोग, बीमारी अर्थात् वे बीमारियों को भी जीत लेते हैं। यह दिगंबर संप्रदाय का सूत्र है। हमारे यहाँ परमात्मा कभी बीमार नहीं होते। जन्म, मरण करना भी महादोष है। अरहंत परमेष्ठियों का न अब जन्म होगा न मरण इसलिए वे उससे भी रहित होते हैं। भय-घबराहट, कोई दुर्घटना घट जाए तो सामान्य व्यक्ति घबरा जाता है। परंतु परमात्मा कभी घबराते नहीं क्योंकि उन्होंने भय को भी जीत लिया है। सम्यग्दृष्टि भी सप्त भयों से रहित होता है परंतु भय संज्ञा तो उनके भी होती है। जबकि भगवान संपूर्ण भयों व भय संज्ञा से भी रहित होते हैं। विस्मय-आश्चर्य, कुछ नया,

अनहोनी देख हमें आश्चर्य होता है। परंतु भगवान के केवलज्ञान में सब कुछ झलकता है इसलिए वे विस्मय से रहित होते हैं। राग-द्वेष, मोह से भी रहित होते हैं। इन सभी दोषों से जो रहित हैं वे ही शास्त्रों में, आगम में आप्त कहे गये हैं। आप्त, सच्चे देव, परमात्मा, ईश्वर, बुद्ध किसी भी नाम से पुकारो वे ही हमारे सच्चे भगवान है।

आचार्य भगवन् ने **18** दोष गिनाये हैं- जन्म, जरा, तिरखा, क्षुधा, विस्मय, आरत, खेद, रोग, शोक, भय, मोह, मद, निद्रा, चिंता स्वेद।

राग द्वेष अरु मरण जुत ये अठारह दोष, होत नहीं अरहंत के सो छवि लागे मोष।।

इन **18** दोषों से रहित होने के कारण वे वीतरागी हैं जिसने राग, द्वेष कामादिक जीते अर्थात् जो वीतरागी हैं। सब जग जान लिया अर्थात् सर्वज्ञ हैं। सर्वज्ञ सारे संसार में ही नहीं, लोकालोकवर्ती सब पदार्थों व उनकी भूत-भावि और वर्तमान पर्यायों के युगपत ज्ञाता हैं। इसलिए वे सर्वज्ञ या अनंतज्ञ हैं। सर्वज्ञ या अनंतज्ञ दोनों का अर्थ एक है। एक बार प्रश्न खड़ा हो गया कि जैनियों के सर्वज्ञ परिपूर्ण ज्ञान के धारी हैं, पदार्थ अनंत हैं तथा सर्व का अर्थ-सीमित, मर्यादित है सबको जान लिया यानि अंत को भी जान लिया यानि उनकी मान्यता में अनंत नहीं रहे और सर्वज्ञ है तो ज्ञान पूर्ण नहीं। एक बार सेमिनार लगा हुआ था अनेक विद्वान एकत्रित हुए। सर्व का अर्थ सीमित नहीं अपितु सर्व यानि जो संख्यात, असंख्यात व अनंत तीनों को जानता है। संख्यात को संख्यात के रूप में, असंख्यात को असंख्यात के रूप में तथा अनंत को अनंत के रूप में जानता है। वह ही सर्वज्ञ, अनंतज्ञ है।

वे सब पदार्थों के ज्ञाता-दृष्टा होते हैं, प्रत्येक प्राणियों को उपदेश देने वाले होते हैं। दूसरा कोई व्यक्ति आता है तो परिचय लेना पड़ता है-आप कौन है, कहाँ से आये हैं, भगवान न परिचय लेते हैं न पूछते हैं। आपके यहाँ सभा में गाय घुस आये तो आप बाहर कर देते हैं। परंतु समवशरण में गाय, बैल, भैंस, सिंह भी अपने-अपने उचित स्थान पर बैठ जाते हैं। उपदेश सुनने का अधिकार उन्हें भी है। हम नहीं समझ पाते कि वे सुनना चाहते हैं। भगवान की देशना सभी के लिए होती है। आगे गुरु का स्वरूप बतलाते हुए कहते हैं-

गुरुव: पांतु नो नित्यं, ज्ञान दर्शन नायका:।
चारित्रार्णव गंभीरा मोक्ष मार्गोपदेशका:।।

गुरु मोक्ष मार्ग के उपदेशक होते हैं। उसी प्रकार भगवान होते हैं निस्पृह होकर उपदेश देते हैं। आज का संसार स्पृहा में जुटा है। प्राय: कर प्रवचनकारों की बड़ी-बड़ी माँगे रहती हैं। एक प्रवचन का 1 लाख, 5 लाख, 10 लाख। इस पर भी पूछते हैं कि क्या आपके स्थान पर टी. वी. प्रसारण की व्यवस्था है। बैठने के लिए कुर्सी है नया पांडाल है तो आयेंगे। आज न्यू प्रोजेक्ट तैयार हो गये। सारी सामग्री किराये से लेनी पड़ेगी। माईक सही है, अमुक कम्प्युटर का सामान हो तो प्रवचन कर सकता हूँ। प्रवचन भगवान की वस्तु है उसे बेचा नहीं जा सकता पराई वस्तु को बेच रहे हो प्रवचन का मूल्यांकन संभव नहीं। यदि आपने 1 लाख की कीमत कर दी तो उसकी अमूल्यता को समाप्त कर दिया। प्रवचन का अर्थ- ''**प्रकृष्टं वचनं इति प्रवचन:**'' प्रकृष्ट वचन ही प्रवचन है उसका कोई मूल्य नहीं वे अमूल्य होते हैं।

''**सब जीवों को मोक्ष मार्ग का निस्पृह हो उपदेश दिया**'' अर्थात् जो हितोपदेशी है। भगवान किसी से कोई अपेक्षा आकांक्षा नहीं रखते इसलिए वे हितोपदेशी कहलाते हैं। इस प्रकार वीतरागता, सर्वज्ञता व हितोपदेशी ये तीन गुण जिनमें हो वे-

''बुद्ध वीर जिन हरि-हर ब्रह्मा, या उसको स्वाधीन कहो।
भक्ति भाव से प्रेरित हो यह, चित्त उसी में लीन रहो।।''

नाम तो मात्र पुकारने के लिए होता है जो वीतरागी, सर्वज्ञ, हितोपदेशी हैं इन गुणों से युक्त हैं उन्हें चाहे आप बुद्ध, वीर, जिन कहो, हरि, हर ब्रह्मा कहो, ईश्वर, परमात्मा, विष्णु, महेश कुछ भी कहो वे सब पूज्यनीय है तथा जिसके पास एक भी दोष हो तो क्या वह देव कहलायेगा? नहीं, अपितु जो दोषों से रहित हैं वही सच्चा देव है। उन्हीं सच्चे देव की भक्ति में मेरा चित्त लीन रहे अर्थात् उन्हीं की आराधना, भक्ति में लगा रहे। इस प्रकार इस काव्य के माध्यम से सच्चे देव को नमस्कार किया गया है इस काव्य ने णमो अरिहंताणं को सार्थक बनाया है। इस प्रकार हम सभी सच्चे देव के स्वरूप को जान उनकी स्तुति भक्ति कर अपने जीवन को सफल/सार्थक बनाएँ।

इसी भावना के साथ....

''जय बोलिये संभवनाथ भगवान की जय''

दिनांक 4-7-2008
शुक्रवार, प्रात: 9.30 बजे — बोरीवली, मुंबई

रागी नहीं वीतरागी बनूँ

भव्य मनीषियो!

जिस मेरी भावना के विषय में कल हम सभी देख रहे थे। सच्चे देव वे होते हैं। वीतरागी वे हैं जो **18** दोषों से रहित हैं। यदि एक दोष भी हो तो वीतरागी नहीं हो सकते, केवलज्ञान से सहित सर्वज्ञ प्रत्येक प्राणी को मोक्षमार्ग का उपदेश देते हैं इसीलिए जो हितोपदेशी हैं वे हमारे परमात्मा हैं। राग के अभाव का पहला विश्लेषण है-जिस परमात्मा में राग पाया जाता है वह परमात्मा संज्ञा को प्राप्त नहीं होता। जो वीतरागी हैं वही सच्चा देव है। जिसमें राग है वह देव नहीं है जिसमें द्वेष है वह भी देव नहीं है, राग-द्वेष ही संसार का सबसे मूल कारण है, संसार में घुमाने वाला प्रबल हेतु है। जो अनादि काल से संसार में प्राणी को घुमाता रहा जिसके कारण पंच परावर्तन को जीव पूरा करता है। राग को शास्त्रों में आग कहा गया है, छहढाला में पंडित दौलतरामजी कहते हैं-

यह राग आगे दहे सदा, तातै समामृत सेइए।
चिर भजे विषय कषाय अब तो, त्याग निज पद बेइए।।

राग एक आग है जो निरंतर प्राणी को जलाती है। बाहर की आग तो प्राणी को बाहर से जलाती है जो दिखने में आती है। अंदर की आग आत्मा को जलाती है। जो दिखने में नहीं आती। देखना चाहें तो कुछ समय उपरांत देख सकते हैं। क्योंकि रागी चिंतित होता है। राग भी दो प्रकार है। (1) विषयानुराग-पंचेंद्रिय के विषय भोगों में मन जाता है, परिणति जाती है, वह विषयानुराग है। शास्त्रों में इसी राग को आग कहा है। जब व्यक्ति का मन दूषित, खराब हो तो राग उत्पन्न होता है। जो अभिलाषा है उसे अभीष्ट सामग्री न मिले तो जलता है। शास्त्रों में अब्रह्म

की/काम की दस चेष्टाएँ कही हैं-जब कोई राजा किसी स्त्री पर मोहित होता है, तो मूर्छित होकर जमीन पर गिर जाता है, शरीर में ज्वर आ जाता है। मंत्रियों ने कुशल वैद्यों से शीतोपचार कराया जिससे उसका ताप शांत हुआ फिर उठकर उसी धुन में लग जाता है। जहाँ स्वयंवरों के उल्लेख मिलते हैं। वहाँ बहुत से उदाहरण मिलते हैं यही सबसे बड़ा राग है। व्यक्ति को जलाता है। महाराज श्रेणिक ने जब चेलना के चित्रपट को देखा तो वे इतने प्रभावित हो गये कि उन्होंने जीने की आशा छोड़ दी, भोजन करना बंद कर दिया, भूख, नींद दोनों ही गायब हो गई। मंत्रियों ने पूछा महाराज! आप चिंतातुर दिख रहे हैं आपकी चिंता का कारण क्या है। अभय कुमार जो अत्यंत चतुर थे धीरे-धीरे पता लगा ही लेते हैं कि आखिर बात क्या है। श्रेणिक राजा बता देते हैं कि मेरा जीवन अमुक कन्या है। यदि वह मिलेगी तो जीवन रहेगा अन्यथा नहीं रहेगा। व्यक्ति जीवन को राग की आग में स्वाहा कर देता है। आचार्यों ने कहा है कि मोहनीय कर्म ही सभी कर्मों का राजा है। सब कर्मों को जीतना आसान है परंतु मोह को जीतना कठिन है। एक बार राग केकैई ने किया राजा दशरथ से। जिसके कारण केकैई ने युद्ध करते समय जब राजा दशरथ के रथ की कील निकल गई थी तो अपनी अंगुली को कील के स्थान पर लगाकर रथ भंग होने से बचाया था। बाद में जब राजा दशरथ विजयी हुए तो दृष्टि केकैई की अंगुली पर पहुँची, केकैई से पूछा गया-अंगुली से खून क्यों निकल रहा है तो केकैई ने सारी कहानी सुना दी, जिससे राजा दशरथ बहुत प्रसन्न हुए और केकैई की वीरता से खुश होकर उन्होंने केकैई से इच्छित वर मांगने को कहा-अब दशरथ का अनुराग लगा केकैई पर। केकैई ने वर सुरक्षित रखने को कहा। अब अवसर महाराजा राम के राजतिलक का था, सारे नगर में साज-सजावट चल रही थी। राजमहल के अंदर चौक पूरे जा रहे थे। प्रातः काल राम का राजतिलक होना था। जगह-जगह से आमंत्रित लोग राजा-महाराजा आ रहे थे। शहनाईयाँ बज रही थी, मंगलगीत गाये जा रहे थे तभी महारानी केकैई कोप भवन में पहुँच गई। कोप भवन में पहुँचना यानि कोई न कोई कारण है। महाराजा दशरथ को जैसे ही पता चलता है वे सारे काम छोड़कर कोप भवन पहुँचते हैं और कहते है हे देवी! ऐसे मांगलिक अवसर पर आपके यहाँ आने का कारण क्या है। केकैई तो सिर भी ऊपर नहीं उठाती, महाराजा दशरथ उठाते हैं और पूछते हैं बोलिये, आपके कोप का कारण क्या है? वह कहती है-महाराज! आपके खजाने में मेरा एक वरदान सुरक्षित है।

दशरथ कहते हैं-हाँ मुझे ज्ञात है। मांगो क्या चाहती हो। केकैई कहती है-वचन दीजिए जो मागूंगी वह आप देंगे। दशरथ कहते हैं-महारानी कैसी बातें करती हो, क्या मुझ पर विश्वास नहीं।

"रघुकुल रीत सदा चली आई, प्राण जाए पर वचन न जाई।।"

ठीक है-अब निर्भयता से मैं अपना वरदान मांग सकती हूँ। पहला वरदान-आज राजतिलक भरत का होगा। दशरथ विस्मय में पड़ गए राम का प्रचार है इसलिए भरत को शोभा नहीं देगा। अधिकार राम का है और वह सभी विद्याओं में निष्णात भी है, ज्येष्ठ भी है। दशरथ कहते हैं-केकैई थोड़ा पुन: विचारो, सोचकर ही बोल रही हो। सत्य राजा का प्राण होता है, सत्य ही राजा का जीवन है यदि देना है तो मुझे सत्य वचन दे दो। महाराजा दशरथ वचन के पक्के थे अत: स्वीकार कर लिया। ठीक है आज राजतिलक भरत का होगा। यहाँ तक तो कोई बात नहीं लेकिन इसके बाद दूसरा वरदान है-राम को 14 वर्ष का वनवास दीजिए। शब्द सुनते ही दशरथ मूर्च्छा खाकर गिर पड़ते हैं। अब वे अपने दिये वरदानों पर पछता रहे थे। कि मैं नहीं जानता था कि केकैई ऐसा करेगी। राम मेरा ज्येष्ठ प्रिय पुत्र था, जिससे मुझे बहुत सी आशाएँ थी। महाराजा दशरथ ने केकैई से राग किया तो राम को खो दिया। जब राम वन की ओर प्रस्थान कर गये तो सीता ने सुवर्ण-हिरण पर राग किया तो राम को खो दिया। राम ने सीता पर राग किया तो सीता को खो दिया। रावण ने सीता पर राग किया तो लंका को खो दिया। इसलिए भगवान कहते हैं-राग ही सबसे बड़ा बंधन है। रस्सी से बंधा व्यक्ति पुन: उसी स्थान पर आना पसंद नहीं करता। परंतु राग से बंधा व्यक्ति बार-बार वहीं आता है।

तोता बनना, कबूतर नहीं। कबूतर का पिंजरा बंद नहीं रहता वे खुले रहते हैं, पिंजरे में द्वार या सांकली नहीं होती क्योंकि घूमकर फिर वहीं वापस आते हैं। जबकि तोते का पिंजरा एक मिनट के लिए भी खुला नहीं रहता निरंतर बंद रहता है तोता इंतजारी में रहता है कि कब खिड़की खुले और हम यहाँ से उड़ जायें, जैसे तोता निरंतर विचार करता है और अवसर पाकर निकल जाता है और एक बार बाहर निकला तोता वापस लौटकर नहीं आता उसी प्रकार वैरागी संतजन होते हैं। जो पिंजरे से एक बार निकले और लौटकर घर नहीं गये। और आप सभी कबूतर की तरह हैं जो बार-बार लौट-लौट कर पिंजरे अर्थात् घर की ओर जाते हैं। कितनी बड़ी रस्सी है आपकी। अपने घर से दूर-दूर तक चले जाते हो, विदेश भी घूम-घूम

कर वापस घर को लौट आते हो। ये घर कोई वास्तविक घर नहीं, अपितु ईंट, चूने का घर है। यह वास्तविक घर नहीं यह तो सब यहीं रह जायेगा। अपना वास्तविक घर तो कुछ दूसरा ही है। जिस ओर पहुँचने का प्रयत्न ही नहीं करते। जिसके लिए तो विद्वानों ने लिखा-

हम तो कबहुँ न निज घर आये।
पर घर फिरत बहुत दिन बीते नाम अनेक धराये।
कि हम तो कबहुँ न निज घर आये।

कवि कहता है-कभी हम अपने निज घर नहीं आये पर घरों में ही घूमते रहे और उसी को अपना मानते रहे। यह ईंट-चूने का घर धर्मशाला के तुल्य है, सफरखाना है। न जाने कितने यात्री इस घर में रूक कर चले गये, कितने हैं और कितने आयेंगे कोई पता नहीं, कोई भरोसा नहीं, भगवान कहते हैं-राग को छोड़ो, जिस में पड़कर हम अपने घर को भूल जाते हैं, उस नशे को छोड़ दो। राग-मोह एक नशा है। छहढाला में पंडित दौलतरामजी कहते हैं-

मोह महामद पियो अनादि, भूल आपको भरमत वादी।

जिस प्रकार नशे में व्यक्ति अपनी सुधबुध खो देता है, अपने आप को भूल जाता है, शराबी को अपने पराये का ज्ञान नहीं होता, आगे-पीछे का होश नहीं रहता, बेहोश हो जाते हैं। तुलसीदास जी के विषय में उल्लेख मिलता है कि वे अपनी होने वाली पत्नी से मिलने के लिए इतने आतुर/अंधे हो गये कि वे इतना भी भूल गये कि नदी का पानी तेज गति में है, उफान पर है, इस समय मुझे नहीं निकलना चाहिए। उन्होंने शव को ही लकड़ी समझ लिया व पार हो गये वे भूल गये कि अभी रात्रि है। रात्रि में जायेंगे तो लोग क्या कहेंगे, जब वे भवन की ऊपर की मंजिल में जाना चाहते थे तो दरवाजा बंद था इसलिए सोचा खिड़की से ही जाता हूँ। वे सर्प को ही रस्सी समझकर ऊपर चढ़ गये। रागी को उचित/अनुचित का ज्ञान नहीं रहता कदाचित् सर्प डस लेता, नदी डुबो देती अभी तो मात्र सगाई हुई थी। ससुराल के लोग सुनेंगे तो लड़की देने से मना कर देंगे। राग व्यक्ति को अंधा कर देता है कहा भी गया है-

विषयासक्त चित्तानां गुणा को वा न नश्यति।
न वैदुष्यं न मानुष्यं नाभिजात्यं न सत्यभाक्।।

जब व्यक्ति विषयासक्त हो जाता है तो कुछ जानता, देखता नहीं। सब कुछ भूल जाता है अंत में पश्चाताप करता है। आंसू बहाता है कि मैंने अच्छा नहीं किया।

इसलिए बंधुओ! भगवान कहते हैं राग बुरी वस्तु है। भगवान मात्र कहते ही नहीं करके भी दिखा देते हैं। उन्होंने राग को छोड़ा और वीतरागी बन गये, द्वेष को छोड़ा और वीतद्वेषी बन गये। राग के समान द्वेष को भी छोड़ना जरूरी है। जैन धर्म में वीतरागी की बात की है। वीतद्वेषी की नहीं। तो क्या आपके भगवान रागी न होकर द्वेषी होते हैं। ऐसा प्रश्न किया गया। मैंने कहा-भैय्या! रागं यत्र पदं धत्ते, द्वेषं तत्र सुनिश्चयः।

जहाँ राग होता है वहाँ द्वेष भी नियम से होता है। जहाँ राग नहीं वहाँ द्वेष भी नहीं रहता। वीतराग में ही वीतद्वेष भी समाविष्ट होता है। इसीलिए हमारे भगवान वीतरागी व वीतद्वेषी हैं। जिन्होंने राग-द्वेष, काम-वासना को जीत लिया है। वीतराग मूर्ति के साथ स्त्री की मूर्ति नहीं मिलती जबकि अन्य संप्रदायों मे बिना देवी के देवता होते ही नहीं हैं। राग है किसी को मुकुट से, किसी को कुण्डल से, तो किसी को हार से। हार भी मोती, चांदी, सोने का नहीं, अपितु रत्न जड़ित हो। आचार्य भगवन् कहते हैं कि यदि ये सामग्रियाँ तुम्हारे पास हैं तो राग-द्वेष नियम से रहेंगे। मेरा हार अच्छा, तुम्हारा खराब। अच्छा हैं तो राग, बुरा है तो द्वेष। व्यक्ति सोचते हैं कि मेरे पास भी ऐसी सामग्री हो। भगवान कहते हैं मुझे किसी प्रकार का हार नहीं चाहिए। जब विधान, पूजा होती है तो यदि कहा जाए कि आपको एक-एक मुकुट उठाना है तो बड़े साईज के हार मुकुट सबसे पहले उठते हैं। यह भी पता नहीं कि जेन्ट्स मुकुट है या महिला। पड़ौसी बड़ा पहने है तो मैं छोटा कैसे पहनूँ। मुकुट, हार, कंकड़, मुद्रिका जो भी बाह्य आभूषण हैं सब राग-द्वेष की जननी है। अतः कुछ भी नहीं चाहिए। सौधर्म इंद्र रत्न-जड़ित मुकुट भगवान को दे सकता है परंतु भगवान लेना तो दूर उस पर दृष्टि भी नहीं डालते जब भगवान विहार करते हैं तो उनके चरण कमलों के नीचे इंद्र सुवर्ण-कमलों की रचना करता है परंतु भगवान उससे भी चार अंगुल अधर ही रहते हैं।

आचार्य समंतभद्र महाराज कहते हैं हे प्रभु! धन्य हैं आप, आपके चरणों में हम दौड़ कर आये हैं। आपको देखकर मेरे नेत्र तृप्त नहीं हो रहे हैं। बिना वस्त्राभूषण के भी आप इतने सुंदर दिख रहे हैं। आचार्य भगवन् आप्तमीमांसा ग्रंथ में कहते हैं-

देवागम नभोयान चामरादि विभूतयः।
मायाविष्वपि दृश्यन्ते नातस्त्वमसि नो र्महान।। 1।।

हे! भगवन् मैं आपके चरणों में इसलिए नहीं आया कि देवतागण सेवा में रत हैं, चँवर ढुरा रहे हैं। समवशरण की रचना हुई है स्वर्ग का अमूल्य वैभव समवशरण में लगा है अपितु मैं तो वीतरागता का पुजारी/दास हूँ। भक्त हूँ। ये सारी सामग्री साथ नहीं जाती। यहीं रह जाती है इनसे प्रभावित होकर आपके चरणों में नहीं आया अपितु जो वीतरागता आपने पायी है। वह किसी और ने नहीं पायी। बहुरूपिया भी ऐसे समवशरण को तैयार कर सकता है। परंतु समवशरण तैयार करने मात्र से कोई वीतरागता को ही मेरा नमस्कार है। क्योंकि शरीर या व्यक्ति नहीं अपितु गुण पूज्यनीय होते हैं। तत्वार्थ सूत्र में भी आचार्य उमास्वामी महाराज कहते हैं- '**वंदेतद्गुणलब्धये**' अर्थात् वीतरागी भगवान के गुणों की प्राप्ति के लिए उनको नमस्कार करता हूँ।

अपने वीतरागी प्रभु को समझे, उनके पथ पर चलने, श्रद्धा, आस्था बना लें। उनके बताए पथ पर चलोगे तो आप भी वीतरागी बन जाओगे।

वीतरागता में ही सच्चा सुख है। राग में नहीं, राग से तो अंततः दुःख होता है। पंखे, कूलर की हवा अच्छी लगती है, ए.सी. का तो कहना ही क्या है। परंतु जिस दिन आपको शीत ज्वर हो जाए उस दिन बताना कैसा लगता है। बुरा लगता है इसका मतलब है कि पदार्थों मे अच्छे-बुरे की कल्पना करना हमारा भ्रम है। इस अच्छे लगने मे हम अपनी अमूल्यता को भूल जाते हैं। मकान बनाने में सारा जीवन लगा देते हैं परंतु अतंतः वह भी छूट जाता है।

एक बार एक राजा ने एक ऐसा भवन बनाया कि जिसमें कोई कमी न हो। उद्घाटन के समय यह घोषणा की, कि इस भवन का उद्घाटन तभी होगा जबकि इसमें कोई कमी न हो, सभा में बड़े-बड़े इंजीनियर पहुँच गये हर तरफ से परफेक्ट था कोई कमी नजर नहीं आई सभी ने ओ.के. कर दिया, परिपूर्ण भवन है। लेकिन एक वृद्ध मंत्री थे वे उठकर खड़े हो गये, बोले-महाराज इसमें तीन कमी है। राजा बोला अच्छा तो शीघ्र कमियों को दूर किया जाए, महाराज! कमियों को दूर करना संभव नहीं। राजा बोले-तुम्हें खजाने से जितना धन चाहिए वह ले लो। महाराज! पूरा खजाना भी लगा दूँ तो भी वह कमी पूरी नहीं हो सकती। अच्छा वे कमियाँ क्या हैं:-

1. पहली कमी यह भवन हमेशा नहीं रहेगा। जिसे बनाने में हम सारी जिंदगी लगा देते हैं। बड़े-बड़े राजाओं के खंडहर आज पड़े हैं। इस कमी को कोई पूरा नहीं कर सकता।

2. दूसरी कमी जिसने भवन बनाया वह भी हमेशा नहीं रहेगा। एक भवन नहीं रहेगा तो दूसरा बना लूँगा बनाने वाले भी दूसरे लोग बुला लूंगा। वे भी नहीं रहेंगे।

3. जिसने बनवाया वह भी नहीं रहेगा।

इन बातों को सुनकर राजा सोचता है इतनी मेहनत क्यों करूँ। वे वैराग्य को प्राप्त होकर निज भवन की खोज में चल दिये वन की ओर। हम अपने वास्तविक आत्म वैभव को राग के वशीभूत होकर छोड़ देते हैं। समयसार जी की **150** नं. की गाथा में आचार्य भगवन् कुंदकुंद देव कहते हैं-

रत्तो बंधदि कम्मं, मुञ्चदि जीवो विराग संपत्तो।
ऐसो जिणोवदेशो, तम्हा कम्मेसु मा रज्ज।।150।।

अत: वीतराग, सर्वज्ञ, हितोपदेशी देव ने अनंत, असीम सुख को पा लिया है जब तक वह न मिले प्रसन्नता से वीतराग के गुण गाते रहो। परंतु ध्यान रखिये भगवान की भक्ति वीतरागी बनकर नहीं होती ध्यान अवश्य हो सकता है। कुछ लोग कहते हैं-देव, शास्त्र, गुरु से राग मत करो बंधुओं! यह राग, राग को मिटाता है। जिस प्रकार हीरे को काटने के लिए दूसरा हीरा चाहिए। कांटे से कांटा निकलता है उसी प्रकार वीतरागता का राग विषयानुराग को नष्ट करता है। जिसे शास्त्रों में अनुराग की संज्ञा दी जाती है।

जब तक वीतरागी न हो जाओ तब तक वीतरागता को न छोड़ देना। वीतरागता को छोड़ दिया तो राग के गहरे गड्ढे में चले जाओगे जब तक राग न छूटे वीतरागियों के चरणों को पकड़े रहना क्योंकि वीतरागियों की शरण में राग को छोड़ना नहीं पड़ता अपितु वह तो स्वयमेव ही छूट जायेगा।

इसी भावना के साथ....।

''श्री अभिनंदन नाथ भगवान की जय''

दिनांक 5-7-2008
शनिवार, प्रात: 9.30 बजे — बोरीवल, मुंबई

विरागी गुरु के चरण नमूँ

भव्य आत्महितेच्छुओं!

मेरी भावना के माध्यम से हमने अरहंत भगवान को समझने का प्रयत्न और प्रयास किया उनकी आराधना-उपासना की है इतने सार्वभौमिक सिद्धान्त से ही है कि वीतराग, सर्वज्ञ व हितोपदेशी लक्षण से सहित बुद्ध, वीर, हरि, हर हो, ईश्वर हो या ब्रह्मा किसी भी नाम से पुकारो बस, उनकी आराधना करते रहना। भक्त भावना भाता है कि आपकी भक्ति में मेरा मन सदा तल्लीन रहे। अगले काव्य में गुरु की उपासना करते हैं, भारतीय संस्कृति में गुरु का बहुत उच्च स्थान है। शास्त्रों में कहा है कि यदि गुरु न हो तो भगवान के मोक्षमार्ग का परिचय नहीं हो पाता इसीलिए णमोकार मंत्र में पहले णमो अरिहंताणं कहा गया है। क्योंकि सिद्धों का ज्ञान कराने वाले अरहंत ही होते हैं। इसीलिए वे पूज्यनीय हैं। कहा भी है-

गुरु गोविन्द दोउ खड़े, काके लागूँ पाय।
बलिहारी गुरुदेव की, गोविन्द दियो बताय।।

अर्थात् भगवान और गुरु दोनों एक साथ खड़े हों तो हम नहीं समझ पाते कि पहले किसे नमस्कार करें। उन गुरुवर की बलिहारी है जिन्होंने भगवान तक पहुँचने का रास्ता दिखाया है। इसीलिए प्रथम नमस्कार गुरु को ही करते हैं गुरु का स्वरूप बतलाते हुए दूसरे काव्य में कहा गया है-

विषयों की आशा नहीं जिनके, साम्य भाव धन रखते हैं।
निज पर के हित साधन में जो, निशदिन तत्पर रहते हैं।।
स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या, बिना खेद जो करते हैं।
ऐसी ज्ञानी साधु जगत के, दुःख समूह को हरते हैं।।2।।

बतलाया गया है गुरु कौन हैं, तो पहला हेतु दिया, जिनके विषयों की

आशा नहीं है। अर्थात् विषयों की आशा को जीतने वाले हैं। आचार्य संमतभद्र महाराज कहते हैं :-

विषयाशा वशा तीतो निरारम्भो परिग्रह:।
ज्ञान ध्यान तपो रक्त: तपस्वी स: प्रशस्यते।।10।। र.श्रा.

अर्थात् विषयाशा अवश अतीत: जो विषयों की आशा के अवश हैं। पंडित जुगलकिशोरजी भी कहते हैं-आशा को जीतना है आशा वह अवस्था है जो उसके अधीन रहता है वह उसे अपना दास बना लेती है। तथा जो आशा को ही अपना दास बना लेते हैं वह उनकी दासी बन जाती है। दोनों में इतना अंतर है कि एक को दासी बनाती है, एक के प्रति दासी बन जाती है।

आचार्य भगवन् कहते हैं-विषयों को जन्म देने वाली आशा है। जब व्यक्ति विषयों की आशा में, विचार में, आकांक्षा में डूबता है तो विषय वासनायें जन्म ले लेती हैं। विचार है, परिणाम है, जिस दिशा में जायेंगे उसी मंजिल तक पहुँचायेंगे। आ. भगवन् कहते हैं जिसने विषयों की आशा को जीत लिया उसने विषयों को जीत लिया। यहाँ आशा ही क्यों कहा-आशा को ही जीतने की बात क्यों की? क्या विषय, आशा से छोटे होते हैं। विषय तो गहरे गर्त हैं वे दुर्गति नरक में ले जाते हैं। तथा उस विषय को जन्म देने वाली आशा/आकांक्षा होती है।

बंधुओं! यदि इच्छा न हो तो वासनायें जाग्रत नहीं हो सकती। शास्त्रों में सेठ सुदर्शन का दृष्टान्त प्रसिद्ध है। सेठ सुदर्शन को देखकर एक बार वहाँ की रानी उन पर मोहित हो गई। इतनी अधिक मोहित हो गई कि वह सोचने लगी कि सेठ सुदर्शन के बिना जीवन बेकार है। मैं तो राजमहल में हूँ। उन्होंने दासी के सामने अपनी इच्छा प्रकट कर दी। दासी मेरा जीवन संदेहास्पद है। जीवित रहूँ यह संभव नहीं। दासी ने पूछा-ऐसा क्यों? आखिर बात क्या हो गई? रानी दासी को सब कुछ कह देती है। दासी कहती है-ठीक है, मैं कुछ उपाय करूंगी। रानी सोचती है यह कैसे संभव है-राजमहल के बाहर मैं जा नहीं सकती कोई यहाँ आ भी नहीं सकता। दासी कहती है-सेठ सुदर्शन रात्रि में नदी किनारे अष्टमी व चतुर्दशी को उपवास पूर्वक साधना करते हैं। लक्ष्य सिद्धि हेतु 7 मिट्टी के पुतले बनाये गये उन्हें विभिन्न कपड़ों से लपेटा गया। दासी पहला पुतला लाती है जैसे ही प्रवेश करने लगती है, द्वारपाल रोक देता है। दासी कहती है मुझे रोको मत यह पूजा का अपशकुन है यह बात या तो मैं जानती हूं या महारानी। बतलाओ तो सही वह गिरती है तो पुतला भी

गिर जाता है और टूट जाता है यह कामदेव की मूर्ति है। पूजा के लिए ले जा रही थी मैं रानी से तेरी शिकायत करूंगी। वह डर जाता है इस प्रकार वह छहों द्वारपालों को जीत लेती है। अब 7 वें दिन वह सेठ जी को लेकर आती है। सुदर्शन सेठ तो धर्मात्मा थे, वे तो ध्यान कुचेष्टा करती है। जिसका मन मजबूत होता है तो तन भी मजबूत होता है। मन कमजोर है तो तन भी कमजोर होगा। रात्रि भर रानी ने सेठजी को परेशान किया परंतु वे अपनी तपस्या से नहीं डिगे। प्रात:काल होने वाली थी अब रानी घबरा गई। रानी ने षड़्यंत्र रचा उसने अपने कपड़े फाड़ दिये, रोना शुरू कर दिया। महाराज को बुलाया गया। रानी, राजा को मनगढ़ंत बातें कह देती है कि इस सेठ ने मेरे शील का उल्लंघन किया और आपके सामने आंखें बंद करके खड़े हो गये हैं। राजा स्त्री की बातों मे आ गये। कलंक लगाना आसान है वही लगेगा, जहाँ कमजोरी होगी। राजा ने आदेश दिया कि सेठजी को सूली पर चढ़ाया जाए, व्रत हो तो परीक्षा भी होती है जैसे ही सेठ को सूली पर चढ़ाया गया, सेठजी के शील के प्रभाव से सूली, सिंहासन में बदल गई।

व्यक्ति का मन पहले खराब होता है। आचार्य कहते हैं-जिसने मन को जीत लिया, कोई विकार भाव नहीं है। निर्ग्रंथ मुनि दीक्षा के पहले अभ्यास करते हैं। वे जहाँ भी जाते हैं, हर संप्रदाय के लोग एक ही प्रश्न करते हैं कि महाराज आप नग्न कैसे रह लेते हैं। जो व्यक्ति मन को जीत लेता है उसे नग्न रहना आसान हो जाता है। नग्न रहने के लिए दो बातें अनिवार्य है-

1. लोकलाज को जीतना 2. मन को जीतना

छोटे बच्चों का मन तो खराब नहीं है परंतु कोई यदि निकर को नीचे खींचे तो वह रोने लगता है। निकर न पहने हो तो छिप जाता है कि अंकल मुझे देखकर हँसेंगे। यानि विषय वासना तो नहीं है पर लोकलाज है। यदि किसी युवा से कहा जाए कि एक चौराहे से दूसरे चौराहे तक नग्न जा सकते हो क्या? तो उत्तर मिलेगा नहीं जा सकता। कारण क्या है? तो कवि कहता है-

अंतर विषय वासना वर्ते, ऊपर लोक लाज अतिभारी।
तातें नग्न दिगंबर मुद्रा, धर न सके दीन संसारी।।

यदि विषय-वासना हो तो व्यक्ति इंद्रियों को नहीं जीत सकता यदि लोकलाज है तो भी निर्ग्रंथ नहीं बन सकता। गुरुजन इन दो बातों की परीक्षा करते हैं। मन को जीता या नहीं कहीं ऐसा तो नहीं कि मन खराब रहता हो, वे विभिन्न

प्रकार से अभ्यास कराते हैं। नग्न होकर अभ्यास करो, सामायिक करो। सामने वाले की एक्टीविटी कैसी है गुरुजन इस बात की परीक्षा करते हैं। लोकलाज को जीतना आसान है, मन को जीतना कठिन है। देखा जाता है कि व्यक्ति मन का विजयी है या नहीं। पूज्य आचार्य विमलसागरजी गुरुदेव कहते थे-दीक्षा देना पर देख लेना कि अमुक व्यक्ति लंगोट का पक्का व जुबान का पक्का हो। लंगोट का पक्का यानि ब्रह्मचर्य व्रत में मजबूत है या नहीं। विषयों की आशा को जीतने की बात की जा रही है। जो विषयों की आशा को जीत लेता है तो नग्न होना आसान हो जाता है।

अन्य संप्रदाय वाले कहते हैं-बहुत कठिन तपस्या है नग्न रहना। कलकत्ता से कुछ मुनि विहार कर रहे थे तब कुछ लोग बोले-कि आप नग्न कैसे जा रहे हैं। मुनि ने कहा-हमारा धर्म है, स्त्रियों के सामने नग्न रह सकते हैं। बालकवत् निर्विकार रहते हैं। बस फिर क्या था। एक बस भरकर आ गई, स्त्रियों के बीच रहकर निर्विकार रहते हैं। किसी को दृष्टि उठाकर देखते भी नहीं, ये है साधु का लक्षण। विषयों की आशा को जीतने वाले परम दिगंबर मुनि हैं। पूरे संसार में बालकवत् निर्विकार होकर विचरण करते हैं। शरीर में विकार नहीं होता इसलिए निर्विकारी कहलाते हैं। इसकी विशेषता है-धन-संपदा से रहित है। परंतु इतना अमूल्य रत्नत्रय रूप धन उनके पास है कि वह आपके खजाने में नहीं मिलेगा। इसीलिए कवि कहता है-

धन वाले कंगाल है गुरुवर, आप है मालामाल।

धन वाले कंगाल हैं क्योंकि जब देखो तब मांगते रहते हैं। महाराज ऐसी पिच्छी लगा दो कि हम भी मालामाल हो जाए मैंने कहा-भैया! कम से कम माला ही फेरना प्रारंभ कर दो तो मालामाल हो जाओगे। यदि माला है तो माल स्वयं चलकर आता है माला फेरने वाला कंगाल नहीं होता। और संतों के पास यदि माला न हो तो भी मालामाल रहते हैं, क्यों कि वे साम्य भाव धन रखते हैं। संतजन रास्ते में चलते हैं कोई नंगा कहता है कोई गाली भी दे देता है तो चुपचाप चले जाते हैं। अज्ञानी समझकर अपमान करने वाले को क्षमा कर देते हैं।

एक बार की बात है-आचार्य श्री महावीर कीर्ति जी महाराज का विहार जब नागोद की ओर हो रहा था तब उनके साथ परम मुनि भक्त चाँदमलजी भी साथ चल रहे थे, रोड का काम चल रहा था, रोड बनाने वाले रोड बना रहे थे।

लोगों ने नग्न साधु देख हँसना प्रारंभ किया, फिर पत्थर फेंकना व लाठी प्रहार चालू कर दिया चांदमल जी गुरु भक्त थे उन्होंने कहा-खबरदार यदि किसी ने आगे कदम बढ़ाया, चोट पहले मुझे लगेगी, मेरे गुरु तक तुम नहीं पहुँच सकते। वे लोग शराबी व उत्तेजित थे। उन्होंने लाठी का प्रहार जारी कर दिया। चाँदमलजी आगे हुए तो लाठी लगने से बेहोश हो गये। महाराज भी चोट लगने से गिर कर बेहोश हो गये। परंतु जिसके पास कोई नहीं होता उसके पास ऊपर वाला होता है। कहा भी जाता है ''जाको राखे साइयाँ, बाल न बांका होय'' अर्थात् जिसकी रक्षा स्वयं ईश्वर करते हैं उसका कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता। तभी वहाँ से पुलिस स्तल (पुलिस की गाड़ी) जा रही थी। वह भीड़ देखकर रूकी, देखा तो लोग घायल हैं। पुलिस ऑफीसर ने कहा-सबको गिरफ्तार कर लो, सब को बंदी बना लिया गया वह पुलिस जैन धर्म से परिचित था उसने चांदमलजी को गाड़ी में बिठाया और महाराज को पानी लगाया तो उनकी आंख खुल गई पुलिस अफसर ने कहा क्षमा करें महाराज! इन लोगों ने आप पर प्रहार किया और मैं समय पर आपकी रक्षा न कर सका। आप इन दुष्टों के लिए जो दंड उचित समझें वह दें आपके आदेश का पालन किया जाएगा। महाराज बोले-अच्छा, क्या सचमुच आप मेरे आदेश का पालन करेंगे। इंस्पेक्टर ने कहा-हाँ अवश्य करेंगे। महाराज ने कहा-ठीक है तो इन सब केदियों को छोड़ दिया जाए। इंस्पेक्टर देखते ही रह गया। शरीर लहुलुहान है और कह रहे हैं छोड़ दो। वे अज्ञानी हैं, जानते नहीं, आगे ऐसा नहीं करेंगे। वे सभी कैदी इतने प्रभावित हुए कि महाराज के चरणों में नतमस्तक हो गये तथा वे मजदूरी से पैसा बचाकर रखते और जमा करते जाते और हर चातुर्मास में महाराज के दर्शन करने आते थे। ऐसा साम्यभाव रूप धन संतजन अपने पास रखते हैं। जब हम संतों की समता को देखते हैं तो लगता है ऐसे निर्ग्रंथ गुरु हमे जन्म-जन्म में नहीं मिलेंगे यह हमारा परम सौभाग्य है जो निर्ग्रंथ संत हमें देखने मिल रहे हैं। आचार्य शांतिसागर जी ने दक्षिण में सब ओर विचरण कर निर्ग्रंथों के लिए रास्ते खोल दिये। आचार्य श्री आदिसागरजी ने मोक्षमार्गियों की इतना संख्या तैयार कर दी आज इतने निर्ग्रंथ साधुओं का दर्शन हमे हो रहा है। आचार्य शांतिसागर जी छाणी भी तपस्वी थे उनके बाद तो संतों की लाईन लग गई। आज अपना जीवन गौरव से भर जाता है। कई विद्वानों का जीवन निकल गया वे तरसते रहे पर उन्हें निर्ग्रंथों के दर्शन नहीं हो पाए। हम सौभाग्यशाली हैं कि हमें आहार देने, प्रवचन सुनने आदि का

अवसर मिलता है। कविवर उन मुनियों की विशेषता बता रहे हैं कि उनके पास साम्यभाव रूप अमूल्य धन है। -वे कष्ट सह लेते हैं पर अभिशाप नहीं देते।

एक बार की बात है कि एक मुनिराज आम्रवृक्ष के नीचे बैठकर ध्यान कर रहे थे। तभी कुछ दूरी पर कुछ बच्चे जो आम खाने के इच्छुक थे उन्होंने पत्थर उठाकर वृक्ष पर मारना शुरू किया, बच्चों के द्वारा फेंके गए पत्थर वृक्ष के नीचे बैठे मुनिराज को लगे, पत्थर सर पर लगते ही खून की धारा बहने लगी, बच्चे इस घटना से अनजान थे जब वे आम बटोरने वृक्ष के पास आये और मुनिराज को घायल अवस्था में देखा तो घबरा गये, बच्चे मन के तो सच्चे होते हैं मुनिराज की ऐसी दशा देख वे रोने लगे और क्षमा याचना करने लगे, महाराज! हमें क्षमा कर दीजिए हमने तो पत्थर आम को मारा था परंतु आपको लग गया। महाराज के नेत्रों से अविरल अश्रु धारा बह रही थी जिसे देख बच्चों का कोमल हृदय सहम गया। वे बोले- बाबा जी हमें क्षमा दीजिए न। महाराज तो साम्य स्वभावी थे बोले- मेरी तो प्राणी मात्र से क्षमा ही क्षमा है। फिर आपकी आंखों से ये आँसू क्यों बह रहे हैं। महाराज बोले मुझे चोट आ गई इसलिए आँसू नहीं निकले अपितु मेरी आँखें सजल यह सोच कर हो गई कि देखो यह वृक्ष कितना परोपकारी है चोट खाकर भी इसने आपको मीठे फल खाने को दिये परंतु मैं तुम्हें कुछ भी नहीं दे पा रहा हूँ।

बंधुओं! संत बहुत उच्च भूमिका में होते हैं, उनका हृदय बहुत विशाल होता है। वे निर्ग्रंथ संत ही समता के धनी होते हैं। आगे कवि कहते हैं-

''निज पर के हित साधन में जो, निशदिन तत्पर रहते हैं।''

दिन हो या रात हो सदा स्व-पर उपकार में लगे ही रहते हैं। अपकार एक क्षण के लिए भी नहीं करते। अपनी आत्म साधना के लक्ष्य में मजबूत होते साथ ही दूसरों का भी हित हो ऐसी प्रवृत्ति करते हैं। इसलिए वे स्वरोपकारी होते हैं। आगे कहा हैं-

स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या, बिना खेद जो करते हैं।
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के, दुःख समूह को हरते हैं।।

हमारा स्वार्थ होता है इसलिए हम दूसरों को पूंछते हैं कि भैया, पानी पी लो ताकि वह हमें भी पूछे। माँ सोचती है कि मैं बच्चे का लालन-पालन करूंगी तो वह भी बड़ा होकर मेरी सेवा-सुश्रुषा करेगा। वात्सल्य-भोज कराते हैं ताकि अवसर पर मेरा भी ध्यान रखा जाए। बड़े-बड़े प्रोग्राम में सम्मान-समारोह रखा

जाता है आज हम उनका सम्मान करेंगे तो कल वे हमारा भी सम्मान रखेंगे। जैसा व्यवहार हम दूसरों के साथ करेंगे वैसा ही हमें भी मिलेगा। गृहस्थ तो स्वाथी है। परंतु संत निःस्वार्थी होते हैं। वे अपेक्षा नहीं रखते कि हम प्रवचन देंगे तो आप हमें क्या देंगे? कोई कामना नहीं करते वे हमारी सेवा करेंगे तो ही हम उनकी सेवा करेंगे। ऐसा स्वार्थ संतों को नहीं होता। यदि ऐसा स्वार्थ वे रखें तो कठिन तपस्या नहीं कहलायेगी वह तो व्यापार कहलायेगा। सारा संसार इसी स्वार्थ भाव में डूबा है। मैंने तुम्हारा इतना किया तुम मेरा इतना साथ नहीं दे सकते। जब तक जीवन में स्वार्थ रहेगा परमार्थ की यात्रा प्रारंभ भी नहीं हो पायेगी। लौकिक स्वार्थ को छोड़कर परमार्थ का स्वार्थ श्रेयस्कर है। पूज्यपाद स्वामी ने कहा है-

''स्वार्थ को वा न वांछति''

अपने आत्महित के स्वार्थ की कौन पुरुष इच्छा नहीं रखता? अर्थात् सभी रखते हैं।

परंतु लौकिक स्वार्थ को रखने वालों की संसार में कमी नहीं है। यूँ कहें कि सारा संसार स्वार्थ में ही जी रहा है तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। इसीलिए कवि को कहना पड़ा ''**स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या**'' अन्य लौकिक पदार्थों का त्याग करना तो आसान है परंतु स्वार्थ रूप दुर्गुण को त्याग करना आसान नहीं अपितु बहुत बड़ी तपस्या है। संत जन उस स्वार्थ का त्याग कर देते हैं। इसलिए उनकी परमार्थ की यात्रा शुरू हो गई है।

ऐसे ज्ञानी संतजनों का गुरुओं का आशीर्वाद दुःखहारी होता है। कष्टों, संकटों को दूर कर देता है। शास्त्रों में अनेकों दृष्टान्त भरे पड़े हैं जिसमें कहा है कि गुरुओं के आशीर्वाद से सारे कष्ट/विपत्तियां दूर हो जाती हैं। जीवन हर्ष व आनंद से भर जाता है। जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र रूप रत्नत्रय से युक्त है ऐसे पूज्य गुरु हमारे दुःखों के समूह को हर लेते हैं उन गुरुओं की चरण शरण को पाकर हम अपने आत्महित के पथ को प्रशस्त करें।

इसी भावना के साथ....

''श्री सुमतिनाथ भगवान की जय''

दिनांक 6-7-2008

रविवार, प्रातः 9.00 बजे — बोरीवली, मुंबई

सत्समागम में गमन रहूँ

भव्य मनीषियो!

"**भावना भव नाशिनी**" भावना भाने से संसार का विनाश हो जाता है, भावना भाने से उत्साह शक्ति का जागरण होता है। भावना भाने से सुषुप्त आत्मा में भी संचरण हो जाता है। भावना निर्बल को भी बलवान बना देती है। क्रिश्चियन्स में इसी बात की प्रार्थना की जाती है कि संसार में दु:खी न हो, किसी को कोई कष्ट/तकलीफ न हो। इस "**मेरी भावना**" में भी रहस्य भरा हुआ है। इसके माध्यम से धार्मिक सज्जन प्रवृत्ति के व्यक्ति बैठकर भावना रखते हैं, विचार करते हैं। अभी हमने देखा-गुरु कौन हैं, कैसे होते हैं, गुरुओं के विषय में समझने का प्रयास किया। अब तीसरे काव्य के माध्यम से कवि कहता है-

रहे सदा सत्संग उन्हीं का, ध्यान उन्हीं का नित्य रहे।
उन ही जैसी चर्या में यह चित्त सदा अनुरक्त रहे।।

कवि अपनी भावना प्रकट कर रहा है, भावना में डूबा कवि जन-जन के अंदर शक्ति का संचार करते हुए कहता है-'रहे सदा सत्संग उन्हीं का' कैसे हैं वे गुरु, तो विषय-वासना को जीतने वाले हैं। ऐसे परम दिगंबर मुनि जो सदा समता में लीन रहते हैं। प्रत्येक प्राणियों के साथ अपने आत्महित की भावना रखते हैं। जिनकी नि:स्वार्थ तपस्या होती है। तपस्या का लक्षण विद्वानों ने दिया कि खड़े हो जाना, उपवास करना ये तपस्या है। लेकिन कविवर जुगलकिशोरजी दूसरी ही बात कह रहे हैं। वे कहते हैं-उपवासादि रूप तपस्या तो बहुत लोग कर लेते हैं। परंतु स्वार्थ का त्याग करके प्रत्युपकार की भावना से रहित होकर दूसरे का उपकार करना सबसे बड़ी तपस्या है। प्रत्युपकार की भावना रखकर यदि किसी का उपकार किया जाता है तो वह एक व्यापार से अधिक कुछ भी नहीं है। कि आप सेवा के

बदले सेवा लेना चाहते हैं, सम्मान के बदले सम्मान, भोजन के बदले भोजन लेना चाहते हैं। कुछ सामग्री बाजार से खरीदते हो तो कुद यहाँ से खरीद लेते हैं। आचार्य कहते हैं कि जो प्रति उपकार की भावना को छोड़कर नि:स्वार्थ उपकार करते हैं वे परोपकारी हैं। निर्ग्रंथ गुरु क्या लेते हैं? मात्र **1** बार आहर लेते हैं। **1** घंटे लेते हैं और **23** घंटे तक देते हैं। दोनों हाथों से लेते हैं तथा दोनों हाथों से भरपूर देते हैं। एक बार एक व्यक्ति ने कहा महाराज आशीर्वाद दीजिए, मैंने दे दिया तो वह बोला महाराज दोनों हाथों से दीजिए। मैंने कहा-दोनों हाथों से क्यों? तो वह बोला आप ने दोनों हाथों से आहार लिया था मैंने कहा ठीक है।

संत जन लेते कम हैं, देते अधिक हैं। जो देते हैं उसके बदले कुछ भी नहीं माँगते। इसलिए उनका दिया हुआ अमूल्य हो जाता है। यदि देने का मूल्यांकन होने लग जाए तो अमूल्यता समाप्त हो जायेगी। अमुक प्रवचनकार प्रवचन मे १ लाख रुपये लेते हैं। ऐसा एक सज्जन ने कहा। तो बगल में एक जैन सज्जन बैठे थे उनसे पूछा गया आपके महाराज क्या लेते हैं। वे जैन सज्जन ज्ञानी, समझदार थे उन्होंने कहा-हमारे महाराज के प्रवचनों की कीमत लाखों की नहीं होती, कई लाखों से भी अधिक कीमती है। जो सामग्री बिकती है उसकी कीमत होती है। हमारे गुरुजन अमूल्य वस्तु देते हैं। हमारे गुरुजन कहते हैं-दुनियाँ के सब काम छोड़ देना परंतु प्रवचन मत छोड़ना। कारण क्या है? तो वे कहते हैं-जब हम स्वयं शास्त्र पढ़ते हैं तो १ घंटे में १ पुस्तक भी पूरी नहीं पढ़ी जा सकती परंतु जब १ घंटे प्रवचन सुनते हैं तो उसमें अनेक शास्त्रों का निचोड़ आ जाता है। इसलिए शास्त्र स्वाध्याय से भी प्रवचन महत्वशाली होता है। क्योंकि उसमें अनेक शास्त्रों का निचोड़ रूप मक्खन है। जिनवाणी में सब कुछ लिखा रहता है परंतु विषय क्लिष्ट हो, समझ में न आए तो व्यक्ति दिग्भ्रमित भी हो सकता है। परंतु गुरु व्यक्ति अपेक्षा लेकर समझाते हैं। समझ में न आये तो **2-3** बार भी समझा देते हैं।

जिनवाणी में कोई बात लिखी है। परंतु वह यह नहीं बता पायेगी कि आपको क्या ग्राह्य है। गुरु बालक को बालक की भाषा में, ग्रामीण को ग्रामीण की भाषा में तथा विद्वान को उसकी भाषा में समझा देते हैं। जिनवाणी का स्वाध्याय करते समय उपयोग यहाँ-वहाँ हो सकता है परंतु प्रवचन में उपयोग स्थिर रहता है। कोई व्यक्ति जिनवाणी पढ़ रहा हो तो पढ़ते हुए उठकर भी जा सकता है परंतु प्रवचन सभा में से बीच में उठकर नहीं जाया जा सकता, सोचना पड़ता है-कोई क्या कहेगा? जिनवाणी के पढ़ते-पढ़ते यहाँ-वहाँ की बातें हो सकती हैं

जिनवाणी, जनवाणी बन जाती है। लेकिन व्यक्ति प्रवचन में 1 घंटे व्यवस्थित बैठा रहता है। यदि बात करोगे तो अगल-बगल वाले टोक देते हैं। आपको नहीं सुनना तो कम से कम हमें तो सुनने दो। मैं समझता हूँ प्रवचन में बड़ा लाभ है। 1 घंटे तक सहजता में मौन हो जाता है, अपन चाहे तो प्रतिज्ञा लेकर बैठ सकते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि गुरुजन हमें शास्त्रों का मंथन कर मक्खन प्रदान करते हैं। पूज्य गुरुवर विमल सागर जी महाराज कहते थे-श्रावक साधु को जो आहार देता है वह आज खाया कल खाली परंतु गुरुजन ज्ञानाहार देते हैं जो वर्षों तक चलता है। इसलिए बंधुओं! वे गुरुजन स्व-पर उपकार में नि:स्वार्थ भावना से तल्लीन रहते हैं। इसलिए कविवर भावना भा रहे हैं कि- रहे सदा सत्संग उन्हीं का....कितनी सुंदर बाता है, ध्यान दीजिए यह पंक्ति मुँह के अंदर गूँजती है। जिनकी वास्तविक गुरु भक्ति होती है। ऐसे सच्चे भक्तों के अंदर से ये भावनाएँ उत्पन्न होती है। सच्चा भक्त तो अपने गुरु का सान्निध्य हरपल चाहता है। चातुर्मास जब गुरुओं का होता है तो सर्वत्र हर्ष होता है परंतु विहार की वेला में कितने सारे लोगों के चेहरे मुकुलित हो जाते हैं। गुरु जायेंगे ये शब्द ही अश्रु ले आते हैं। लोग प्रयास करते हैं लेकिन बहते पानी को रोकना कठिन होता है। रामचंद्र जी के विषय में बतलाते हैं कि जब रामचंद्रजी का 14 वर्ष का वनवास हुआ तो सारी अयोध्या नगरी उनके पीछे चल पड़ी, तो रामचंद्रजी चिंतित हो गये, इतने सारे लोग साथ चलेंगे तो क्या होगा? राम सरयु नदी के किनारे प्रथम पड़ाव डाल देते हैं वहीं रात्रि विश्रान्ति करते हैं, लोगों को समझाते हैं आप चले जाओ परंतु लोग नहीं मानते तो वे शांत हो जाते हैं व सरयु नदी के किनारे सो जाते हैं। जब सब सो जाते हैं तो रामचंद्रजी धीरे से उठते हैं। लक्ष्मण व सीता को उठा लेते हैं और कहते हैं चलो सब सो रहे हैं तब वे निकल जाते हैं। इसी प्रकार संतजन होते हैं वे एक स्थान पर स्थायी नहीं रहते, उनके मठ, आश्रम नहीं होते इसलिए वे सतत् विचरण करते रहते हैं नदी की तरह बहते रहते हैं। कितनी जगह ऐसी स्थितियाँ मिलती हैं पर वे पार हो जाते हैं। भक्ति कभी गुरु को विदाई नहीं देता, छूट जाना अलग बात है और छोड़ देना अलग बात है।

एक बार हमारे संघ से किन्हीं माताजी व महाराजों का विहार कराना था ताकि वे भी प्रभावना करें। सबको तैयार कर दिया, प्रस्थान की तैयारियां हो गई। परंतु निकलते समय आंखों से आंसू आ गये। वे बोले हमसे गुरुजी छूट रहे हैं। जैसे ही शब्द निकला तो मैंने कहा-क्या तुम छोड़ रही हो? नहीं बाहर से गुरु छूट जाएँ

तो कोई बात नहीं अंदर से नहीं छोड़ना। बाहर से छूटे तो फिर मिल जाते हैं परंतु अंदर से छूटे तो मिलना कठिन है। तुलसीदास जी चित्रकूट नदी के घाट पर चंदन घिस रहे थे-राम की भक्ति में डूबे थे उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर रामचंद्रजी पास आकर खड़े हो गये। रामचंद्रजी ने चंदन उठाया व तुलसीदासजी को तिलक कर दिया। आँखें खोलकर देखा तो सामने रामचंद्रजी थे वे प्रसन्न हो गये और जैसे ही चरणों में सिर रखा वे अदृश्य हो गये, तुलसीदासजी देखते ही रह गये वे बोले-

बाँह छोड़ मुझे जात हो, निबल जान के मोय।
अंदर से जब जाओगे, सबल जानूँगा तोय॥

अर्थात् हे भगवन्! मैं तो निर्बल हूँ इसलिए आप मेरी बाँह छोड़कर जा रहे हो परंतु मैं आपको वास्तविकता में शक्तिशाली तब मानूँगा जब आप मेरे हृदय से निकल जाओगे। शिष्य जब गुरु भक्ति में डूबता है तो कहता है कि एक क्षण के लिए भी आपके चरण नहीं छोड़ सकता। आचार्य भद्रबाहु स्वामी अंतिम श्रुतकेवली हुए। वे श्रुत में पारंगत महानाचार्य हुए हैं वे अपने ज्ञान से समझ गये कि मेरी आयु बहुत कम है। 12 वर्ष का अकाल पड़ने वाला है, यह सोचकर वे उत्तर से दक्षिण की ओर विहार कर गये। उनका अंतिम चातुर्मास श्रवणबेलगोला में था। सभी शिष्य तमिलनाडू निकल गये परंतु भद्रबाहु स्वामी अपनी अल्पायु जान वही रूक गये। सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य जिन्होंने तभी नई-नई दीक्षा ली थी। वे गुरु से कहते हैं। हे गुरुवर! मैं आपकी हर आज्ञा का पालन करूँगा परंतु एक आज्ञा बस नहीं पाल सकता, मैं गुरु को छोड़कर नहीं जाऊँगा। आचार्य श्री ने हर तरह से समझाया। वे कहते रहे जिन चरणों के लिए राज्य-परिवार घर बार छोड़ा, वे ही छूट गये तो फिर मेरे पास क्या रहेगा, जिन चरणों के प्रसाद से आचरण मिला वे ही छूट गये तो आचरण का पालन कैसे होगा। भद्रबाहु बहुत समझाते हैं परंतु चंद्रगुप्त नहीं मानते, मैंने प्रभावना के लिए नहीं, गुरु सेवा के लिए, आत्म-कल्याण के लिए दीक्षा ली है। मुझे आत्म प्रभावना करना है। आत्म प्रभावना के विचार से धर्म प्रभावना स्वत: होगी। भले ही किसी को 12000 मुनियों का नाम याद न हो पर चंद्रगुप्त का नाम सब जानते हैं क्योंकि उनका विचार धर्म प्रभावना का नहीं आत्म प्रभावना का था, गुरु सेवा का था इतने विचार उनके थे। कभी गुरु की जीत होती है तो कभी भक्त शिष्य की। पहले के शिष्य थे जो भगाये-भगाये भी नहीं भागते थे आज जाने को तैयार बैठे रहते हैं। पहले के समय में आत्म-साधना व गुरु सेवा का लक्ष्य रहता था। आज प्रभावना का लक्ष्य प्रमुख हो चुका है। आज शिष्य प्रस्ताव रखते हैं

अमुक तकलीफ है, अन्य महाराजों से नहीं बनती, स्वतंत्रता चाहिए। न जाने क्या-क्या शब्दांजली प्रारंभ होती है। सच्चा शिष्य मना करता है गुरु ही आगे ढ़केलते हैं। पूज्य आचार्य भरत सागर जी 30 वर्ष तक गुरु सान्निध्य में रहे और आज 3 वर्ष नहीं हुए कि व्यक्ति योजनाएँ प्रारंभ कर देते हैं। अमुक तीर्थ बनाना चाहते हैं। बाहर की सामग्री बाहर ही रह जायेगी यह संसार से पार नहीं करेगी। अंदर उतरना पड़ेगा दूसरों को जो सुनाते हैं उसे आचरण में लाये। आगे कवि कहता है-

"उन्हीं जैसी चर्या में, यह चित्त सदा अनुरक्त रहे।"

आपका सत्संग हमेशा मिले, जब तक गुरु के सान्निध्य में व्यक्ति है तो कबीर ने एक जगह लिखा है-

"चलती चाकी देखकर, रहा कबीरा रोय।
दो पाटन के बीच में, साबत बचा न कोय।।"

कबीर जब दोहा बना रहा था तब बेटा कमाल पास में बैठा था। "Like father like son" वह भी कवि था बोला-

"चलती चाकी देखकर, रहा कमाल हंसाय।
कील सहारे जो रहे, बाल न बांका जाय।।"

चलती चक्की को देखकर कमाल हंसता है क्योंकि वो चाकों के बीच वही पिसता है जो कील का सहारा छोड़ देता है। जो कील के सहारे रहता है वह पिसता नहीं। जब हम गुरुओं के पास रहते हैं तो सोच-विचार गुरु को करना पड़ता है। जीवन में गुरु होना चाहिए। गुरु दीप स्तंभ हैं। वे प्रकाश देते हैं। रास्ता देते हैं और परिस्थितियों से उबार लेते हैं। बड़े-बड़े राजा गुरु को चयन करते हैं। जब समस्या आती है तो गुरुजन सलाह देते हैं, मार्ग दर्शन देते है। कहा भी गया है-

Life does not bigan without is preceptor.

गुरु के बिना जीवन शुरू ही नहीं होता। गुरु के बिना कौन रास्ता दिखाये, कौन सन्मार्ग पर ले जाए। सत्संग को लेकर जीवन बिताने का प्रयत्न करें, मृत्यु की बेला में भी साधु समूह में ही समाधी लेंगे। शास्त्र स्वाध्याय में कोई अच्छी बात निकले उसे ग्रहण करेंगे। ऐसी पवित्र भावनायें होना चाहिए। एक बार आचार्य शांति सागर जी के पास देश भूषण जी महाराज आये उन्होंने छोटी सी उम्र में दीक्षा ली थी। आचार्य शांतिसागर जी छोटे से साधु को देख कर खुश हो गये और उन्हें हाथ पकड़कर अपने सिंहासन पर बिठा लिया, उन्होंने उतरने का बहुत प्रयत्न किया परंतु क्या करें महाराज ने तो पकड़ कर बिठा ही लिया बोले-अच्छा किया,

छोटी उम्र में ही दीक्षा ले ली। परंतु एक बात का ध्यान रखना संसार एक नाग की तरह है जो सदैव मुख फाड़े बैठा रहता है। संयम भक्षण के लिए तत्पर रहता है। उससे बचते रहना, न जाने कब संयम का भक्षण कर ले।

बंधुओं! इसीलिए कहा जाता है सत्संग में रहिये जो गुरु भक्त होते हैं उनकी सल्लेखना अच्छी होती है। जो गुरु चरणों को छोड़ देता है उसकी समाधी नहीं, असमाधी हो जाती है। मूर्ख से मूर्ख शिष्य भी गुरु चरणों में सम्यक् समाधी को प्राप्त कर लेता है। और बड़े से बड़े विद्वान भी गुरु कृपा के अभाव में असमाधी को प्राप्त हो जाते हैं। अत: निरंतर गुरु सान्निध्य में रहना चाहिए। शरीर भले दूर हो परंतु आत्मा से कभी दूर न हो जाए। गुरु अंतर में रहें तथा ध्यान गुरु चरणों में रे। सदा गुरु की दृष्टि में रहें। जो गुरु दृष्टि से उतर जाता है वह संसार में पतित हो जाता है। इसीलिए गुरु चरणों में भक्त प्रार्थना करता है-

नजरों से गिराना ना, चाहे जितनी सजा देना।
नजरों से जो गिर जाए, मुश्किल है संभल पाना।।

जब ये पंक्तियाँ पढ़ते हैं तो लगता है कि हमसे ऐसी कोई भूल/गलती न हो जाए जो हमें गुरु नजरों से गिरा दें। गुरु चरणों की शरण है तो सब कुछ है जहाँ गुरु चरण नहीं वहाँ कुछ भी नहीं। इसीलिए कवि कहता है कि उन गुरुओं का सत्संग, उनकी संगति सदा हमें प्राप्त हो। तथा सदैव उनके चरणों में ही ध्यान बना रहे तथा उनके जैसी चर्या पालन करने मे चित्त, एकाग्रता, अनुरक्तता को प्राप्त हो। सत्य है जहाँ चरण मिल जाते हैं वहाँ आचरण स्वयमेव प्रगट हो जाता है इसलिए कवि ने पहले चरणों की शरण, सत्संगति की बात कही। गुरु चरणों में जो रहते उन्हें गुरु से समय-समय पर अनुभव विद्या, नई-नई शिक्षायें व ज्ञान की प्राप्ति होती रहती है। और वही गुरु विद्या एक दिन पतित को पावन, कंकर को शंकर, राई को पहाड़ और आत्मा को परमात्मा बना देती है। अत: आत्मा से परमात्मा पद की यात्रा हेतु गुरु चरण-शरण को पाने का प्रयत्न करें।

इसी भावना के साथ....

''श्री पद्मप्रभु भगवान की जय''

दिनांक 7-7-2008
सोमवार, प्रात: 9.30 बजे बोरीवली, मुंबई

मुक्तिपथ का पथिक बनूँ

भव्य मनीषियों!

यह जन-जन की भावना है। हम सभी देख रहे थे मेरी भावना प्राणी मात्र की भावना है। जिसके माध्यम से एक सम्यग्दृष्टि ज्ञानी निर्मल मन से पवित्र भाव भाते हैं। वह ही मेरी भावना है जब अपना मन निर्मल/विशुद्ध होता है तो ऐसे विशुद्ध हृदय में न जाने कैसे-कैसे विचार आते हैं जीवन को अच्छे रास्ते पर, आत्म कल्याण के पथ पर लगायें, प्राणी मात्र दुःख से छूटे, संसार से विरक्तता, अंतस में धार्मिकता हो जब ऐसे पवित्र विचार मन में होते हैं तो लगता है कलिकाल में ऐसे विचारों का उत्पन्न होना आश्चर्य है। जहाँ लोग विभिन्न प्रकार के तनाव से ग्रस्त हैं। हर व्यक्ति का मन एक बोझ बना हुआ है। आकुलता-व्याकुलता बनी रहती है। व्यक्ति जितनी बाहर में दौड़ धूप करता है उससे अधिक अंदर की दौड़-धूप होती है। किसी ने कहा है कि एक-एक व्यक्ति की कल्पनाएँ इतनी अधिक हैं कि यदि 1 घंटे की कल्पना से तोले तो जिंदगी भर में भी पूरी नहीं हो सकती। आचार्य श्री गुणभद्र स्वामी अपने आत्मानुशासन ग्रंथ में कहते हैं-

आशागर्तः प्रति प्राणी, यस्मिन् विश्वमणुपमम्।
कस्य किं कियदायाति, वृथा वो विषयैषिता।।36।।

कहने का तात्पर्य यह है कि एक-एक प्राणी की इतनी-इतनी कल्पनायें है, इच्छाएँ हैं, आशाएँ हैं कि उसमें सारा विश्व भी उस इच्छा रूपी गड्ढे में एक परमाणु की तरह दिखता है एक व्यक्ति की इतनी आशायें हैं कि सारा विश्व अणु मात्र दिखाई देता है तो फिर जरा विचार तो कीजिए कि प्राणी तो अनंत हैं और उनमें से प्रत्येक की विषय-तृष्णा उसी प्रकार से वृद्धिंगत है। ऐसी अवस्था में यदि विश्व की समस्त संपत्ति को भी उनमें विभाजित किया जाए तो उसमें से प्रत्येक

प्राणी के लिए जो कुछ प्राप्त हो सकता है वह नगण्य ही रहेगा। इसीलिए आचार्य कहते हैं-

लौकिक कामनाओं को, भावनाओं को छोड़ दो क्योंकि इससे बंध के सिवाय और कुछ नहीं होता, कल्पनाओं में डूबने वाला असीम मात्रा में कर्म को बांध लेता है। इसीलिए कल्पनाओं को उन पर केन्द्रित करना चाहिए जो सारी कल्पनाओं का दमन कर चुके हैं। यही बात कवि कहता है कि यदि कल्पना जाल से बचना है तो संतों की गुरुओं की संगति करो। ''रहे सदा सत्संग उन्हीं का....जब भक्ति में उतरा हुआ भक्त गुरु भक्ति में लीन हो जाता है तो उसके अंदर से विचार उत्पन्न होते हैं कि हे भगवन्! गुरु ही तो जीवन के मार्गदर्शक/रास्ता दिखाने वाले होते हैं। वे अंधेरे से हमें प्रकाश की ओर ले जाते हैं। आत्मा से परमात्मा बनने की विधि बताते हैं, मात्र रास्ता ही नहीं दिखाते, अपितु प्रेरित करते हैं अंगुली पकड़ कर चलाते है। जिस प्रकार माँ अपने बच्चे को अंगुली का सहारा देकर चलाती है। हमारे गुरु भी उसी प्रकार अंगुली का सहारा देकर मोक्ष पथ पर गतिशील बना देते हैं। वे बार-बार प्रेरणा देते हैं तथा उनके प्रेरणा परक वचन आत्मा को प्रभावित कर देते हैं और हम आगे बढ़ जाते हैं। कल एक बच्चा आहार देने को तैयार था। आलू-प्याज का 8 दिन का त्याग मैंने मना किया तो उसके दादाजी बोले महाराज 8 दिन काफी हैं तो वह बोला नहीं, मैं तो एक महीने का त्याग करूंगा, जब गुरु स्वयं संकेत/प्रेरणा देते हैं तो शक्ति न जाने कहाँ से आ जाती है और लगने लगता है कि गुरु का आशीर्वाद है तो बड़े से बड़ा काम भी कर लेंगे। गुरु प्रेरक होते हैं और मात्र प्रेरक ही नहीं संबल प्रदाता होते हैं। जब हम हताश होने लग जाते हैं तो गुरु कहते हैं घबराओ नहीं, तुम्हारे पीछे मैं खड़ा हूँ। जैसे ही ऐसी बात सामने आती है तो ताकत आ जाती है। आचार्य विद्या सागर जी महाराज का संघ सोनागिरि में था, विहार का समय निर्धारित था उसी समय एक मुनि महाराज का स्वास्थ्य खराब हो गया, उन्हें 104 डिग्री बुखार हो गया क्या किया जाए। स्थिति ऐसी नहीं थी कि संघ वहीं रूक सके। तभी आचार्य श्री मुनि महाराज जी के पास पहुँच गये सिर पर हाथ रखा और बोले-तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक नहीं है तो आराम कीजिए। चूंकि विहार होना सुनिश्चित हो गया है अत: आप कुछ समय विश्राम कर लीजिए बाद में आ जाना। एक महाराज आपके साथ में रूक जायेंगे। उन मुनिराज ने कहा-नहीं आचार्य श्री! मैं तो आपके साथ ही चलूंगा, आपका आशीष हाथ सिर पर है तो कुछ नहीं होगा। यदि अंतरंग में श्रद्धा है तो जैसा सोच

लें वैसा होता है। हम अपने आचार्य श्री का स्मरण करते हैं तो लगता है-आचार्य श्री आशीर्वाद देकर गये हैं कि आप अवश्य ही यह काम कर लीजिए कोई बाधा नहीं आयेगी। तो बाधा आ भी कैसे सकती है। वास्तविक गुरु तो श्रद्धा के होते हैं यदि मजबूत व अटल श्रद्धा है तो गुरु अवश्य ही पिघलते हैं। लोग कहते हैं कि गुरु सुनते नहीं, परंतु मैं कहता हूँ आप में इतनी ताकत होनी चाहिए कि गुरु सुने। जब एक मिट्टी के गुरु विद्या सिद्धी में हेतु बन सकते हैं एकलव्य के लिए तो क्या हमारे चेतन गुरु हमारी कार्य सिद्धि में हेतु नहीं बनेंगे। यदि एकलव्य को मिट्टी के गुरु से विद्या सिद्ध हुई तो साहस बंध जाता है कि हम भी एकलव्य से कम नहीं हैं और सफलताएँ मिल जाती हैं। ये अपनी-अपनी श्रद्धा की बात है। श्रद्धावान के गुरु का कभी प्रस्थान नहीं होता। श्रद्धावान एक पल भी गुरु से शून्य अपने हृदय को नहीं देखना चाहता। इसीलिए भावना भाता है-रहे सदा सत्संग उन्हीं का।''

''**मेरी भावना**'' पाठ पढ़ लेना अलग बात है हम खटाखट पढ़ लेते हैं परंतु आत्मसात करना, जीवन में उतार लेना अलग बात है। भावना घड़ी के अनुसार नहीं चलती अपितु घड़ी के बगैर चलती है और पता ही नहीं चलता कि कितना समय हो गया। भक्त प्रार्थना करता है कि हे प्रभु! गुरु का सत्संग हमेशा बना रहे, जहाँ सत्संग होगा आप डूबेंगे नहीं। डूबता तो वह है जो गुरु के हाथ से छूट जाता है। जिसके हृदय में गुरु उतर जाते हैं वे तर जाते हैं। जितने भी गुरुभक्त होते हैं उनकी सल्लेखनाएँ व्यवस्थित होती हैं। उनको सारा वातावरण अनुकूल मिलता है। जो भक्त नहीं थे तो पता चलता है एक मौके पर गुरु लघु शंका या आहार चर्या आदि के लिए गये और यहाँ मृत्यु हो गई यह भी कितना बड़ा दुर्भाग्य है। जिंदगी भर स्मरण न भी किया हो परंतु यदि अंतिम श्वास में स्मरण किया तो जीवन सार्थक होगा। इसीलिए हम भावना भाते हैं-

दिन रात मेरे स्वामी मैं भावना ये भाऊं।
देहान्त के समय में तुम को न भूल जाऊँ।।

इसलिए बंधुओं! निरंतर प्रार्थना करते हैं कि गुरु का सत्संग हमेशा मिलता रहे मेरा ध्यान निरंतर उनके प्रति बना रहे। गुरु का ध्यान रहेगा तो मन पाप में नहीं जायेगा। देव, शास्त्र, गुरु या धर्म पर उपयोग हो और पापों में भी मन रहे ये दो काम एक साथ हो नहीं सकते। एक म्यान में दो तलवारें एक साथ नहीं रखी जा सकती। जब तक हमारा मन दर्शन, पूजा, भक्ति, आराधना में रहता है तब तक

व्यक्ति अशुभास्रव से बचा रहता है। यह सबसे बड़ी उपलब्धि है और पुण्यास्रव का द्वार खुलता है वह बिगड़े दिन बनने लगते हैं पतित भी पावन बन जाता है।

भक्त का हृदय कोमल होता है, जितने भी परमात्मा, ईश्वर, देव-देवी है उनके नीचे कमलासन बनाते हैं। चाहे वह पत्थर का हो, धातु का हो या संगमरमर का। लेकिन प्राय: कमलासन बनाकर ही उस पर भगवान को विराजमान करते हैं। शिल्पीकार इतना ही दिखा सकता है उसका सिद्धान्त यह है कि ऐसा कमल पत्थर का नहीं, अपितु अपने हृदय को कोमल कमल बनाए जिसमें आराध्य प्रभु विराजमान हो जाएँ यदि वे विराजेंगे तो आप डूबेंगे नहीं यदि भगवान के होते डूब गये तो कौन पार हो सकेगा। श्रद्धावान कभी भी डूबता नहीं। परंतु कुछ लोगों का इस ओर ध्यान ही नहीं कि आप जैसी चर्या मेरी भी बने। संसार में बहुत से ऐसे गुरु भक्त मिलते हैं जो कोरी ऊपरी भक्ति करते हैं परंतु ऐसी गुरु भक्ति से क्या लाभ कि कुछ भी आचरण में न आ पाये।

एक बार की बात है आचार्य सन्मति सागर जी के पास एक सज्जन आये बोले-महाराज! आप इस रास्ते से पहली बार निकल रहे हैं मुझे आपके पाद प्रच्छालन कर अर्घ चढ़ाना है। महाराज ने कहा-तंबाकू खाते हो? वह बोला-हाँ, तो महाराज ने कहा-फिर पूजा नहीं हो सकती। यदि कर भी लोगे तो मानी नहीं जायेगी। पूजा करनी है तो तंबाकू का त्याग कर दीजिए पाद प्रच्छालन व पूजन से भी बड़ा पुण्य मिल जायेगा। वह बोला-गुरुजी! आज से जीवन भर के लिए तंबाकू का त्याग करता हूँ। इसका नाम है गुरु भक्ति। गुरु पूजा करने से आप घबराते हैं कि गुरु व्रत, नियम, तप दिलायेंगे। परंतु इससे घबराना नहीं चाहिए क्योंकि छव चंपद छव हंपद बिना कष्ट के मुक्ति नहीं। बिना श्रम के फल नहीं मिलता इसलिए कभी भी गुरु के पास जाने से डरना नहीं चाहिए। अभिषेक, पूजन से घबराना नहीं चाहिए। रास्ते में एक बार एक सज्जन मिले बोले-महाराज! आपकी कठिन तपस्या आहार के समय ही हो जाती है। इतनी भीड़ रहती है, एक तो विधि कठिन है, सोले का मर्यादित भोजन हो, हम लोग तो कल्पना भी नहीं कर सकते फिर भी जैन समाज में इतन भीड़ क्यों रहती है? मैंने कहा-उन्होंने पढ़ लिया है- छव चंपद छव हंपद बिना कष्ट के मुक्ति नहीं मिलती। इसलिए वे हर नियम लेने को तैयार हो जाते हैं, भीड़ पर भीड़ लग जाती है। सुख पाना है तो कष्ट से मत घबराओ। कष्ट की सीमा के बाद, सुख की सीमा प्रारंभ हो जाती है। अशांति के बाद शांति मिलेगी। भक्त जब गुरु भक्ति में बैठता है तो सोचता है हमारे गुरु इतना कष्ट सह सकते हैं,

इतनी तपस्या कर सकते हैं तो क्या हम थोड़ा सा भी कष्ट नहीं सह सकते। एक-एक कदम बढ़ाते हैं। खरगोश की नहीं, कछुए की चाल चलते हैं। तो एक दिन खरगोश से आगे निकल कर दिखा देते हैं। यही बात कवि कहता है कि :-

"उन्हीं जैसी चर्या में यह चित्त सदा अनुरक्त रहे।"

अर्थात् उन गुरुओं के जैसी पावन चर्या के आचरण करने में मेरा मन अनुराग को प्राप्त हो।

बड़े-बड़े विद्वान पंडित ऐसे भी हुए जिन्होंने भावना भायी कि हमें गुरु के दर्शन हो जाए परंतु गुरु दर्शन न हो सके वे तरसते ही रहे-

"वे गुरु कब मिलि हैं।"

अष्टपाहुड ग्रंथ में आचार्य कुंदकुंद महाराज ने निर्ग्रंथों के लिए चलता फिरता मोक्ष मार्ग कहा है। जब गुरु मुख से यह बात मैंने सुनी तो मैंने पूछा वह चलता-फिरता मोक्ष मार्ग कैसा होता है? गुरुवर बोले-जैसे तुम हो-निर्ग्रंथ वीतरागी संत हैं। जीता-जागता धर्म कौन है? जो मोक्ष मार्गी होते हैं वे जीते-जागते धर्म हैं। हम धर्म की यत्र-तत्र खोज करते हैं। कोई मंदिर, मूर्ति में खोजता है तो कोई वनों, जंगलों में खोजता है। परंतु आचार्य भगवन् कहते हैं वह तो तुम्हारे सन्मुख है। रत्नत्रय धारी साधक जीते-जागते धर्म हैं। उनके पास जाने से, उनके जैसा बनने के भाव होते हैं। सच्चा मोक्ष मार्ग वही है। मोक्ष जाने के लिए इसी रास्ते से होकर गुजरना पड़ेगा। इस रास्ते पर आये सिवाय मोक्ष नहीं हो सकता।

आचार्य भगवन् कहते हैं कि तुम मुनि बनो या न बनो यह तो तुम्हारा भाग्य है। यह आसान भी नहीं है बहुत से लोग तो विचार ही करते रह जाते हैं बन नहीं पाते। आप मुनि न भी बन पाओ तो कोई बात नहीं परंतु मुनि बनने की भावना हर पल भाते ही रहना चाहिए कि आज न बन सकूं तो कोई बात नहीं आखिरी समय में ही बन जाऊँ। तो भी जीवन सार्थक हो जायेगा। हे भगवन्! वह दिन कब आ जाए कि जब मैं मुक्ति पथ को अपनाऊँ, मुक्ति पथ पर आगे बढ़ूं ऐसी भावनाएँ उत्पन्न हो रही है तो अच्छा है और यदि उत्पन्न न हो तो गुरु सत्संग की याद रखना यदि सत्संगति में रहोगे तो कभी डूबोगे नहीं अपितु मोक्ष पथ पर बढ़ते-बढ़ते एक दिन मोक्ष को भी पा जाओगे।

इसी भावना के साथ....

दिनांक 08-07-2008

मंगलवान, प्रातः 9.00 बजे बोरीवली, मुंबई

दया स्वीकार करूँ

बंधुओ!

कल हम देख रहे थे कि साधु की संगति सन्मार्ग पर लगाने वाली होती है। जो आचरणवान के पास रहता है वह भी आचरणवान बन जाता है। जो महाव्रतों के धारी हैं उनकी संगति से यदि छोटा-मोटा व्रत हमारे जीवन में आ जाये तो आश्चर्य ही क्या है। इसी बात को काव्य-**3** की अंतिम दो पंक्तियों के माध्यम से कवि जुगलकिशोर जी स्पष्ट कर रहे हैं वे कहते हैं :-

नहीं सताऊँ किसी जीव को, झूठ कभी नहीं कहा करूँ।
पर धन वनिता पर न लुभाऊँ, संतोषामृत पिया करूँ।।

इन पंक्तियों के माध्यम से कवि ने पाँच व्रतों की बात कही है। व्रत वह वस्तु है जो प्राणी को शीतलता प्रदान करती है, व्यक्ति को नरक जैसी दुर्गति से बचा लेती है। इष्टोपदेश ग्रंथ में आचार्य श्री पूज्यपाद महाराज ने व्रतों की महिमा का वर्णन करते हुए कहा है :-

वरं व्रतैः पदं दैवं, नाव्रतैर्वत नारकम्।
छाया तपस्थयोर्भेदः, प्रतिपालयतोर्महान्।।

आचार्य भगवन् कह रहे हैं कि जैसे ग्रीष्म काल की तपती धूप में एक व्यक्ति छाया में तथा दूसरा धूप में खड़ा होता है तो धूप में जो खड़ा है वह व्यक्ति संतापित होता है, दुःख पाता है ठीक उसी प्रकार अव्रतों में रहने वाला व्यक्ति हिंसादि पांच पापों के कारण दुर्गति/नरकादि में पहुँच जाता है और वहाँ जाकर महान कष्ट उठाता है। उन कष्टों के विषय में शास्त्रों में लिखा है-वे नारकी उन नरकों में श्वांस प्रमाण समय के लिए भी शांति प्राप्त नहीं कर पाते। उनकी आयु बहुत अधिक होती है। जघन्य आयु ही 10,000 वर्ष की होती है। सोच लीजिए, उतनी आयु 33 सागर है जिसकी गणना विस्मयकारी है। इतने समय तक जीव वहाँ

असह्य कष्ट, दु:ख भोगता है। व्यक्ति पाँचों पापों से रत रहता है और अंत में मरण कर ऐसे भयावह नरकों को पाता है। इसीलिए ज्ञानीजन प्रार्थना करते हैं कि हे भगवन्! "**नहीं सताऊँ किसी जीव को**" यदि मैं किसी को सुख-शांति नहीं दे सकता तो मेरे द्वारा किसी को कष्ट, तकलीफ, पीड़ा भी न हो ऐसी भावना एक सम्यग्दृष्टि ही भा सकता है। मिथ्यादृष्टि के तो प्राणी रक्षा के भाव ही नहीं होते। हाँ भद्रपरिणामी मिथ्यादृष्टि के अंतर करुणा भाव होते हैं और वे दूसरे प्राणियों की रक्षा में जुट जाते हैं।

भगवान पारस कुमार ने तड़फते हुए नाग-नागिन को करूणा रूपी गोद में ले लिया व पंच नमस्कार मंत्र सुनाया आगे जाकर वे ही धरणेन्द्र-पद्मावती हुए। हिंदू संप्रदाय में ऐसे बहुत से उदाहरण मिलते हैं। जहाँ दया और करूणा के दर्शन होते हैं। एक बार गौतम बुद्ध जब जंगल में बैठ कर साधना कर रहे थे तो वहाँ एक बाण से विधा हंस जमीन पर गिरा हुआ दिखा, बुद्ध द्रवित हो गये और तुरंत ही उसे उठा लिया तथा बाण निकाल कर घाव का उपचार किया। श्री रामचंद्रजी ने जटायु को मरते समय णमोकार मंत्र सुनाया हालांकि उस समय राम, रावण के द्वारा सीता को हरण कर लिये जाने के कारण अत्यंत विह्वल/दु:खी थे। परंतु जटायु को मरणासन्न देख कर एक क्षण के लिए वे सीता को भी भूल गये उन्हें मात्र एक अहिंसामयी धर्म ही याद आया और दयार्द्र हो जटायु को धर्मोपदेश दिया। हजरत मुहम्मद साहब जो कि दया, करूणा की मूर्ति थे। एक बार उनके शरीर में फोड़ा हो गया और घाव बढ़ता ही गया और उसमें बहुत से कीड़े हो गए और कीड़े अधिक हो जाने से वे घाव से नीचे गिरने लगे। दया से भीगे मुहम्मद साहब ने कीड़े उठाए और वापस घाव पर रख लिए जब लोगों ने उन्हें ऐसा करते देखा तो पूछा आप ऐसा क्यों करते हैं? ऐसा मत कीजिए अन्यथा तकलीफ और बढ़ जायेगी। मुहम्मद साहब ने बहुत अच्छी बात कही-वे बोले अरे, यदि इन कीड़ों को वापस घाव में रखूंगा तो मुझे थोड़ी सी तकलीफ सहना पड़ेगी और यदि नहीं रखूंगा तो इनकी तो जान ही चली जायेगी। इनके जीवन से मेरी तकलीफ बड़ी नहीं है। मुस्लिम होकर भी उनके इतने दयामय परिणाम थे।

ईशा मसीह ने एक घायल बकरी को कंधे पर रख उस पर दया की है। हम लोग अहिंसा, दया के नारे तो लगाते हैं परंतु अंतरात्मा में दया को जाग्रत नहीं कर पाते हमारे शब्दों में तो दया होती है परंतु आचरण में नहीं। अहिंसा के नाम पर मात्र दिखावा करते हैं। हम छने पानी की बातें करते हैं। जब हम विचार करते हैं कि पानी

क्यों छाना जाता है तो मात्र स्वास्थ्य के लिए नहीं अपितु दया, अहिंसा के लिए छानते हैं। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से पानी की एक बूँद में 36450 जीव या 39000 जीव होते हैं और आगम की दृष्टि से पानी में असंख्यात जीव होते हैं। इन जीवों की रक्षा के अभिप्राय को लेकर पानी छाना जाता है परंतु कभी-कभी लोग अविवेक के कारण पानी तो छानते हैं परंतु जीवानी को निचोड़ देते हैं। सोचिये छानने का क्या तात्पर्य रहा। व्यक्ति प्राय: नल की टोंटी में की कपड़ा बांध कर रखते हैं और नल में लगा-लगा वह कपड़ा सूख जाता है तथा उसमें भरे सारे जीव सूख कर मर जाते हैं। हमारी दया ओर अहिंसा यदि विवेक से रहित है तो वह वास्तविक अहिंसा, दया नहीं है। जब अहिंसा का पालन विवेक पूर्ण ढंग से होता है तभी वह धर्म इस संज्ञा को प्राप्त होता है। प्राय: महिलाओं के सिर में जीव/जुएँ आदि हो जाते हैं वे उन लीख, जुएँ आदि को अपने सिर से निकाल कर रोड पर यूं ही फेंक देती है। कल्पना कीजिए कि वहाँ से कोई वाहन, ट्रक, बस आदि निकलेगी तो वह उन जीवों को कुचल देगी तो यह आपकी वास्तविक अहिंसा कहलायेगी क्या?

प्राय: घरों में चींटियों आदि जीव हो जाते हैं और दया मूर्ति महिलाएँ उनकी रक्षा के लिए फुल झाड़ू रखती हैं। परंतु विवेक की आँख पर पर्दा पड़ा होने के कारण उन चींटियों को 5वीं या दसवीं मंजिल से सीधे नीचे Ground Floor में पटक देती है। क्या वे बच पायेंगी? और यदि बच भी गई और नीचे पानी आदि में गिर गई या वाहन के नीचे आ गई तो क्या उनकी प्राण रक्षा संभव है। यदि आपके पास विवेक रूपी नेत्र नहीं है ज्ञान नहीं है तो आपकी अहिंसा भगवान महावीर की अहिंसा नहीं कही जा सकती।

भगवान महावीर कहते हैं-जीव रक्षा यानि किसी को कष्ट, तकलीफ में नहीं डालना, गर्म पानी फेंका अब वह किसके ऊपर गया यह देखना चाहिए। गैस चूल्हा जलाया और माचिस की तीली को यूं ही फेंक दिया वह न जाने किन प्राणियों पर गिरेगी। इसी विवेक का जग जाना ही अहिंसा धर्म/दया धर्म है। यदि विवेक पूर्ण ढंग से संभाल कर कार्य करें तो जीवों की विराधना से बच सकते हैं तथा विवेकपूर्ण की गई प्राणी रक्षा ही भगवान महावीर की अहिंसा है। जो जैन समाज का आधार बिंदु है। हम दयाधर्म की परिभाषाओं को समझें, जीवों की रक्षा करें। ऐसे चलें कि पड़ोसी के कुत्ते को भी तकलीफ न हो। बच्चे प्राय: तितली, भौंरे के पैर, चूहा आदि को बांधकर परेशान करते हैं। दीपावली के समय प्राय: लोग कुत्ते की पूंछ में पटाखा बांध देते हैं और उसमें आग लगा देते है। वह बेचारा घबरा

जाता है हमें विवेक से काम लेना चाहिए यदि हम किसी की पीड़ा को दूर नहीं कर सकते, किसी के घाव मे मरहम नहीं लगा सकते तो किसी को कम से कम सताना नहीं चाहिए।

रामचंद्रजी जब कुंथलगिरी जी में पधारे तो वहाँ रात्रि में जंगल में भयानक आवाजें आती थी, आग बरसती थी, विचित्र-विचित्र रूप दिखाई देते थे लोग घबराये हुए थे, जाकर रामचंद्रजी से संकट निवारण हेतु प्रार्थना करते हैं सीताजी भी आग्रह करती है कि आप वहाँ जाकर देखें। रात तो दया, करूणा की मूर्ति थे। वे रात्रि में वहाँ पहुँच गये जहाँ पर कुलभूषण व देश भूषण मुनिराज ध्यान में तल्लीन थे वहाँ एक मिथ्यादृष्टि देव उन्हें परेशान कर रहा था। राम ने यह उपसर्ग देखा तो नेत्र सजल हो गये। वे कहते हैं-निर्ग्रंथ साधुओं ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है जो उन्हें कष्ट देते हो। वे धनुष पर बाण चढ़ा लेते हैं। सावधान! ये मुनिराज हैं इन्हें कष्ट देने का फल जानते हो अथाह दु:ख को निमंत्रण दे रहे हो। सामान्य प्राणी को कष्ट देने से दु:ख की प्राप्ति होती है फिर ये तो महामुनिराज है। कष्ट देने से कष्ट की ही प्राप्ति होती है और रक्षा का फल रक्षा ही है। कहा भी गया है :-

कर भला होगा भला, नेकी का बदला नेक है।
छोड़ दे हिंसा हृदय से, जीव सबका एक है।।

वह असुर महाराज के चरणों में गिर कर क्षमा मांग लेता है। हमारे जीवन में दया करूणा वृत्ति हो निरंतर यही भावना हो कि यदि किसी को सुख, शांति, सहयोग न कर सके तो कम से कम उसे परेशान तो न करें। जब जैन धर्म चींटी की भी रक्षा की बात करता है तो क्या पंचेंद्रिय की नहीं करेगा। किसी ने कहा-जैन धर्म में पशु-पक्षी की रक्षा की बात तो कही है मनुष्य की नहीं। मैंने कहा-नहीं, जो धर्म पशु की भी रक्षा की बात करता है वह मनुष्य की रक्षा की बात क्यों नहीं करेगा।

अहिंसा की वस्तुत: जिन धर्म का प्राण है सारा जिन धर्म अहिंसा पर ही टिका हुआ है। अत: उस पावन पुनीत अहिंसा को जीवन में अंगीकार करें तथा महावीर भगवान की अहिंसा को विश्व व्यापी बनाने का प्रयत्न करें।

इसी भावना के साथ....

''चंद्रप्रभु भगवान की जय''

दिनांक 09-07-2008
बुधवार बोरीवली, मुंबई

सत्य धर्म श्रृंगार करूँ

भव्य मनीषियो!

कल हमने हिंसा के प्रतिरोधी अहिंसा धर्म को समझा था किसी जीव को न सताने का पाठ सीखा था। आज कविवर जुगलकिशोर जी दूसरी बात कहते हैं- ''**झूठ कभी नहीं कहा करूँ**'' झूठ को परित्यागने हेतु सत्य धर्म को अपनाना होगा, आज सत्य की बात कहें। सत्य असीम, विशाल होता है। सागर की तरह उसकी भी थाह पाना कठिन है। आकाश की तरह निर्लेप सत्य को स्वभाव की तरह कहना कठिन ही नहीं असंभव का लगता है। 'सत्य' वस्तु का धर्म है। एक बार किसी व्यक्ति ने आकर पूछा-शक्कर कैसी होती है। उत्तर मिला-मीठी, पूछा जाए मीठा कैसा होता है। तो आप शांत हो जायेंगे। आप कहेंगे मीठा तो मीठा है खाकर देख लो तो मालूम चल जायेगा। अग्नि कैसी होती है? आप कहेंगे गर्म। गर्म कैसा होता है? तो गर्म तो गर्म है अनुभव का विषय है छूकर देख लो तो पता चल जायेगा। उसी प्रकार सत्य को वचनों से नहीं कहा जा सकता। वचन तो एक माध्यम है जिसके द्वारा हम बताते है। परन्तु जितना जैसा बताते हैं सत्य उतना व वैसा नहीं होता। सत्य के वर्णन में वचन अधूरे पड़ जाते हैं। सारे वचन मिलकर भी एक सत्य का कथन नहीं कर सकते। उस सत्य को जानने का तरीका/विधि है। उस विधि का नाम सत्य वचन है। सत्य वचनों का आलम्बन लेकर हम शनैः शनैः वास्तविक सत्य को भी पा सकते हैं। जो असत्य पर ही टिका रहता है उसके लिए सत्य की बात असंभव है। सत्य की बात असत्य नहीं कर सकता, असत्य-सत्य को नहीं देख पाता। जैसे सूर्य कभी भी अंधेरे के दर्शन नहीं कर पाता। ये परस्पर में विरोधी धर्म है। एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। Head ने Tail को नहीं देखा परंतु अस्तित्व दोनों का है। यदि असत्य का अस्तित्व न हो तो सत्य का उपदेश दिया जाता है।

और सत्य है तो विरोधी असत्य भी मौजूद रहता है। वह अपने नाना रूप/प्रभाव दिखाता है। किसी व्यक्ति ने कहा कि सत्य को मेरे साथ खड़ा होना पड़ेगा, आकाशवाणी हुई-सत्य इतना छोटा नहीं कि उसे आपके सामने खड़ा होना पड़े। जिस दिन वह आपके साथ खड़ा हो जायेगा वह सत्य, सत्य ही नहीं रहेगा असत्य हो जायेगा। सत्य किसी के साथ खड़ा नहीं होता, यदि सत्य सारी दुनियाँ के साथ-साथ चलने लगेगा तो वह असत्य हो जायेगा, आप समय-समय पर बदलते हैं। सत्य कभी नहीं बदलता। आज आपने कहा कि जैन धर्म सत्य है क्यों कि मैं कह रहा हूँ। आप जैन हैं इसलिए जैन धर्म को सत्य बता रहे हैं। यदि हिंदु धर्म में जन्म लोगे तो हिन्दु धर्म आपकी दृष्टि में सत्य हो जायेगा। यदि आप मुस्लिम धर्म में जन्म लेंगे तो उसे सत्य कहेंगे। फिर ऐसी अवस्था में सत्य आपके साथ कैसे खड़ा हो सकेगा उसे तो बदलना पड़ेगा। एक दिन जैन को सत्य कहा, दूसरे दिन हिंदु को और तीसरे दिन मुस्लिम को सत्य कहा तो तीन परिभाषाएँ हो गई, अब बताओ इनमें से क्या सही है। जब आप जैन को सत्य कहोगे तो शेष दो असत्य ठहरेंगे यानि आपने असत्य का परिचय दे दिया।

बंधुओ! सत्य किसी व्यक्ति के अनुसार नहीं चलता वह किसी संप्रदाय, मत, जाति, व्यक्ति के अनुसार नहीं चलता क्योंकि वह सत्य है। हमारे जैनाचार्यों ने जहाँ धर्म की परिभाषा दी है। वहाँ जैन शब्द नहीं जोड़ा वह तो हमने जोड़ दिया। आचार्य भगवन् समंतभद्र महाराज से पूछा गया-हे भगवन्! जैन धर्म किसे कहते हैं तो महाराज कहते हैं यह पूछो कि धर्म किसे कहते हैं यदि जैन धर्म किसे कहते हैं ऐसा पूछोगे तो संकीर्णता आ जायेगी और धर्म कहोगे तो असीमता आ जायेगी। आचार्य भगवन् कहते हैं- ''**धर्मेश्वरा विदुः सद्दृष्टि ज्ञान वृत्तानि धर्मं।**'' वे कहते हैं-सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान व सम्यग्चारित्र ये धर्म है ऐसा धर्म के ईश्वर, अधिपति, नायक ने कहा है। '**रत्नत्रय**' एक ऐसा धर्म है जिसे सभी स्वीकार करते हैं। बात यदि सत्य है तो स्वीकार है कभी विसंवाद, विरोध नहीं। '**रत्नत्रय**' धर्म है तो उसकी शरण में जैन, हिंदु, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, पशु-पक्षी सभी आकर बैठ जाते हैं क्योंकि विशालता को लेकर परिभाषा बनाई गई। वास्तविकता में धर्म तो विशाल ही होता है पर हम उसे संकीर्ण बना देते हैं। यदि कहा जाए जैन धर्म सत्य बाकी असत्य है-तो हिंदु खड़े हो जायेंगे। दो ही तरीके हैं या तो Discuss करो या उठकर चलो क्यों कि जब व्यक्ति Discuss करने में समर्थ नहीं होता तो

उठकर चल देता है। धीरे-धीरे हिंदु, सिक्ख, ईसाई, मुस्लिम आदि-आदि खिसक जायेंगे। फिर गिनती में सीमित ही व्यक्ति रह जायेंगे और भगवान का उपदेश संकीर्ण हो जायेगा। जबकि भगवान बहुत ऊँचे होते हैं। जैसे सूर्य का प्रकाश बिना भेदभाव के सबके आँगन में पहुँचता है वैसे ही भगवान का उपदेश भी प्राणी मात्र के लिए होता है। भगवान के समवशरण में प्राणी मात्र तक पहुँचता है। सबके लिए प्रभु का द्वार खुला रहता है। आईये, बैठिए, दर्शन कीजिए और उपदेशामृत पान कीजिए। भगवान का उपदेश असीम हो गया इसीलिए सत्य है। अथवा सत्य है इसीलिए असीमता को प्राप्त हो गया। सत्य किसी व्यक्ति के साथ नहीं, व्यक्ति ही सत्य के साथ-साथ होते 'Right is might' सत्य ही मेरा है जहाँ असीमता का सिद्धान्त होता है वहाँ विसंवाद नहीं होता तथा 'Might is right' जो मेरा सो सही का सिद्धान्त आता है वहाँ मनोमलिनता आ जाती है। 'Right is might' में धर्म की असीमता समाहित है।

"जिसने रागद्वेष कामादिक, जीते सब जग जान लिया"
सब जीवों को मोक्ष मार्ग का, निस्पृह हो उपदेश दिया।

अर्थात् जो वीतरागी, सर्वज्ञ व हितोपदेशी हैं वे ही सच्चे देव हैं। यह असीमता को लिए हुए सच्चे देव की परिभाषा है।

"बुद्ध वीर जिन हरि-हर ब्रह्मा, या उसको स्वाधीन कहो।"

फिर चाहे आप उन सच्चे आप्त को बुद्ध कहो, वीर कहो, हरि-हर कहो या ब्रह्मा कहो किसी भी नाम से पुकारो सब कुछ स्वीकार है।

सिद्धान्त अकाट्य, अविचल, निश्चल व सत्य होता है। गुरु की बात जहाँ कही है तो कहते है-

विषयाशा वशातीतो निरारम्भो परिग्रहः।
ज्ञान ध्यान तपो रक्तः तपस्वी सः प्रशस्यते॥

अर्थात् जो विषयों की आशा से अतीत हैं, आरंभ व परिग्रह से रहित हैं तथा ज्ञान, ध्यान और तप में लीन रहते हैं वे ही सच्चे गुरु हैं अब जिसमें भी यह परिभाषा घटित होती है वे हमारे सच्चे गुरु हैं। कोई शिष्य कहता है कि आचार्य विराग सागर जी हमारे गुरु हैं तो जो उनके बगल में दूसरे महाराज हैं, तीसरे महाराज हैं वे गुरु नहीं है। उन्हें क्या कहोगे वे भी गुरु ही हैं, तपस्वी हैं। अंतर बस इतना है कि एक दीक्षा गुरु हैं और एक सामान्य गुरु हैं। जिनमें रत्नत्रय हो वे सब गुरु

हैं। हम रत्नत्रय को देखते हैं। जहाँ रत्नत्रय होता है वहाँ श्रद्धा से शीश स्वयमेव झुक जाता है और हम असीम की यात्रा कर लेते हैं। जहाँ-जहाँ मुनिजन दिखते हैं श्रद्धा से मस्तक झुका लेते हैं। इसीलिए हम सभी रत्नत्रय धारियों को एक साथ नमन कर लेते हैं और सूत्र जागृत हो जाता है।

गुरु भक्त्या वयं सार्द्ध, दीपद्वितय वर्तिनः।
वंदामहे त्रिसंख्योन, नव कोटि मुनीश्वरान्॥

अर्थात् ढाई द्वीप संबंधी तीन कोटि मुनिराजों को गुरु भक्ति पूर्वक नमस्कार करते हैं।

'**धर्म**' की विशालतम व असीमता जहाँ दिखाई है वहाँ कहा है- ''**अहिंसा जिसका मूल है वह धर्म है।**'' कहीं भी जैन धर्म, हिंदु धर्म विकल्प में नहीं आये। हम असीमता पर पहुँचे, धर्म कहता है-हम नदी के अंदर के पानी तक पहुँचे? घाट माध्यम हो सकता है परंतु प्रवेश तो अंदर में पाना है। महावीर स्वामी कहते हैं मैं माध्यम हो सकता हूं। लेकिन मैं अकेला ही सत्य हूँ ऐसी बात नहीं है। पार्श्वनाथ भी सत्य है, अजितनाथ भी सत्य हैं। सभी सत्य है क्योंकि जैसी वीतरागता, सर्वज्ञता व हितोपदेशिता मुझमें है वैसा ही उनमें भी है। जब ऐसे भाव जाग्रत होते हैं तो चौबीस तीर्थंकरों की पूजा प्रारंभ हो जाती है और हम असीमता पर पहुँच जाते हैं। भूत व भविष्यत चौबीसी की भी पूजा प्रारंभ हो जाती है क्योंकि हम असीमता वास्तविकता पर पहुँचे हैं। हम असीमता पर पहुँचे। हम यदि यह कहें कि भगवान महावीर सत्य है बाकी असत्य तो वह सत्य नहीं रहेगा। फिर भगवान महावीर स्वयं तुम्हें असत्य कहेंगे। क्यों कि भगवान महावीर ने कभी नहीं कहा कि मैं ही सत्य हूँ जिस दिन तुमने यह कह दिया कि भगवान महावीर सत्य है आप असत्य। तो तुमने भगवान महावीर को ही असत्य बना दिया। अन्य तीर्थंकरों का रत्नत्रय असत्य है तो महावीर भगवान का भी असत्य हो जाएगा। क्योंकि धर्मात्मा के बिना धर्म नहीं होगा।

आपने कहा गणाचार्य श्री विराग सागर जी ही सत्य हैं अन्य असत्य तो रत्नत्रय दूसरों में नहीं है यदि दूसरों का रत्नत्रय, रत्नत्रय नहीं तो मेरे रत्नत्रय की भी अवहेलना हो जायेगी इसलिए भगवान कहते हैं कि हम सदैव सत्य बोले। सत्य क्या है? तो जो जिनवाणी में लिखा है, गुरु कहते हैं वह सत्य है। जब भी बोलें सत्य बोले तो हम जहाँ भी जायेंगे हमें सत्य ही सत्य नजर आयेगा। जिसके पास बैठेंगे

वहीं सत्य दिखेगा, ऐसे सत्य को हाथ में लेकर चलें। झूठ बोलना पाप है, झूठ बोलने का परिणाम अच्छा नहीं होता।

एक सेठ जी के पास एक व्यक्ति नौकरी के लिए पहुँचा, वह गरीब था। ज्यादा पढ़ा लिखा नहीं था उसने सेठजी से नौकरी देने की बात कही। सेठजी बोले मुझे तो आवश्यकता ही थी अच्छा किया जो तू मेरे पास आ गया। मैंने कहा-वेतन क्या लोगे। आप जो दोगे मैं ले लूंगा परंतु मेरी एक बुरी आदत है, वह यह कि मैं साल में एक दिन झूठ बोलता हूँ। सेठजी सोचते हैं यहाँ सारे लोग हर रोज झूंठ बोलते हैं और यह एक ही दिन बस बोलता है तो कोई बात नहीं। सेठ जी नौकरी पक्की कर देते हैं। साल भर तक बड़ी ईमानदारी के साथ उसने नौकरी की। जैसे ही साल पूरी हुई वेतन ले लिया और जाने हेतु सेठजी से अनुमति माँगी। सेठजी बोले-क्या बात है क्या तुम्हारा वेतन पूरा नहीं हुआ अथवा तुम्हें यहाँ कुछ तकलीफ है। नौकर बोला ऐसी बात नहीं है सेठजी। मेरी नौकरी पूरी हो गई है और अब मैं जाना चाहता हूँ। सेठजी बोले-ऐसा मत करो मैं तुम्हारा वेतन बढ़ाए देता हूँ और तुम जो सुविधा चाहो वह भी दे सकता हूँ। नहीं सेठजी बात यह नहीं है तो क्या बात है कहो? सेठजी दरअसल.... हाँ-हाँ कहो नि:संकोच कहो। आप बुरा न माने तो एक बात कहना चाहता हूँ कि सेठानी जी का चाल-चलन ठीक नहीं है। सेठजी की जिज्ञासा बढ़ी क्या कहते हो? हाँ सेठजी वह तुम्हें नहीं चाहती किसी और को चाहती है। अच्छा यह तो बात अभी समाप्त नहीं हुई आगे बात यह है कि आज की रात्रि आप संभाल कर निकालना सेठानी जी की सलाह हो गई है कि आज सेठजी का गला चाकू से काटना है। रात को संभल कर सोना। पहले तो सेठजी को कुछ विश्वास नहीं हुआ था परंतु नौकर विश्वासपात्र था और गला काटने की बात सुनकर तो वे घबरा ही गये। वे बोले हाँ-हाँ में सावधान रहूँगा। सेठजी चिंतामग्न हो गये और यहाँ नौकर जल्दी से घर पहुँचा सेठानी जी के पास और बोला सेठानी जी मैं वापस जा रहा हूँ। विश्वास पात्र नौकर जा रहा है सेठानी जी को काम काज की चिंता हुई तो वे बोली क्या बात है क्या तुझे यहाँ किसी बात की कमी है जो जाने की बात कह रहा है। नहीं सेठानी जी ऐसी कोई बात नहीं। बात तो यह हो गई कि सेठजी तो आपको देखना भी नहीं चाहते। कोई बात हो गई तो मैं बीच में फसूंगा। जाना तो है ही इसलिए सत्य बतला दिया। मेरी बात सेठजी से मत कहना। ठीक नहीं कहूँगी। परंतु अब मैं क्या करूं कुछ उपाय तो बता। ठीक है आप पूछती हैं तो

एक उपाय मेरे पास है। जब रात में सेठजी सो जाएँ तो उनकी आधी मूंछ काट लेना फिर दूसरी औरत उनसे घृणा करेगी और सेठजी को भगा देगी।

कम बुद्धि वाले शीघ्र ही दूसरों की बातों में आ जाते हैं। सेठानी जी ने एक उस्तरा तैयार कर दिया। सेठजी को नींद नहीं आ रही थी। वे करवट बदल रहे थे इधर सेठानी जी सेठजी के सोने का इंतजार कर रही थी। जैसे ही सेठजी एक करवट में स्थिर हुए सेठानी जी ने सोचा सेठजी सो गये वह धीरे से अपना उस्तरा उठा लाई और जैसे ही सेठजी के सन्मुख हुई सेठजी ने झट से उसका हाथ पकड़ लिया और बोले मुझे मारने चाहती है। तू क्या मुझे मारेगी, मैं ही तेरा काम तमाम कर दूंगा। तभी बीच में वह नौकर आ गया ठहरिये, वह सेठ के हाथ से चाकू ले लेता है और कहता है मेरा वेतन पूरा हो गया। मेरा साल में एक दिन झूठ बोलने का नियम था वह पूरा हो गया, माफ करें मैं चला। सेठ-सेठानी दोनों पछताने लगे। अरे, एक दिन का झूठ इतना विकराल रूप ले सकता है। सेठ-सेठानी दोनों पश्चाताप करते हैं। इसीलिए कहा गया है-''**झूठ कभी नहीं कहा करूँ**'' अर्थात् झूंठ कभी भी नहीं बोलना चाहिए।

व्यक्ति झूठ बोलकर बहुत कुछ पा सकता है पर वह अधिक समय तक नहीं टिकेगा सत्यवादी गरीब हो सकता है परंतु जीवन में शांति से रहेगा। हम सभी सत्य के पथ पर चलें और इस सूत्र को दोहराते रहें तो मेरी भावना भाना सार्थक हो जायेगा। तथा जीवन सुख-शांति, समृद्धि से भर जायेगा।

इसी भावना के साथ....

''१००८ पुष्पदंत नाथ भगवान की जय''

दिनांक 11-07-2008

शुक्रवार, प्रात: 9.00 बजे बोरीवली, मुंबई

पर, धन, वनिता को न गहूँ

भव्य मनीषियो!

कल हमने सत्य के विराट, वास्तविक स्वरूप को समझने का प्रयत्न व प्रयास किया। आज हम एक कदम और आगे बढ़ाते हुए तीसरे काव्य के चतुर्थ चरण की ओर जा रहे हैं। कवि कहता है-

''पर धन वनिता पर न लुभाऊँ संतोषमृत पिया करूँ।''

पर धन पर न लुभाऊँ यह पहली बात है। धन को देखकर मेरे अंदर लोभ उत्पन्न न हो जाए कि हम चोरी करने लग जाएँ। चोरी करना एक अपराध माना जाता है। आगम में कहा भी गया है-''**मालिक के आज्ञा न होय, चीज लहे सो चोरी होय।**'' वस्तु के मालिक की अनुमति के बिना सामग्री उठा लेना चोरी है। चोरी की भी बहुत सी परिभाषाएँ हैं-किसी व्यक्ति ने आकर पूछा-बिना पूछे किसी के कमण्डल का पानी ले सकते हैं-नहीं, क्यों कि उस कमण्डल का कोई न कोई स्वामी है। एक श्रावक ने पूछा-मंदिर का शास्त्र क्या बिना पूछे ले सकता हूँ। मैंने कहा-पढ़ तो सकते हो परंतु घर नहीं ले जा सकते। लोग बिना पूछे मंदिर का शास्त्र घर ले जाते हैं। मंदिर का शास्त्र स्वाध्याय के लिए होता है। दान दातार ने स्वाध्याय के निमित्त शास्त्र दान दिया है। घर ले जाने के लिए नहीं। कुछ लोग शास्त्र घर ले जाते हैं चोरी का भाव तो नहीं है लेकिन घर में ही कई दिन तक वह शास्त्र रखा रहता है यदि वह मंदिर में होता तो अनेक लोग लाभ उठा सकते थे। कुछ लोग मंदिर के पूजा के बर्तन घर ले जाते हैं वे भी घर ले जाने के लिए नहीं, अपितु भगवान की पूजा, गुरु पूजा के लिए हैं। पूजा करके वापस रख दो तो वह चोरी नहीं। घर ले जाना अपना स्वामित्व बना लेना पर वस्तु पर अधिकार जमाना चोरी है। कहा जाता है कि कभी-कभी छोटी सी चोरी भी बड़ा रूप धारण कर लेती है।

कभी-कभी हम हँसी-हँसी में बच्चों को चोरी करना सिखा देते हैं। मम्मी बोलती है-पापा के जेब से जाकर पैसे निकाल ला और पापा से मत कहना। जब बच्चा चुपचाप पैसे निकाल लाता है तो माँ पीठ ठोक देती है। अच्छा काम किया, बच्चा खुश हो जाता है। एक-दो बार आपके कहने से निकालेगा फिर वह चोरी करना सीख जायेगा तो कभी पापा के जेब से तो कभी मम्मी की पेटी से नोट निकाल सकता है। सिखाने वाले आप हैं, कभी पापा कहते हैं जा मम्मी की पेटी से नोट निकाल ला और हाँ ध्यान रखना मम्मी से मत कहना। वह शाबासी से निकाल लाता है, पापा प्रोत्साहन देते हैं।

एक बार छोटा बच्चा था परिस्थिति नाजुक थी बार-बार कहता है पापा पुस्तक, पेन, कॉपी चाहिए। पापा लाकर नहीं देते थे। चोरी दो प्रकार की होती है। एक तो परिस्थिति व्यक्ति को चोर बना देती है। दूसरा उसका लोभ लालच चोर बना देता है। जब पूर्ति नहीं होती तो वह रास्ता निकालता है लिखने को पेंसिल चाहिए तो देखता है कि बगल वाले के कम्पॉस में पेंसिल है तो वह निकाल लेता है और मम्मी से आकर कहता है कि मम्मी, मैं पापा से चार दिन से बोल रहा था उन्होंने लाकर नहीं दी तो मैं बगल वाले बच्चे की पेंसिल ले आया। मम्मी कहती है ठीक किया। अब उसे कॉपी चाहिए थी उसने बगल वाले बच्चे के बेग से कॉपी निकाल ली। मम्मी मैं कॉपी ले आया, माँ खुश हो जाती है ठीक किया। पापा से बोलते-बोलते थक गया था। धीरे-धीरे आदत बन गई और वह कभी कोई समान, कभी सामग्री कभी पैसे चोरी करके लाने लगा और ऐसा करते-करते एक दिन वह बहुत बड़ा डाकू बन गया। इतना खूंखार डाकू बन गया कि उसे पकड़ कर लाने पर ईनाम रखा गया। पुलिस अपना प्रयास करते-करते थक गई। उस पर ईनाम रखा गया था इसलिए एक दिन वह पकड़ में आ ही गया। चर्चा प्रारंभ हो गई, चोरी के सारे सबूत मिल गये अंत में उसे फांसी की सजा सुनाई गई एक पद्धति है, नियम है, कानून है कि जिसे फांसी पर चढ़ाया जाता है उसकी अंतिम इच्छा अवश्य पूछी जाती है वह कहता है कि मेरी अंतिम इच्छा माँ से मिलने की है। तुरंत ही माँ को बुलाया गया, खड़ा किया गया तो चोर कहता है माँ को मेरे पास लाया जाए। सब ने सोचा कि कुछ महत्वशाली बात कहनी होगी। जैसे ही माँ उसकी बात सुनने कान उसके पास करती है तो वह माँ के कान को काट लेता है। माँ चीख उठती है तो जो लोग वहाँ खड़े थे वे कहते हैं, तू मरने जा रहा है मरते-मरते भी अपनी माँ

को कष्ट देकर जा रहा है। मैं कष्ट देकर नहीं, सबक देकर जा रहा हूँ। कि सारी माताओं को बता देना कि वे अपने बच्चों को चोरी करना न सिखाएँ, यदि मम्मी पापा की जेब से पैसे निकालने की बात न सिखाती और पापा मम्मी की पेटी से नोट निकालने की बात न सिखाते तो वह बच्चा फांसी के तख्ते पर न चढ़ता। चोरी हमें ऐसी अवस्था में ले जाकर खड़ा कर देती है। प्रारंभिकता में अच्छी दिखती है। परंतु परिपाक अच्छा नहीं होता। रास्ते में कोई पकड़ में आ जाए तो पूजा-पाठ होती है। झूठ भी बड़ा पाप है। एक बार एक वन में एक मुनि महाराज पधारे उसी वन में एक बड़ा चोर रहता था। जब उसने मुनिराज को देखा तो श्रद्धा से मस्तक झुका लिया। मुनिराज ने पूछा तुम कौन हो? उसने कहा मैं तो तस्कर हूँ यही मेरा काम धंधा है। मुनिराज ने कहा-ये पाप हमारे बड़े शत्रु हैं अत: इन्हें छोड़ दो। वह बोला मैं इस कार्य से रोजी-रोटी चलाता हूँ अत: चोरी करना नहीं छोड़ सकता। महाराज ने कहा-ठीक है तो तुम यह नियम ले लो कि मैं कभी झूठ नहीं बोलूँगा, उसने सोचा इस नियम को लेने में कुछ हानि नहीं और वह सत्य बोलने का नियम ले लेता है। एक दिन वह चोरी करने के लिए राजमहल की ओर प्रस्थान करता है। रात्रि का समय था। रास्ते में उसे एक द्वारपाल मिलता है वह उससे पूछता है तू कौन है? वह कहाँ जा रहा है? चूंकि मुनिराज से उसने सत्य बोलने का नियम लिया था। इसलिए वह कह देता है कि मैं एक चोर हूँ व चोरी करने जा रहा हूँ। द्वारपाल सोचता है यदि वास्तव में चोर होता तो अपने को चोर कभी नहीं कहता अत: ये चोर नहीं हो सकता। चोर और आगे बढ़ता है तो उसे दूसरा द्वारपाल मिलता है। वह भी यही पूँछता है तू कौन है? वही उत्तर देता है। मैं एक चोर हूँ और चोरी करने जा रहा हूँ। वह भी सोचता है यह चोर नहीं हो सकता और उसे आगे जाने देता है। और इस तरह वह आसानी से राजमहल में प्रवेश कर जाता है और सोती हुई महारानी के गले में पड़े हीरे जड़े हार को तथा बहुत से धन को चुरा लेता है। जब वह चोरी करके वापस आता है तो द्वारपाल सोचते है कि यह इतना सामान लिये है अवश्य ही राजा ने इसे खुश होकर भेंट प्रदान की होगी। लौटते समय द्वारपाल सोचते हैं यह कौन सा विशेष व्यक्ति है इसका परिचय अवश्य पूछना चाहिए। द्वारपाल पुन: पूछता है-महाशय आप कौन हैं वह पुन: वही उत्तर देता है मैं एक चोर हूँ और राजमहल से चोरी करके आ रहा हूँ। वह द्वारपाल सोचता है यदि यह वास्तविकता में चोर होता तो कभी अपने मुख से अपने को चोर नहीं कहता। अत: द्वारपाल उसे

जाने देता है। परंतु प्रात:काल पता चलता है कि राजमहल में वास्तविकता में चोरी हो गई। चोर की खोज की गई और पकड़ कर राजा के सामने प्रस्तुत किया गया। राजा ने भी पूछा तुम कौन हो? पुन: उत्तर मिला-मैं एक चोर हूँ। निश्चित है चोरी करना ही मेरा काम है। क्या तुमने राजमहल में चोरी की? हाँ मैंने चोरी की। राजा बड़े आश्चर्य में पड़ गया यह चोर होकर सत्य कैसे बोल रहा है। राजा ने कहा आश्चर्य है तुम चोर होकर भी सत्य बोलते हो। तो वह चोर कहता है-महाराज मैंने जंगल में एक निर्ग्रंथ मुनिराज से कभी भी झूठ न बोलने का नियम लिया है। राजा उसके व्रत की दृढ़ता को देख अत्यंत प्रसन्न हो जाते हैं और बोलते हैं यदि मैं तुम्हें पर्याप्त धन संपदा दे दूँ तो तू चोरी करना भी छोड़ देगा। राजा ने उसे बहुत सारा धन दिया फलस्वरूप उसने चोरी करना भी छोड़ दिया।

अनेक बार व्यक्ति परिस्थिति व लोभ वशात् चोरी करता है। यदि परिस्थिति है तो पूर्ति की जाये और लालच है तो उसे सही मार्ग दिखाया जाए। मात्र धन चुराने का नाम चोरी नहीं है। आचार्य कहते हैं पर पदार्थों को तुम किसी न किसी रूप में ग्रहण कर रहे हो ये तुम्हारा स्वभाव नहीं है। स्वभाव से बाह्य है। फिर भी तुम ग्रहण कर रहे हो। संत चिंतन में डूब जाते हैं। मुनि नग्न क्यों रहते हैं। ऐसा प्रश्न किये जाने पर मुनिराज उत्तर देते-न कुछ साथ लेकर आये थे न साथ लेकर जायेंगे इसलिए नग्न रहते हैं। मेरा क्या है जिसे ग्रहण करूँ। न हम मकान साथ लाये, न दुकान, न ही कपड़े, न सोना-चाँदी जब कुछ साथ ही नहीं लाये तो इनको स्वीकार ही क्यों करूँ। गांधी ने इस विषय में जैन धर्म के परिग्रह परमाणुव्रत की बड़ी प्रशंसा की है। वे कहते हैं आवश्यकता से अधिक सामग्री रखना भी चोरी है। आगे कविवर जुगल किशोर जी कहते हैं-''**पर धन वनिता पर न लुभाऊँ संतोषामृत पिया करूँ।**'' इस चरण के माध्यम से ब्रह्मचर्यव्रत की ओर संकेत (दृष्टिपात) किया है। यदि गृहस्थ अवस्था में पूर्णरूपेण ब्रह्मचर्य का पालन न हो सके तो कम से कम स्वदार संतोषव्रत को ही अपना लूं। अर्थात् अपने पति के अलावा जितने पुरुष हैं और वे भाई, पुत्र व पिता तुल्य हैं तथा शीलव्रती अपनी पत्नी के अलावा शेष स्त्रियों को माता, बहन व बेटी के रूप में देखते हैं। जो उम्र में अपने से बड़ी है वे माता तुल्य हैं, जो बराबरी की हैं वे बहिन तुल्य तथा जो उम्र में छोटी हैं वे बेटी तुल्य हैं। इसी प्रकार शीलवती नारियाँ अपने पति के सिवाय शेष पुरुषों के प्रति पिता, भाई, पुत्रवत दृष्टि रखती हैं। जो उम्र में बड़े हो उन्हें पिता

तुल्य, छोटे हो पुत्र तुल्य व बराबर के हो तो भाई तुल्य मानती हो। इस प्रकार के पवित्र विचार होने पर ही शीलव्रत हो सकता है। यदि हम शीलव्रत से विपरीत चलेंगे तो जीवन संकट में पड़ जायेगा। कहा भी है-

पड़े काम के फेर में, बिगड़े काम तमाम।
दाम गया बल भी गया, नाम हुआ बदनाम।।

काम वासना के चक्कर में जो पड़ा वह व्यक्ति अपने ही हाथों सब काम बिगाड़ लेता है। दाम अर्थात् धन भी जाता है बल भी नष्ट हो जाता है तथा नाम भी बदनाम हो जाता है। जो शीलव्रती धारी है उसे सहजता में ही विद्या मंत्र आदि की सिद्धि हो जाती है। जब भी कोई बड़ा जाप्यानुष्ठान किया जाता है, विद्या सिद्ध करते हैं तो शीलव्रत धारण करना अनिवार्य होता है।

जब हम लोग तमिलनाडू में थे तो कुछ लोग आते थे। वे काले कपड़े पहनते थे तथा अइअप्पा के उपासक थे। वे 40 दिन तक कुछ अनुष्ठान करते थे तो 40 दिन के लिए मांस, मदिरा का त्याग करते थे तथा ब्रह्मचर्य से रहते थे। वे हमारे पास नमस्कार करने आते थे। वे कहते थे हम ऐसे रहते हैं तो हमारे अइअप्पा खुश हो जाते है। मंत्र साहित्य में भी ब्रह्मचर्य की बड़ी महिमा बताई है।

बाईबिल में कहा गया है-

:Celebrate is member of God"

अर्थात् ब्रह्मचारी भगवान का ही एक सदस्य है।

कहने का तात्पर्य है कि हम अपने विचारों को पवित्र रखें तो जीवन में आत्म साधना, शांति के रास्ते खुले मिलते हैं और उन्हें अपनाकर जीवन को सार्थक बना लेते हैं। भगवान से सदैव ऐसी ही प्रार्थना करना है कि हम अपने शील व अचौर्यव्रत में मजबूत रहे तभी हमारा आत्महित/आत्म कल्याण हो सकेगा।

इसी मंगल भावना के साथ....

"1008 श्री शीतलनाथ भगवान की जय"

दिनांक 11-07-2008
शुक्रवार, प्रात: 9.00 बजे — बोरीवली, मुंबई

संतोषामृत पान करूँ

भव्य मनीषियो!

कल हम देख रहे थे अचौर्य व ब्रह्मचर्य की महिमा को। आज हम पंचव्रतों के क्रम में परिग्रह परमाणु व्रत को देखेंगे जब व्यक्ति के जीवन में संतोष रूप धन आ जाता है तो बाहर के धन संयम का भाव स्वयमेव घट जाता है। यही बात कवि जुगलकिशोर जी कह रहे है कि "**संतोषामृत पिया करूँ**" संतोष को कहीं धन की उपमा दी जाती तो कहीं अन्य भी उपमायें दी जाती है परंतु मेरी भावना में कवि ने संतोष को अमृत की उपमा दी है। अब प्रश्न उठता है कि अमृत क्या है? कहाँ मिलता है? किस वृक्ष पर उत्पन्न होता है? अथवा बाजार में मिलता है? यह कोई जूस है? या फल है? महाराज बोले यह कुछ नहीं है, कोई भी कंपनी इसे नहीं बनाती, कोई व्यक्ति अमृत को नहीं बना सकता अपितु अमृत तो देवों के कण्ठ में झरने वाला दिव्य आहार है। जिन देवों की जितनी आयु होती है उतने हजार वर्ष के बाद उनके कण्ठ में स्वत: ही अमृत झर जाता है। इसी कारण देवों में संयम नहीं पाया जाता। वे चाहे भी कि हम भी संयम ग्रहण कर ले परंतु नहीं कर सकते क्यों कि उन्हें पता नहीं होता कि कण्ठ से कब अमृत झर जायेगा। यदि कोई देव चाहे कि मैं मुनिराज जी को आहार दे दूं तो संभव नहीं क्योंकि मुनि महाराज देवों से आहार नहीं लेते। कारण है कि जो संयम धारण करता वही आहार देने का पात्र है। देवों के संयम होता नहीं इसलिए उनकी आहारदान की पात्रता ही नहीं है। मनुष्यों को ये सौभाग्य है कि वे संयम धारण कर सकते है इसलिए आहार दान देते है। भगवान के जन्म के भी 6 महिने पहले से सौधर्म इन्द्र उनकी सेवा में जुट जाता है फिर भी आहार नहीं दे सकता।

लौकान्तिक देव जो कि तीर्थंकरों के वैराग्य की प्रशंसा करने आते है वे

बहुत ज्ञानी होते है निरंतर तत्व चर्चा में समय बिताते है एक भवावतारी होते है लेकिन फिर भी आहार नहीं दे सकते। मुनिराज संयम ग्रहण कराने के उपरांत ही आहार लेते है, अष्टमूलगुण दिलाते है। देव दर्शन, रात्रि भोजन त्याग, अभक्ष्यों का त्याग आदि का नियम देकर ही आहार ग्रहण करते है। मनुष्यों के कण्ठ से अमृत नहीं झरता वे संयम, नियम व्रत ले सकते है इसीलिए आहार दान के पात्र है। अमृत की भी कई क्वालिटी है। एक अमृत तो गले से झरता है और एक अंतरात्मा से झरता है। जिसे सुखामृत, ज्ञानामृत या संतोषामृत कहा जाता है। इस अमृत को मनुष्य भी प्राप्त कर सकते है और देवों की तरह सुख को भी प्राप्त कर सकते है। एक ओर संतोष को धन की उपमा देते हुए भी कहा गया है-

गोधन, गजधन, बाज धन और रतनधन खान।
जब आवे संतोष धन, सब धन धूलि समान।।

गोधन, गजधन पहले समय में जो चौपाया पशु होते थे उसे भी धन की कोटि में गिना जाता था किसी के पास 40-40 गायें हुआ करती थी तो वे बड़े धनपति कहलाते थे। एक गजधन भी होता है हाथी जिसके पास वह भी धनवान कहलाता था। पहले के समय राजा, महाराजा, व्यापारी आदि के पास वाहन नहीं होते थे इसलिए वे देशाटन करने के लिए देश-विदेश में घूमने के लिए अपने पास हाथी रखते थे। एक बाज धन होता था। आज एक स्थान से दूसरे स्थान पर कोई सूचना भेजना हो तो टेलीग्राम, टेलीफोन या मोबाइल होता है पहले ये सब सुविधायें नहीं थी। तब बाज पक्षी जो बहुत समझदार होता है संदेश वाहक का काम करता था। कोई बहुत गोपनीय बातें हो, हमारे पत्र को कोई छुड़ा न ले इस हेतु बाज पक्षी रखे जाते थे न तो वह स्वयं पढ़ेगा, न उससे कोई छीन सकेगा। उसके मुख में चिट्ठी दे दी जाती है अमुक स्थान पर चिट्ठी ले जाओ आज भी पक्षी वगैरह रखे जाते हैं। कबूतर को प्राय: भाग्य बतलाने वाले ज्योतिषी/पंडित अपने पास रखते हैं तथा वह तोता भी कागज उठाता है। पक्षी भी समझदार, संज्ञी होते हैं। तोता पालने वाले पक्षी को पढ़ा देते है वह सीख जाता है। राजा लोग पक्षी को रखते थे जिसके पास जितने बाज हो वह उतना ही धनवान माना जाता था। एक रतनधन अर्थात् हीरा, मोती, पन्ना, जवाहरात, नीलम, पुखराज, मूंगा, लहसुनियाँ आदि कितने-कितने किस्म के रत्न होते हैं। रत्न अलग होता है, मणि अलग होती है। स्फटिक मणि व स्फटिक रत्न दोनों में अंतर है। रत्न, मणि की तुलना अधिक कीमती होता है।

इस प्रकार ये सब लौकिक धन हमारे पास हो, रत्नों के भंडार हो लेकिन यदि संतोष रूप धन नहीं हो तो सारे धन धूलि के समान हो जाते हैं। इसीलिए कहा है- 'जब आवे संतोष धन, सब धन धूलि समान।' एक संतोष है तो सब कुछ है। संतोष है तो सुख है। कहा भी है- "Contantment is happiness" अर्थात् संतोष है तो सुख है। और यदि जीवन में संतोष नहीं तो फिर दुःख ही दुःख है।

एक बार की बात है-एक बड़े लोभी कंजूस सेठजी थे। सेठजी के पास कुछ भी कमी नहीं थी जिनके तलघर में सोने के हाथी वो भी 1 नहीं दो-दो थे। उनकी ऐसी कल्पना थी। विचार था कि मैं हर पशु-पक्षी के सोने के जोड़े तैयार करूंगा। ऊँट के बराबर सोने का ऊँट, हाथी, घोड़ा आदि थे। लेकिन फिर भी सेठजी बिना घी की रोटी खाते थे। कभी सिर पर तेल नहीं लगाते थे, साबुन नहीं लगाते थे, कपड़े उतारन के पहनते थे। एक दिन सेठजी के बेटे ने सेठजी से कहा पिताजी! रोज-रोज रूखी-सूखी खाते-खाते भोजन करने की इच्छा ही समाप्त हो गई है। सेठजी ने उपाय निकाला बोले-बेटा! बाजार में जाकर देखना-जहाँ होलसेल की दुकान हो वहीं पीका ले जाना। सबसे अच्छी क्वीलिटी वाला शुद्ध घी पूरा एक टीन अपने पीके में ले लेना फिर पैसे लेने मेरे पास आ जाना मैं मना कर दूँगा। दुकानदार से जाकर कहना पिताजी ने कहा है यह घी नहीं चाहिए और दुकानदार से पीका खाली करवा लेना। खाली कराने पर भी पीके में घी लगा रह जाएगा। उसे घर आकर निकाल लेना और उसी की सब्जी बना लेना। पापा सिर में लगाने को तेल चाहिए उसका क्या करूँ? सेठजी को दूसरा उपाय सूझा-बेटा? बड़े घर के बच्चों से दोस्ती करना तथा खेलते-खेलते उनके सिर का तेल अपने सिर पर रगड़ लेना।

एक बार नदी में पूर आ गया सेठजी रात्रि में निकल पड़े सोचा नदी में बहुत सी सामग्री बह कर आयेगी वह बीन कर बेच देंगे और पैसा कमायेंगे। एक बार लकड़ी का वृक्ष बहकर आ रहा था। सेठजी ने सोचा इसे ही ले चलते हैं। सालभर इसकी लकड़ियाँ काम आयेगी। वे पूरी शक्ति लगाकर वृक्ष को खचोड़ रहे थे। महल में से महारानी ने देखा कितना गरीब आदमी है। बरसते पानी में अपने प्राणों की परवाह किये बिना यह गरीब व्यक्ति वृक्ष लेकर जा रहा है। महारानी जी महाराज से कहती है-हे स्वामी! देखिए वह आपके राज्य का कितना गरीब व्यक्ति है। आपके पास खजाने की कमी नहीं फिर भी आपके राज्य में इतने दरिद्र लोग हैं

प्रात:काल होने पर राजा सेठजी को बुलाते हैं और पूछते हैं-क्या आप ही रात्रि में बरसते पानी में वृक्ष खचोड़े ले जा रहे थे। हाँ महाराज! क्या तुम इतने दरिद्र हो? नहीं महाराज, दरअसल मुझे अपने बैल की जोड़ी बनाना है इसलिए यहाँ-वहाँ से पैसे एकत्रित करता रहता हूँ। तुम क्या चाहते हो महाराज मात्र एक बैल चाहिए। राजा कहते हैं ठीक है, इसे वृषभशाला में ले जाकर मन पसंद बैल दे दो। अनुचर उसे वृषभशाला में ले जाते हैं। जितने भी बैल उन्हें दिखाये गये एक भी पसंद नहीं आया। राजा ने कहा-एक भी बैल पसंद नहीं आया। महाराज मुझे तो मेरे बैल के जैसा ही दूसरा बैल चाहिए। राजा ने कहा-तुम्हारा बैल कैसा है दिखाओ। महाराज! आप मेरे साथ चलिये मैं आपको अपना बैल दिखाता हूँ। राजा जैसे ही अंदर गये तो देखा सारे बड़े-बड़े जानवर सोने के हैं। फिर भी प्राणों की परवाह किये बिना ही लकड़ी का वृक्ष खचोड़ रहा था। कहीं नदी के वेग में बह जाता तो क्या होता।

बंधुओं! लोभी की यही दशा होती है। वह प्राण जाने पर भी धन को ही इष्ट मानता है। लोभ ही सब अनर्थों का मूल है। कहा भी गया है-

"Avarises is the root of all evils."

''**लालच बुरी बलाय**'' लालच बहुत बुरा होता है।

एक बार एक कुत्ता किसी घर से रोटी चुराकर लाया। वह नदी किनारे से गुजर रहा था तभी उसे अपनी परछाई पानी में दिखाई दी। परछाई में उसे अपने ही जैसा दुसरा कुत्ता दिखा उसने सोचा इसके मुख में रोटी है। क्यों न वह भी छीन लूँ। जैसे ही वह भौंकता है, उसके मुख की रोटी भी नीचे पानी में गिर जाती है। वह पछताता रह जाता है।

कवि यह कहना चाहता है कि जहाँ लोभ-लालच है, संतोष नहीं रहता वहाँ दु:ख ही दु:ख होता है। संतोषी सदा सुखी रहता है तथा लोभी निरंतर दु:खी बना रहता है। लोभी रात्रि में सोता भी नहीं है। पुण्य के उदय से संपदा आती है। कहा भी है-

''अगर मंजूर है धन की रक्षा तो, धन वालों बनो दागी।
यदि कुएँ से जल न निकलेगा, तो सड़ जायेगा सब पानी।।''

आज पुण्योदय से तुम्हारे पास धन संपदा है कल का क्या भरोसा। लक्ष्मी की फोटो को हम देखें तो सदैव खड़ी ही मिलती है। इसके पीछे सिद्धान्त यह छिपा है कि जो खड़ा है उसे चलने में देर नहीं लगती। वह तो शीघ्रता से चल देती है।

हम लोग जब टीकमगढ़ में चातुर्मास कर रहे थे उस समय की बात है। वहाँ पर एक धनवान सेठजी रहते थे, होल-सेल के व्यापारी थे। कभी भी मंदिर के चंदे-चिट्ठे या विमान आदि निकलता तो उठकर चले जाते थे। तीर्थक्षेत्र वाला चंदा लेने आये तो टालमटूल कर देते थे। कुछ देना न पड़े इस डर से वो मंदिर भी नहीं जाते थे। कोई सलाह देता कि तुम्हारे पास रूपया-पैसा है गजरथ चलवा दो, मंदिर बनवा दो तो विचारेंगे-विचारेंगे कहकर टाल देते थे। एक दिन अचानक उनकी दुकान में आग लग गई। सब कुछ जलकर राख हो गया कम से कम सेठजी बच गये।

दो-तीन दिन बाद वे रोते हुए मेरे पास आ गये और बोले-महाराज! सब जल गया, सब स्वाहा हो गया। उनकी ऐसी हालत देख उनके कर्जदारों ने जमीन जप्त कर ली। सहयोग दे देंगे पर जमीन का पट्टा लिखो। सेठजी परेशान हो गये उनका घर से निकलना कठिन हो गया। जगह-जगह से समाचार आने लगे। जो कुछ था वह तो सब चला गया और जो कुछ बचा उसे लोग उठा-उठा कर ले जाने लगे। प्रवचन के बाद Announce किया जाए कि लोग सहयोग प्रदान करें। जिन्होंने कभी किसी को नहीं दिया उन्हें कौन देगा? वे बोले हाँ, मैंने कभी किसी को कुछ नहीं दिया यदि देते रहते तो आज ये हालत नहीं होती। चंदा-चिट्ठा में मात्र 5000/- रूपये मिले।

कहने का तात्पर्य यह है कि जब तक पुण्य है उसका सदुपयोग कर लेना चाहिए अर्थात् पुण्योदय में पुण्य की कमाई अवश्य कर लेना चाहिए और जो कुछ भी तुम्हारे पास है उसी में संतोष धारण कर लेना चाहिए। क्योंकि वही सुख को प्रदान करता है। परिग्रह परमाणु व्रत को आप अपने जीवन में धारण कर आप सब उस संतोषामृत का पान करें और शाश्वत सुख को प्राप्त करें।

इसी भावना के साथ....

"जय बोलिये श्रेयांस नाथ भगवान की जय"

दिनांक 14-07-2008

सोमवार, प्रात: 9.00 बजे बोरीवली, मुंबई

प्रभुता नहीं लघुता धरूँ

भव्य मनीषियो!

कल हमने काव्य 3 के अंतिम चरण को देखा था। पंडित कवि जुगलकिशोर जी उसमें पाँच व्रतों के ग्रहण की बात की थी अब चौथे काव्य के माध्यम से कषायों के निग्रह की बात कर रहे हैं वे चौथे काव्य में कहते हैं-

अहंकार का भाव न रखूँ, नहीं किसी पर क्रोध करूँ।
देख दूसरों की बढ़ती को, कभी न ईर्ष्या भाव धरूँ।।
रहे भावना ऐसी मेरी, सरल सत्य व्यवहार करूँ।
बने जहाँ तक इस जीवन में, औरों का उपकार करूँ।।4।।

पवित्र मन से निकल। शब्द हैं, भक्त हृदय से, निर्मल-विशुद्ध परिणामों से उत्पन्न हुए शब्द हैं। भाव रखी है- ''**अहंकार का भाव न रक्खूं**''। एक आम व्यक्ति ठीक इसके विपरीत होता है। उसके अंदर के भाव प्राय: अहंकार के ही होते हैं। आज सारी दुनियाँ अहंकार में डूबी है। अहंकार में ही जन्मी है, अहंकार में ही जी रही है अहंकार में ही मरेगी। सिद्धान्त चक्रवर्ती नेमीचंद्र एक महान आचार्य हुए हैं जब वे षड्खंडागम के स्वाध्याय में संलग्न थे तभी चामुंडराय भी वहाँ आ जाते है। महाराज षड्खंडागम ग्रंथ बंद कर देते हैं तो चामुंडराय को बड़ा आश्चर्य होता है। वे गंग नरेश के सेनापति थे जिन्होंने गोम्मटेश्वर बाहुबली की प्रतिमा का स्वप्न देखा था। यदि किन्हीं लोगों की चर्चा आपस में चल रही हो और किसी के आते ही अचानक चर्चा बंद हो जाय तो आने वाले को लगता है क्या बात हो गई। यदि कोई लिख-पढ़ रहा हो और किसी के आते ही बंद करके रख दे तो प्रश्न खड़ा हो जाता है बात क्या है? एक आसानी से पुस्तक बंद की और एक शीघ्रता से ही है। चर्चा आहिस्ते से बंद की है तो कोई बात नहीं और शीघ्रता से ही है तो लोगों को

शंका/विस्मय उत्पन्न होता है। कि रहस्य क्या है? चामुंडाराय के आते ही महाराज ने शीघ्रता से पुस्तक बंद कर दी। सज्जन की प्रक्रिया तो यह है कि वह अंदर प्रवेश करने के पूर्व अनुमति लेता है कि क्या मैं अंदर आ सकता हूँ। सज्जन प्रकृति के लोग हर काम सोच समझ कर करते हैं। किसी के बीच पहुँचना है तो सोचना पड़ेगा कि कहीं वह हमें रोकना तो नहीं चाहता है। कहीं ऐसा न हो कि वह हमें रोकना चाहता हो और हम चले जाएँ और उसे कहना पड़े कि रूको तो हमारा अपमान हुआ उसके जबाबदार आप ही होंगे। क्यों कि कहीं भी प्रवेश करने से पूर्व पूछना चाहिए। स्कूल में भी बच्चे कक्षा में प्रवेश करने के पूर्व अपने अध्यापक से पूछते हैं कि "May I com in Sir" जब Yes come in तो ही वह अंदर जाता है। No कहेंगे तो वह लौट कर चला जाएगा। ये सब सभ्यता/शिष्टता के प्रतीक हैं। पुराने समय में गृहस्थिक लोग जिस मकान में स्त्रियाँ रहती थी वहाँ अपने सम्मान का ध्यान रखने संकेत करके प्रवेश करते थे। कोई किसी बच्चे का नाम लेता है। कोई खांसता है, तो कोई खखारता है। ये अलग-अलग तरीके हैं। क्योंकि हो सकता है आप जिस कमरे में जा रहे है वहाँ कोई महिला लेटी है, सो रही है, बाल खोले बैठी है पहले सास-बहू का पर्दा था, आज नहीं है पहले के समय में ससुर के आते ही उठकर बैठ जाते थे। व्यवस्थित जो जाते थे ये बड़ों का सम्मान है। आज समय बदलता जा रहा है, सम्मान गिरता जा रहा है। फिर भी अपने घर को तो संभाल ही सकते हैं, चाहे तो संस्कृति को कायम रख सकते हैं। किसी के घर में सूचना देकर प्रवेश करें तो हंसी का पात्र नहीं बनना पड़ेगा। शिष्ट व्यक्ति यदि सांकली लगी हो तो पहले Knock करता है। क्या मैं आ सकता हूँ। स्वीकृति मिलने पर ही अंदर प्रवेश करता है। ये सब सम्मान के प्रतीक हैं। व्यक्ति यदि झांककर देखे तो सम्मान नहीं रहेगा।

चूंकि चामुंडराय सेनापति थे, उच्च दर्जे के थे, नीतिवंत थे। उनके प्रवेश करने पर महाराज ने जैसे ही ग्रंथ बंद किया चामुंडराय ने उसका कारण पूछा- महाराज! आपने मेरे आते ही शास्त्र बंद क्यों कर दिया। महाराज ने कहा-यह एक ऐसा शास्त्र है जिसे तुम्हारे सामने नहीं पढ़ा जा सकता। तो मेरा कल्याण कैसे होगा। महाराज ने कहा यह शास्त्र न तो सुनने की पात्रता आप में है न पढ़ने की। फिर चामुंडराय के आग्रह पर आचार्य महाराज ने कर्मकाण्ड, जीवकाण्ड, लब्धिसार, क्षपणासार की रचना की। चामुंडराय खुश हो गये। करणानुयोग को सुगम तरीके से

समझने हेतु यह ग्रंथ रचे गये, करणानुयोग का एक जटिल ग्रंथ कषाय पाहुड़ है जिस पर वीरसेन स्वामी ने जयधवला नाम की टीका लिखी उस ग्रंथ में कषायों की प्रधानता से ही वर्णन किया गया है।

जिस प्रकार चार कषायें होती है उसी प्रकार गतियाँ भी चार होती हैं। चारों गतियों में आचार्यों ने कषायों का वर्णन किया है। प्रत्येक गति में प्रत्येक कषाय की अधिकता ही नहीं, अपितु जन्मत: वह कषाय पायी ही जायेगी। नारकी का जन्म क्रोध के साथ, मनुष्य का मान के साथ, तिर्यंच का मायाचारी के साथ, देव का लोभ के साथ होता है। ये कषायों का विभाग है।

बच्चा जब जन्म लेता है तो रोता हुआ आता है और प्राय: सारी जिंदगी रोते-रोते ही निकल जाती है। बच्चों के प्रसिद्ध डॉ. एडीसन हुए उन्होंने इसका आंकलन किया। वे बोले-बच्चा रोता है क्यों कि वह सोचता है-मैं गंदगी में पड़ा हूँ, जमीन पर पड़ा हूँ स्वच्छता हो जाती है तो शांत हो जाता है। कोई बच्चे को नहीं उठाता तो भी रोता है क्यों कि अभिमान की पूर्ति नहीं हो रही। बच्चे जब 2-4 साल के हो जाते हैं तो माँ यदि एक को अपनी गोदी में बिठा लेती है तो दूसरा बच्चा उसे नीचे गिराने की कोशिश करता है। जब थोड़ा और बड़ा हो जाता है। जब थोड़ा और बड़ा हो जाता है । A,B, C, D सीख लेता है तो कहता है मुझे सब कुछ आता है। इसे कुछ नहीं आता और बड़ा हो जाता है युवा हो जाता है तो मेरा मकान, मेरी दुकान सबसे अच्छी दिखे, मेरे कपड़े अच्छे हो साईकिल अच्छी हो और आगे बढ़े सामाजिक दृष्टि से देखें तो यदि कहीं पत्रिका निकलती है तो सबसे पहले वह अपना नाम देखता है।

एक बार एक गाँव में एक पत्रिका को लेकर झगड़ा प्रारंभ हो गया। गांव के प्रसिद्ध सेठजी ने जब देखा कि पत्रिका में मेरा नाम नहीं है तो आग बगूला हो गये बोले-अरे-रे कैसी रद्दी पत्रिका है। कौन पढ़ता है, क्या आवश्यकता थी पत्रिका की। व्यर्थ में धन का अपव्यय है। तभी वहाँ के अध्यक्ष व मंत्री जी ने कहा-सेठजी ये देखिये इसमें आपका नाम तो सबसे ऊपर लिखा है। दिखाना, अच्छा, पत्रिका तो वैसे अच्छी है। पत्रिका के बिना आज के समय में काम भी कहाँ चलता है भैय्या! दो-चार पत्रिकाएँ मुझे भी दे देना। क्या बात हो गई? शब्द शैली पल भर में पलट गई अभी तक एक भी बुरी थी अब 2-4 चाहिए। अर्थात् अच्छी बुरी सामग्री नहीं, नाम होता है। यदि कहीं ग्रुप फोटो निकले और एलबम आपके सामने

रख दिया जाए तो व्यक्ति सबसे पहले अपना फोटो देखता है। सामूहिक कार्यक्रमों में सामूहिक फोटो यदि निकलता है तो काम प्रशंसनीय है अन्यथा निंदनीय है। फोटो आना चाहिए। अहंकार का प्रतीक है। यदि प्रवचन हॉल में आधे स्थान पर फर्श बिछा हो और आधे में नहीं, तो पहले फर्श वाला स्थान भर जाता है। यदि फर्श पर भी चटाई या गलीचा बिछा हो तो गलीचा भरता है। मनुष्य की बात तो दूर कुत्ता भी सोफासेट पर सोता है।

एक बार की बात है एक समाज के सम्मानीय व्यक्ति के पास कार्ड नहीं पहुँच पाया। पड़ौसी ने कहा-सेठजी बहुत बड़ा कार्यक्रम है। बड़े-बड़े लोग आ रहे हैं कार्ड आया क्या सेठजी बोले-घर में देखता हूँ आया कि नहीं। अब यदि न कहे तो बदनामी होगी। कहा जाता है-

बंद मुट्ठी लाख की, खुली मुट्ठी खाक की।

सेठजी समय पर पहुँच गये। सभा के व्यवस्थापक नये थे। सेठजी महाराज के पास गये बोले-नमोऽस्तु। एक व्यक्ति ने कहा सेठजी बैठिये। नीचे ही स्थान मिला कुछ इन्सल्ट महसूस हुई। एक जानकार व्यक्ति था जो भाषण दे रहा था, वे बार-बार ऊपर देख रहे थे परंतु किसी ने भी ऊपर बैठने के लिए नहीं कहा। जब स्वागत का नम्बर आया तो बहुत से नाम पुकारे गये परंतु सेठजी देख रहे थे मेरा नाम नहीं पुकारा गया, स्वागतकर्ता सबके गले में माला पहना रहे थे। स्वागत का कार्य लगभग समाप्ति की ओर था सेठजी ने सोचा यदि घर वापस जाऊँगा, पड़ौसी देखेंगे मेरा सम्मान नहीं हुआ तो हंसेंगे इसलिए उन्होंने एक माला मंगाई और स्वयं पहन ली। जैसे ही माला पहनी। किसी ने सेठजी का नाम पुकारा-सोचा सेठजी बहुत देर से बैठे हैं अब मंच पर बुला लेते हैं। जैसे ही सेठजी ने अपना नाम सुना तो अपने गले की माला दूसरे को पहना कर तुरंत मंच पर आ गये बड़े खुश थे कि अब मेरा सम्मान होगा। परंतु संचालक ने देख लिया था कि सेठजी गले में पहले माला थी अत: उनका सम्मान हो चुका होगा। अब सेठजी छोटा सा मुंह लिए मंच पर एक तरफ बैठ गये। जैसे-तैसे किसी ने बोला परंतु फिर भी स्वागत नहीं हुआ।

कहने का तात्पर्य व्यक्ति अभिमान की भूमिका में होता है इसीलिए मन में मानापमान के भाव होते हैं। अरे, भाग्य होगा तो जंगल में भी माला पड़ेगी और भाग्य नहीं होगा तो स्वागत कक्ष में भी स्वागत नहीं होगा। व्यक्ति अहंकार में डूबा रहता है। अहंकार के लिए ही जी रहा है। जो कुछ हूँ सो मैं हूँ।

भरत चक्रवर्ती अभिमान में आकर जब अपनी प्रशस्ति लिखने वृषभाचल पर्वत पर जाते हैं तक्षक को आदेश देते हैं जब वह वहाँ जाकर देखता है तो कहीं कोई स्थान ही नहीं दिखता वह आकर कहता है महाराज! मैं प्रशस्ति लिखूँ कहाँ? यहाँ तो किंचित मात्र भी स्थान रिक्त नहीं है। पूर्ववर्ती चक्रवर्तियों की प्रशस्ति से भरा पड़ा है। भरत चक्रवर्ती देखते हैं और सचमुच सारा वृषभाचल भरा है वे आज्ञा देते हैं। एक नाम को मिटा जाया जाये। आज्ञा तो दे देते हैं परंतु विचारमग्न हो जाते हैं। जैसे अपनी प्रशस्ति लिखने में किसी का नाम मिटा रहा हूँ उसी प्रकार कल आने वाले समय में कोई हमारा भी नाम मिटा देगा। धिक्कार है ऐसे अहंकार को। मेरे जैसे तो जाने कितने चक्रवर्ती अभी तक हो चुके हैं। अमूल्य को मूल्य में खरीदते हो। जीवन दाव पर लगा देते हो, ऐसे अहंकार को धिक्कार है।

एक व्यक्ति ने मंदिर बनवाया ताकि मेरा नाम रहेगा, हमने भगवान की, मंदिर की, लाभ की कीमत नहीं की एक मात्र नाम के लिए मंदिर बनाया इसका मतलब है जो मंदिर बनवाने से असीम पुण्य तुम्हें मिलने वाला था उससे तुम वंचित रह गये। रत्न को कांच के भाव बेच दिया। अज्ञानता में व्यक्ति असीमता को सीमित कर लेते हैं। आगम कहता है कि यदि धर्म के लिए करोगे पुण्य कार्य तो दुगुना फायदा होगा। जैसे कोई किसान खेत में अनाज बोता है तो भूसा तो बिना परिश्रम के मुफ्त में मिल ही जाता है। फूल में सुगंध है तो खूशबू फैलेगी ही। यश: कीर्ति नाम कर्म का उदय है तो यश मिलेगा ही।

गहरा विचार जब हमारे अंदर नहीं आ पाता तो हम संकीर्णता में रह जाते हैं। इसी को खोकर सीमा में बंध जाते हैं। जो सीमाओं के बंधन को तोड़ देते हैं वे ही असीमता की यात्रा कर पाते हैं अभिमान सीमांकन करता है उस अभिमान की दीवार को जो तोड़ देते हैं वे लघुता, विनय के असीम आकाश में विचरण करते हैं नाम का नाम ही छोड़ देते हैं। नाम से काम नहीं रखते काम से नाता कमाते हैं। ऐसा काम करते हैं कि मरने के बाद भी उनका नाम दुनियाँ सम्मान के साथ लेती है।

हे मनीषी! ऐसे ही काम करते जाओ दुनियाँ तुम्हें याद रखेगी, तुम्हारा नाम लेगी। बस एक सूत्र जीवन में अवश्य होना चाहिए कि **'अहंकार का भाव न रक्खूं।'** अभिमानी का सम्मान नहीं होता जो निरहंकारी बन जाता है वह ही एक दिन सम्मान पाता है। ऊपर उठ जाता है। कहा भी जाता है-

लघुता से प्रभुता मिले, प्रभुता से प्रभु दूर।
चींटी ले शक्कर चली, हाथी के सिर धूल।।

जिंदगी को लघु बना लो। इतने लघु बन जाओ कि प्रभु स्वयं बनोगे। लघुता से जो प्रभुता मिलेगी वह शाश्वत होगी। जबरदस्ती की प्रभुता तत्क्षण भी नहीं टिक सकेगी। आज घर-घर की जो कहानियाँ हैं वे अहंकार ने ही लिखी हैं। घर-घर में विसंवाद, लड़ाई-झगड़े अभिमान के कारण ही होते हैं। जो उस अभिमान का विसर्जन कर देते हैं उनके जीवन में लघुता, विनय का सृजन हो जाता है। और विनय व्यक्ति को महान बना देती है। मुक्ति कपाटों को खोल देती है और आत्मा को सर्वोच्च स्थान पर पहुँचा देती है। अत: जीवन में 'अहंकार का भाव न रक्खूं।' इन पंक्तियों को आत्मसात कर लेना तो आपका जीवन एक दिन महान बन जायेगा।

इसी भावना के साथ....।

"1008 श्री वासुपूज्य भगवान की जय"

दिनांक 13-07-2008
रविवार, प्रात: 9.00 बजे — बोरीवली, मुंबई

मद ईर्ष्या को सदा तजूँ

भव्य मनीषियो!

विषय हमारा अहंकार के विसर्जन का चल रहा है। "**मेरी भावना**" का एक-एक शब्द इतना मौलिक व रहस्यों से भरा है कि वह सीमित नहीं असीमता को छूता नजर आता है जाति-पंथवाद से बंधा नहीं है अपितु जन-जन की भावना बन जाता है। ऐसी पवित्र भावनाओं को भाने का हम प्रयत्न कर रहे हैं, कवि कहता है-

अहंकार का भाव न रक्खूं, नहीं किसी पर क्रोध करूँ।
देख दूसरों की बढ़ती को, कभी न ईर्ष्या भाव रखूँ।।

आज सारा संसार अहंकार में ही अग्रणीय रहता है, व्यक्ति दिन-रात उसी की पूर्ति के लिए मेहनत/प्रयास करता है, सारा जीवन उसी की पूर्ति में लगा देता है। आचार्य समझाते हैं कि हे भव्य! यह अहंकार तुम्हें दुर्गति में ले जायेगा। यही जीव जब दूसरे शरीर में पहुँच जाता है तो नहीं पहचान पाता कि अमुक फोटो किसकी है। मान लो उसी स्थान पर पुन: जन्म लिया तो कहेगा उसे उतार कर मेरा फोटो लगाइए। दूसरे शरीर का फोटो लगाओ। हम जितना समय नाम की आकांक्षा में लगा देते हैं उतना आत्म-सम्मान में लगाते तो आत्मा पतन से बच जाती। आत्मा का सम्मान यानि स्वरूप चिंतन, आत्म-ध्यान, आत्म साधना यही सर्वोपरि/उपलब्ध है। जब व्यक्ति आत्म साधना में डूब जाता है तो आकांक्षायें हटने लगती है। जीवन में लघुता आने लगती है। लघुता व्यवहारिक व आध्यात्मिक पथ से उठाती है।

एक जंगल में घास व बांस दोनों खड़े थे। बांस, घास की ओर दृष्टिपात करता है तो अभिमान में फुल जाता है। वह घास से कहता है तेरी जिंदगी बेकार है, छोटी सी पर्याय में तूने जन्म लिया है मुझे देख मैं इतनी ऊँचाईयों पर हूँ। तुम्हें लोग

पैरों से कुचलते हैं, तेरी कुछ भी कीमत नहीं। घास, बांस को देखकर मुस्कुराती है। इतना ही कहती है-समय-समय का फेर है। आज तुम आकाश को छू रहे हो, मैं तो जमीन पर ही खुश हूँ। बांस कहता है-अच्छा होता जो तुम्हारा जन्म ही न होता। घास कहती है ये तो अपना-अपना भाग्य है। इतने में जोरों से हवा का झौंका/तूफान आया और बांस धराशायी हो गया, नीचे गिर गया। वह सोचता है मेरी ये हालत हो गई तो बेचारी बहिन घास का क्या हुआ होगा। वह देखता है-अरे! ये तो आराम से लहलहा रही है। बांस घास से पूछता है बहिन तू बता, तेरी क्या हालत है घास कहती है-मैं तो बिल्कुल ठीक हूँ। बांस कहता है-परंतु मेरी तो कमर ही टूट गई अब इतनी हिम्मत नहीं रही कि मैं खड़ा रह सकूं। बांस बोला-क्या तूफान तुम्हारे पास नहीं आया। मेरे पास भी आया परंतु घास के अंदर न्रमता-सरलता थी इसलिए वह झुक गई और तूफान चला गया।

बंधुओं! यदि जीवन में नम्रता रखोगे तो बड़े से बड़े तूफान भी तुम्हारा कुछ भी बिगाड़ नहीं कर सकेंगे। व्यक्ति अभिमान के कारण ही पतित होता है। अहंकारी, अभिमानी अधिक समय तक नहीं टिकता। अगली बात कही-"**नहीं किसी पर क्रोध करूं।**" क्रोध एक ऐसी अग्नि है जो किसी को जलाए या न जलाए पर स्वयं को तो जलाता ही है। किसी को मारने यदि आपने हाथ में आग का गोला उठाया है तो हो सकता है दूसरा जले अथवा न भी जले परंतु निश्चित ही आपका हाथ तो जल ही जायेगा। क्रोध के आवेग में व्यक्ति अपने आप को नहीं तौल पाता जैसे-उबलते पानी में कोई अपना चेहरा देखना चाहे तो नहीं दिखता, जब वही पानी स्थिर हो जाता है, शांत हो जाता है तो अपना चेहरा दिखने लगता है। क्रोध के आवेग में व्यक्ति अपने कर्त्तव्याकर्त्तव्य को भूल जाता है।

एक महिला का एक इकलौता बेटा था, नासमझ था, पति साहब महिने भर का वेतन पत्नी को दे गये। 100-100 के नोटों की गिड्डी थी। पत्नी ने उस गिड्डी को ऐसे ही रख दिया कि बाद में अच्छे से व्यवस्थित रख देंगे उसका छोटा बच्चा वहीं खेल रहा था। अचानक उसकी नजर नोटों की गड्डी पर पड़ गई, वह नहीं समझता था ये क्या है, उसने नोटों की गड्डी उठाई और सामने जलते हुए चूल्हें में फेंक दी और तालियाँ बजाकर खुश होने लगा जब पत्नी ने देखा कि यहाँ से नोटों की गड्डी कहाँ चली गई, बच्चे से पूछा-तो वह बोला माँ वह तो मैंने चूल्हें में फेंक दी। पत्नी को बहुत क्रोध आ गया गुस्से में आकर उसने बच्चे को जलते

चूल्हें में ही पटक दिया फलत: वह जलकर मर गया। पैसे तो चले ही गये थे अपनी मूर्खता व क्रोधवशात् बच्चे को भी खो बैठी और अंतत: डर के कारण उसने स्वयं भी आग लगा ली।

बंधुओं! क्रोध का परिणाम बहुत घातक होता है। पैसे भी गये, बच्चा भी गया और स्वयं के प्राण भी गये। अत: विवेकी जनों को चाहिए कि वे क्रोधोत्पादक साधन-सामग्रियों से दूर ही रहें तभी किसी अप्रत्याशित घटना से बचा जा सकता है।

कवि आगे कहते हैं- '**देख दूसरों की बढ़ती को कभी न ईर्ष्या भाव धरूँ।**' आज संसार में प्राय: व्यक्ति अपने दु:खों से उतना दु:खी नहीं है जितना वह पड़ौसी के सुख को देखकर दु:खी है। मेरे पड़ौसी के पास इतना बड़ा मकान क्यों है, उसकी दुकान इतनी अधिक क्यों चलती है। इसके पास मोटर, कार, स्कूटर कहाँ से आ गई।

प्राय: व्यक्ति दूसरों से अधिक परेशान है अरे, जितना दूसरों की ईर्ष्या/उन्नति से तुम परेशान हो रहे हो यदि उतना दूसरे की उन्नति में प्रसन्न होना सीख लेते तो तुम्हारे जीवन में खुशी, उपलब्धि, उन्नति आ जाती। तुमने ऐसा नहीं किया इसलिए दुखी हो। आज का व्यक्ति धन से, परिवार से उतना दु:खी नहीं है जितना अपने आप से परेशान हो गया है। क्यों कि ईर्ष्या करते-करते भोजन नहीं पचता, नींद नहीं आती। और ऐसा होगा तो व्यक्ति बीमार पड़ जायेगा फिर तो बात ही दूसरी है। आचार्य भगवन् कह रहे हैं-हानि किसकी हुई-अपनी ही हुई। अपने अंदर ईर्ष्या भाव जाग्रत कैसे हो गये। जब टूर्नामेंट होता है। तो बच्चे लंबी दौड़ करते हैं 200-400 कि.मी. की। उस दौड़ में जब बगल वाला आगे निकलने लगता है तो वह व्यक्ति उसे गिराने का, पटकने का प्रयत्न करता है। लात मारता है कि वह गिर जायेगा तो मैं आगे बढ़ जाऊँगा। आचार्य कहते हैं कि यदि आप इस तरह से आगे बढ़ भी गये तो क्या वह बढ़ना कहलायेगा। नहीं, वह तो अन्याय, अनीति, कूटनीति का काम होगा। ईर्ष्यावशात् कभी किसी का बुरा मत करो। ईर्ष्या में आया व्यक्ति अपने जीवन को दु:खों के गर्त में पटक देगा। दूसरे के कार्य में विघ्न डालोगे तो तुम्हारे कार्य में भी विघ्न आयेगा। छल, कपट करके कोई उपलब्धि पा भी ली तो वह तुम्हें एक दिन गिरा देगी। आचार्य भगवन् उमास्वामी महाराज कहते हैं- ''**मायातैर्यग्योनस्य**''। छल से प्राप्त की गई उपलब्धि माचायारी है। और मायाचारी

करने से तिर्यंच गति का बंध होता है। अतः हे भगवन्! मैं कभी किसी की उन्नति/विकास को देखकर ईर्ष्या न करूं।

जब हम क्षुल्लक अवस्था में थे तब हमें पढ़ाने एक पंडितजी आया करते थे वे कहते थे हमारे अंदर प्रतिस्पर्धा होनी चाहिए। मैंने कहा पंडितजी आप ये क्या उल्टी शिक्षा दे रहे हैं। वे बोले-जैसी ईर्ष्या में कहता हूं वैसी करो। त्याग, तपस्या, सेवा, भक्ति, पूजा, पढ़ाई व दूसरे का उपकार आदि कार्यों में प्रतिस्पर्धा होनी चाहिए। आपने दो गाथाएँ याद की हैं तो मैं चार करूँगा। मैं भी सेवा, भक्ति के कार्यों में अग्रणीय रहूंगा। इसके अतिरिक्त जो सांसारिक प्रयोजनों को लेकर ईर्ष्या की जाती है वह प्रयोजनभूत नहीं है। वह तो आत्म अवनति में ही हेतु बनेगी। ईर्ष्या शब्द अच्छे अर्थ में प्रयुक्त नहीं होता अपनी-अपनी उन्नति प्रगति करना चाहिए। ईर्ष्या नहीं अपितु उन्नति में स्वयं ऊँचे उठने के भाव होते हैं व ईर्ष्या में दूसरे को गिराने के भाव होते हैं। ईर्ष्यालु सोचता है मैं तो आगे बढ़ूं परंतु दूसरा आगे न बढ़े। जबकि ईर्ष्या भाव से रहित व्यक्ति सोचता है मैं भी आगे बढ़ूँ और अन्य लोग भी उन्नति करें। ईर्ष्या हमें उन्नति के शिखर से नीचे गिराती है आत्मोत्थान के द्वार बंद कर देती है। इसलिए कवि ने कहा **''देख दूसरों की बढ़ती को कभी न ईर्ष्या भाव रखूँ।''**

अतः बंधुओ! यदि आप वास्तविकता में अपना हित चाहते हैं तो ईर्ष्या रूप महाभंयकर रोग से सदा दूर रहें। तथा सरल भावों को जीवन में अपनायें तभी आपकी उन्नति/उत्थान संभव है।

इसी भावना के साथ....

''1008 विमलनाथ भगवान की जय''

दिनांक 14-07-2008

सोमवार, प्रातः 9.00 बजे — बोरीवली, मुंबई

व्यवहार कुशल, उपकारी बनूँ

भव्य बंधुओ!

भावना ही भव से पार लगा देती है और भावना ही भव में डुबा देती है। पार होना व डूबना जब दोनों ही भावना के आश्रय में है तो क्यों न ऐसी भावना भाये जो भव से तिरा दे/पार लगा दे इसी विचार को मन में रखते हुए कविवर जुगलकिशोरजी ने प्रशस्त भावनाओं को पद्य बद्ध कर दिया और नाम दिया ''**मेरी भावना**'' जो पढ़े उसी की भावना। ऐसी उस पावन पुनीत भावना को भाते हुए काव्य-4 में कवि कहते हैं-

रहे भावना ऐसी मेरी सरल सत्य व्यवहार करूं।
बने जहाँ तक इस जीवन में औरों का उपकार करूं।।

व्यक्ति को जीवन में व्यवहार कुशल होना चाहिए। व्यवहारिकता को समझना, जानना, पालना आर्य पुरुषों का गुण कहा गया है। उनके जीवन में निश्छल, निष्काम व सरलता से परिपूर्ण व्यवहारिकता होती है। देव-शास्त्र-गुरु के भक्तों के प्रति हमारा क्या कर्त्तव्य है जहाँ यह ध्यान रखा जाता है वह व्यावहारिकता है। साधर्मी को देखकर प्रसन्न, हर्षित हो जाना यह सज्जनता का प्रतीक है और यदि ऐसा न होकर विपरीत अवस्था हो तो दुर्जनता का प्रतीक है कहा भी जाता है-

ज्ञानी से ज्ञानी मिले होवे दो-दो बात।
मूरख से मूरख मिले मारे दो-दो लात।।

ज्ञानी जब ज्ञानी से मिलता है तो पूछता है-आईये, बैठिये, आपका स्वागत है। दरी, कुर्सी आदि पर बिठाता है, पानी, भोजन व व्यवस्था की कुशल क्षेम पूछता है। यह धर्मात्माओं की सहज प्रकृति है। वे साधर्मी से मिलकर बड़े प्रसन्न, खुश हो जाते हैं। ज्ञानी कैसे मिलते हैं तो कहते हैं-

चार मिले चौंसठ खिले, बीस रहे कर जोड़।
ज्ञानी से ज्ञानी मिले, हरषे साठ करोड़।।

आँखों का मिलन होता है उसमें प्रसन्नता हर्ष भरी होती है। ज्ञानी हर्ष की प्रेम, सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। दो आँखें हमारी दो सामने वाली को 4 हो गई। जब चार मिलते हैं तो 64 खिलते हैं यानि 32 हमारे दांत, 32 सामने वाले के। और दोनों हर्षित होते हैं तो 60 करोड़ रोम पुलकित होते हैं।

ज्ञानी जब खुशी के साथ मिलते हैं और कमल की तरह खिल जाते हैं। यदि गरीब से गरीब व्यक्ति भी धर्मात्मा है तो परस्पर में व्यवहारिकता रखता है। 20 कर जोड़। 10 हमारी अंगुलियाँ व 10 सामने वाले की हो गई 20। हाथ जोड़ कर जय-जिनेन्द्र करते हैं और हर्ष के कारण 30 करोड़ हमारे व 30 करोड़ सामने वाले के ऐसे 60 करोड़ रोम पुलकित हो जाते हैं। खुशी हो तो ऐसी हो कि रोम-रोम पुलकित हो जाए। ये ज्ञानी का मिलन है। सरल प्रकृति के लोग इसप्रकार मिलते हैं, दुर्जन, उग्र प्रकृति के लोग 36 के आंकड़े वाले होते हैं। वे मूर्ख की कोटि में आते हैं।

विश्व में सबसे बड़ा मूर्ख गधा माना जाता है। जो छोटे बच्चे पढ़ते-लिखते नहीं है उसे गधा कह दिया जाता है। जो जानता-समझता नहीं वह गधा कह दिया जाता है। जो जानता-समझता नहीं वह गधा है। गधे जब मिलते हैं तो लातें फटकारते हैं। दुर्जन व्यक्ति कुत्ते की तरह भौंकता है, लड़ता-झगड़ता है। हमारा व्यवहार सरल हो, रूखा, कठोर या कड़वा न हो। मीठा भी व्यवहार होता है, कड़वा भी होता है। कोई द्वार पर आये और कहें आइये, बैठिये, आप कहाँ से आये हैं तो वह खुश हो जायेगा और यदि आप जोर से बोलेंगे कि तू कहाँ से आया है और यहाँ क्यों बैठा है? यहाँ से वापस चला जा तो वह नाराज हो जायेगा।

एक बार की बात है कि एक लकड़हारा लकड़ी काटने गया उसे वृक्ष की खोह में दो तोते के बच्चे मिले। बच्चों में बड़ा आकर्षण रहता है। तोते के बच्चों को देखकर लकड़हारे ने उन्हें उठा लिया क्यों कि बच्चे सबको प्रिय होते हैं। उसने सोचा मैं गरीब हूँ, राजा का सम्मान नहीं कर पाता अत: ये तोता ही भेंट कर देता हूं। वह दोनों तोते राजा को भेंट कर देता है। राजा ने दोनों तोतों को देखा खुश होकर वह उन्हें सहलाने लगा, राजा ने सेवकों को आज्ञा दी कि इनकी परवरिश अच्छी तरह से हो। एक तोते को रनवास में रखा गया तथा दूसरे को घुड़साला में दोनों की समुचित सेवा व्यवस्था की गई जो तोते का बच्चा रनवास में था उसे द्वारपाल ने

सिखा दिया कि यदि कोई आये तो कहना-आईये-आईये आपका स्वागत है। तोते ने सीख लिया तथा जो तोता घुड़साल में था वहाँ घोड़े को पालने वाला घोड़ों से कहता था-चल हट-हट पीछे हट तो वह तोता भी वैसा ही सीख गया और उन्हें संस्कार भी वैसे ही पड़ गये। जब कुछ समय बाद राजा वहाँ आया तो पहले राजा रनवास में गये तोते को देखने। वहाँ प्रवेश करते ही तोते ने राजा का स्वागत किया वह बोला-आईये-आईये आपका स्वागत है। राजा बहुत प्रसन्न हुए फिर वे घुड़साल में गये जैसे ही राजा ने प्रवेश किया वहाँ रहने वाला तोता बोला-हट-हट पीछे हट। राजा को बहुत बुरा लगा उन्होंने सोचा कि मेरा ऐसा तिरस्कार तो कभी किसी मनुष्य ने भी नहीं किया। जितने बार भी बोला वह अपशब्द ही बोला इसलिए कहा भी गया है-

ऐसी वाणी बोलिए, मन का आपा खोय।
औरन को शीतल करे, आप ही शीतल होय।।

कभी-कभी परवशता में सुनना पड़ता है। कुछ-कुछ मालिक नौकरों को डाँटते रहते हैं, वे सुन लेते हैं पर बोल नहीं पाते। ऊपर से भले सुन ले पर मन से टूट जाते हैं। कैसा भी व्यक्ति हो-परंतु सदैव प्रिय वचन ही बोलना चाहिए। क्यों कि ''**प्रिय वचन है औषधी, कटुक वचन है तीर।**''

प्रिय वचन वशीकरण मंत्र की तरह होते हैं। व्यक्ति प्रियवचन बोलने वाले के पास बैठना चाहता है दो शब्द सुनने के लिए इंतजारी करता है। महाराज का प्रवचन सुनने लोग बैठे रहते हैं-अनुग्रह करते हैं-महाराज प्रवचन कीजिए। महाराज धर्मोपदेश देते हैं कहा जाता है-

''**प्रिय वाक्य प्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति मानवः।**''

धर्म के शब्द से सब जन संतुष्ट होते हैं। तो ऐसे धर्मोपदेश देने में संतजन तत्पर रहते हैं जो मीठा बोलता है उसे सब सुनना चाहते हैं। इसीलिए कहा जाता है-

कौआ काको देत है, कोयल काको लेत।
मीठी वाणी बोल के, जग आपा कर लेत।।

हम एक-दूसरे को आदर सम्मान देते हैं। हम उनके यहाँ जरूर-जायेंगे, प्रेम से बोलते हैं। घूमने फिरने वाले उसके घर पर बैठ जाते हैं। तथा जो कोई अपशब्द, गाली आदि अशिष्ट व्यवहार करते हैं भूलकर भी कोई उनके यहाँ नहीं जाता। व्यक्ति ऐसे लोगों से दूर भागते हैं। हमारा व्यवहार सरल होना चाहिए, सरलता से हमारा कुछ भी नहीं बिगड़ता। लोग कहते हैं-महाराज! ज्यादा सरलता

भी नहीं होनी चाहिए। मैंने कहा क्यों? तो वे कहते हैं-

अधिक सरलता सुख नहीं, देखो विपिन मंझार।
सीधे विश्वा कट गये, टेड़े खड़े हजार।।

जंगलों में जो सीधे वृक्ष होते हैं उन्हें शीघ्रता से काट लिया जाता है। जबकि टेड़े-मेढ़े वृक्ष हजारों लगे रहते हैं। मैंने कहा-टेड़ी-मेढ़ी जलाऊ लकड़ी होती है तथा सीधे वृक्ष भले वे कट जायें परंतु इमारती कहलाते हैं। उनका मूल्य अधिक होता है। उसे संभाल कर रखा जाता है। सरल व्यक्तियों पर विपत्ति आ सकती है, लोग परेशान कर सकते हैं। भगवान महावीर का पूर्व भव का जीव शेर की पर्याय में था। आकाश मार्ग से आते हुए चारण ऋद्धिधारी मुनियों ने संबोधन दिया-हे सिंहराज! तुम यह क्या कर रहे हो? तूं तो अहिंसा का अवतारी बनने वाला है, यह हिंसा तुझे शोभा नहीं देती, तू इस हिंसा का त्याग कर दे। सिंह ने प्रतिज्ञा ली, व्रत ग्रहण किये। महाराज तो चले गये। वह सिंह सूखे पत्ते व झरने का पानी पीकर रहने लगा। मृत्यु की बेला निकट थी वह न किसी को सताता, न काटता न ही मारता था। आज हम मनुष्य होकर व्रत ग्रहण नहीं कर पाते। वह पशु होकर भी पंचाणुव्रती बन गया। छोटे-छोटे बच्चे उसे परेशान करते थे वह दुःखी था एक बार पुनः वहाँ से वे मुनिराज निकले तो सिंह ने अपनी सारी व्यथा सुना दी। महाराज ने कहा-घबराओ नहीं सरलता में कष्ट आयेगा। सरलता में सहे कष्ट भी सुख देते हैं। सरलता है तो शूल भी फूल बन जाता है। सूली-सिंहासन व तलवार हार बन जाती है। ध्यान रखना किसी को मारना नहीं किंतु अपनी वीरता मत खो देना। सिंहवृत्ति का ध्यान रखना यह बात ठीक है अब कोई कंकड़-पत्थर मारता तो वह दहाड़ देता सब डर कर भाग जाते।

सरलता, सत्य में तकलीफ हो सकती है परंतु सत्यवादी पर देवता भी पिघल जाते हैं। पत्थर की शिला भी सत्य व सरल के सामने झुक जायेगी ऐसा शास्त्र बोलते हैं। यही भावना कवि ने भायी है कि-''**रहे भावना ऐसी मेरी सरल सत्य व्यवहार करूँ।**'' जहाँ सरलता है वहाँ प्रेम, वात्सल्य की वर्षा होती है। सरल व्यक्ति ही एक दूसरे का विनय, सम्मान, आदर कर सकते हैं और सरल सत्य प्रकृति के लोगों का ही कल्याण होता है। टेढ़े लोगों का नहीं और आगे कवि कहता है-''**बने जहाँ तक इस जीवन में औरों का उपकार करूँ।**'' अर्थात् जहाँ तक मुझसे बने इस देह के द्वारा मैं सदा दूसरों का उपकार करूँ। उपकार के भी दो भेद होते हैं 1-स्वोपकार, 2-परोपकार।

अपने आत्महित के मार्ग में प्रवृत्ति करना यह स्वोपकार है आत्मा के कल्याण के विषय में विचार करना कि मैं कैसे आत्मा का हित करने वाले कार्य करूं व्रतों का पालन करूं, संयम धारण करूं भगवान की भक्ति, अर्चना, पूजा दान करूं इत्यादि प्रकार के भाव स्व-उपकार के प्रतीक हैं तथा यदि कोई गरीब, दीन है दुःखी है तो उसकी सहायता करने, उसके कष्टों को दूर करने का हर संभव प्रयत्न करना यह परोपकार कहलाता है। अब प्रश्न यह उठता है कि वास्तविकता में दूसरों का उपकार कौन कर सकता है। तो वही कर सकता है जिसने अपना उपकार किया है जो अपने आत्मा के हित के विषय में सोचेगा वही दूसरों को भी आत्महित के मार्ग में प्रवृत्त करा सकेगा। आचार्यों ने कहा भी है "**उत्तमा स्वात्मचिंतास्यात्**" जिसे अपने आत्मा की चिंता है वही दूसरे का उपकार भी कर सकता है। माता-पिता बच्चों को पढ़ाते-लिखाते हैं, बड़ा कर देते हैं। यह उनका बच्चों पर उपकार है तथा बच्चे भी कर्त्तव्य निष्ठा, सेवा से माता पिता का उपकार करते हैं। उसी प्रकार गुरु शिष्यों को शिक्षा-दीक्षा देते हैं। रत्नत्रय धन प्रदान करते हैं यह गुरु का शिष्य पर उपकार है तथा शिष्य गुरु की आज्ञा अनुशासन का पालन करता है यह शिष्य के द्वारा किया गया उपकार है। इस प्रकार परस्पर में जीव एक दूसरे का उपकार करते हैं तत्त्वार्थ सूत्र में आचार्य उमास्वामी महाराज कहते हैं-

"**परस्परोपग्रहो जीवानाम्।**"

दूसरे के उपकार करने का विचार उसी के मन में आ सकता है जिसका हृदय करूणा से भीगा हो, उदार हो हित की भावना से आपूरित हो।

एक बार की बात है एक राजा जंगल में वन विहार के लिए गया, गर्मी के दिन थे प्यास की वजह से कण्ठ सूख रहा था। काफी खोज के बाद भी राजा को पानी नहीं मिला तब निराश होकर राजा ने अपने घोड़े को वहीं छोड़ दिया और स्वयं एक छायादार वटवृक्ष के नीचे पहुँच गया। इसी बीच उसने एक दृश्य देखा। देखते ही प्राण हरे भरे हो गये। पानी दिख गया परंतु वह पानी कहाँ से आ रहा है उसको कोई स्रोत नजर नहीं आ रहा था। पानी की एक धारा नीचे आ रही थी। राजा प्यासा था इसलिए कहाँ से आ रही है इस ओर ध्यान न देते हुए राजा ने पत्तों का दोना रखा और वहीं बैठकर उसके भरने की प्रतीक्षा करने लगा। पहला दोना जैसे ही भरने को हुआ राजा ने उसे धीरे से उठा लिया और जैसे ही पीने को हुआ। एक पक्षी (तोता) वहाँ आया और उसने दोना गिरा दिया। राजा को कुछ गुस्सा आया परंतु क्या करें। वह उस स्थान पर पुनः पत्तों का दोना लगा देता है। जब वह भर

जाता है तो उठाकर जैसे ही पीने का प्रयत्न करता है तोता पुनः दोने को गिरा देता है। चूंकि राजा को बहुत अधिक प्यास लग रही थी इसलिए उसे तोते पर बहुत गुस्सा आ जाता है परंतु वह उसे क्षुद्र प्राणी समझ कर छोड़ देता है। तीसरी बार पुनः दोना भरता है परंतु लगभग 4-5 बार जब पानी को तोता गिरा देता है तो राजा का क्रोध असह्य हो जाता है और गुस्से में वह एक चाबुक तोते को उठाकर मारता है तुरंत ही तोते के प्राण पखेरू उड़ जाते हैं। राजा के मन में कुछ शंका उत्पन्न होती है और वह पानी के स्रोत की खोज करता है। राजा ने ऊपर जाकर देखा तो पाया एक भयंकर अजगर सर्प जिसके मुख से विष की धारा निकल रही थी और वह पत्तों के ऊपर होते हुए एक धारा का रूप धारण किये थी, देखने में जलधारा ही लगती थी। यह दृश्य देखकर राजा सब समझ जाता है-तोता तो मेरा बहुत बड़ा उपकारी था। उसने तो मेरे प्राणों की रक्षा हेतु दोने को बार-बार गिराया परंतु अज्ञानतावश समझ नहीं पाया। राजा बहुत पश्चाताप करता है। तोते के मन में उपकार के भाव थे। वह सोचता है कि यह राजा है यदि यह विष पी लेगा तो इसकी मृत्यु हो जायेगी फिर पूरे राष्ट्र का क्या होगा। परोपकारी तोते ने एक व्यक्ति को नहीं पूरे राष्ट्र को बचा लिया।

आचार्य कहते हैं कि जब एक पक्षी अपने हृदय में दूसरे के हित की भावना रख सकता है तो क्या आप मनुष्य होकर परोपकार की भावना नहीं रख सकते। जो पर का उपकार करता है। वह कभी भी स्वयं दुःख को प्राप्त नहीं करता। जो औरों को सुख, शांति प्रदान करेगा उसके जीवन में दुःख कैसे प्रवेश पा सकेगा। सुख दान से सुख की प्राप्ति होती है। कहा भी गया है-

"कर भला होगा भला, नेकी का बदला नेक है।"

यदि आप दूसरों का भला करेंगे तो नियम से आपका भी भला ही होगा क्योंकि नेकी करने का फल नेक होता है। अच्छाई का फल अच्छा ही होता है।

इसीलिए आप इन भावनाओं को अपने जीवन में आत्मसात करें-"**बने जहाँ तक इस जीवन में औरों का उपकार करूँ।**"

इसी भावना के साथ....।

"1008 अनंतनाथ भगवान की जय"

दिनांक 15-07-2008

मंगलवार, प्रातः 9.00 बजे बोरीवली, मुंबई

सबमें मैत्री भाव धरूँ

भव्य बंधुओ!

"**मेरी-भावना**" के माध्यम से विद्वान कवि जुगलकिशोरजी जन मानस की भावना को अपने शब्दों में प्रकट करते हुए कहते हैं-

मैत्री भाव जगत में मेरा, सब जीवों से नित्य रहे।
दीन दुःखी जीवों पर मेरे, उर से करूणा स्रोत बहे।।
दुर्जन क्रूर-कुमार्गरतों पर, क्षोभ नहीं मुझको आवे।
साम्य भाव रक्खूं मैं उन पर, ऐसी परिणति हो जावे।।5।।

कविवर काव्य 5 की प्रथम पंक्ति में कह रहे हैं-"**मैत्री भाव जगत में मेरा, सब जीवों से नित्य रहे।**" मैत्री का अर्थ-मित्रता यानि बैर का अभाव/ प्रतिक्रमण में कहा जाता है-

खम्मामि सव्व जीवाणं सव्वे जीवा खमंतु मे।
मेत्ती मे सव्व भूदेसु वैरं मज्झं ण केणवि।।

अर्थात् संसार के सभी प्राणियों से मेरा मैत्री भाव है, सभी जीव मुझे क्षमा करें, मैं भी सबको क्षमा प्रदान करता हूँ मेरा जगत में किसी से भी कोई बैर भाव नहीं है।

अब प्राणी मात्र से मित्रता कैसे हो? आम जनता की धारणा है कि किसी से खाने-पीने की पूछना, मुस्कुरा देना, बोल लेना ये मित्रता है परंतु यह परिभाषा अधूरी है। यहाँ तो आचार्य भगवन् प्राणी मात्र अर्थात् एकेंद्रिय से लेकर पंचेद्रिय तक के सभी प्राणियों से मित्रता की बात कह रहे हैं। अब प्रश्न है कि एकेंद्रिय तो बोलता नहीं है तथा दो इंद्रिय के अनुभय वचन योग होता है। अब समझ में नहीं आता कि उनसे मित्रता हो तो कैसे हो, तो आचार्य भगवन् कहते हैं कि शत्रु भाव का अभाव ही मित्रता है। उनके प्रति द्वेष, बैर-भाव न हो, अहित के भाव न हो बस

यही मैत्री है। 1 इंद्रिय से 5 इंद्रिय तक के सब जीवों के प्रति हमारी मित्रता है। शास्त्रों में मैत्री का दूसरा अर्थ किया कि प्राणी के प्रति हित व कल्याण के भाव होना मैत्री है। जिसका हृदय विशाल होता है वह दूसरों के प्रति अच्छा सोच रखता है। कोई भी व्यक्ति संसार सागर में न डूबे, उन्हें दुःख/पीड़ा न हो, सब के कष्ट/पीड़ायें दूर हो। यदि हम किसी के घाव पर मरहम न लगा सके तो कोई बात नहीं कम से कम उसके घाव पर नमक तो न छिड़के इसका नाम मैत्री भाव है। मैत्री भाव जिसके अंदर है वह दूसरे के दुःख को दूर करने का प्रयत्न करता है और यदि न कर सके तो कम से कम ऐसा कोई कार्य नहीं करता जिससे दूसरे का दुःख बढ़ जाए। मैत्री भाव विवेकी के अंदर होता है अविवेकी के अंदर नहीं।

मित्रता भी दो प्रकार की है-(1) स्वार्थवशात् की गई मित्रता (2) निःस्वार्थ भाव से की गई मित्रता। स्वार्थी व्यक्ति कभी सच्चा मित्र नहीं हो सकता। स्वार्थी व्यक्ति कभी गड्ढे में पटक सकता है। श्रेणिक चरित्र में बताया है उपश्रेणिक को एक घोड़े ने गड्ढे में पटक दिया। मित्र हो तो ऐसा हो जो सन्मार्ग पर ले जाए मिथ्यामार्ग पर ले जाने वाला सच्चा मित्र नहीं हो सकता जो उल्टी शिक्षा दे वह सच्चा मित्र नहीं हो सकता। क्योंकि ठगों ने उपश्रेणिक को ऐसे घोड़े पर बिठाया जो अड़ियल था। बिना मित्र के रहना अच्छा है परंतु कुमित्र के पास नहीं। कुमित्र धोखेदायक होता है। एक बार दो मित्र वियावन जंगल में पहुँचे, उस जंगल को पार कर उन्हें अपने गांव में पहुँचना था। वियावान जंगल में दोनों मित्र चले जा रहे थे कि अचानक जंगली जानवरों की आवाजें सुनाई दी, दोनों मित्र घबराये, आवाज की ध्वनि बढ़ती जा रही थी, उन दोनों मित्रों में से एक तो वृक्ष पर चढ़ने का अभ्यासी था और दूसरे मित्र को वृक्ष आदि पर चढ़ना नहीं आता था। पहले मित्र ने सोचा मृत्यु तो निकट ही नजर आ रही है वह अपने साथी मित्र की कुछ परवाह न करते हुए स्वयं वृक्ष पर शीघ्रता से चढ़ गया था परंतु जिसका परमात्मा रक्षक है उसका कौन-क्या बिगाड़ सकता है कहा भी जाता है-"**जाको राखे साईया, मार सके न कोय।**" दूसरे मित्र को वृक्ष पर चढ़ना तो नहीं आता था परंतु उसके गुरु ने उसे प्राणायाम का अभ्यास अवश्य कराया था। उसने भी युक्ति निकाली सामने से भालू आ रहा था उसे गुरुजी का सिखाया पाठ याद था कि भालू मृतक व्यक्ति का शिकार नहीं करता। वह वही वृक्ष के नीचे लेट गया और प्राणायाम प्रारंभ कर दिया। भालू जैसे ही पास आया उसने उसके पूरे शरीर को सूंघा तथा मृतक समझकर वापस चला गया। वृक्ष पर चढ़ा पहला मित्र यह दृश्य देख रहा

था-जैसे ही भालू वापस गया दूसरा मित्र भी वृक्ष से नीचे आ गया उसने सोचा-भालू मेरे मित्र के पास आया तो था कान के समीप भी गया था जरूर मेरे मित्र को कुछ बोलकर गया होगा। वह वृक्ष से उतर कर पूछता है अरे मित्र भालू ने तुम्हें कुछ भी हानि नहीं पहुँचायी अपितु तुम्हारे कान में कुछ बोलकर गया है दूसरा मित्र अपने प्रथम मित्र के कपट व्यवहार से क्षुभित था परंतु फिर भी धैर्य धारण करते हुए बोला-हाँ मित्र! भालू मेरे पास तो आया था और मेरे कान मे कुछ कह कर भी गया। पहले मित्र की जिज्ञासा और बढ़ गई उसने पुन: पूछा बताओ न आखिर वह क्या बोलकर गया दूसरे मित्र ने कहा-भालू मेरे कान में बोला धोखेबाज मित्रों से सदा सावधान रहना।

पहले मित्र को बात समझ में आ गई।

बंधुओं! कहने का तात्पर्य यह है कि ऐसे छली व कपटी मित्रों से मित्र का न होना श्रेष्ठ है। क्योंकि ऐसे खोटे मित्र न जाने कब किस मुसीबत में डाल दे। किसी दार्शनिक ने कहा भी है।

True Friends are those who alwayes iared & know my fault & alwayes shared the good & bad & all the grey & help my hand & shouled the way.

सच्चे मित्र वे होते हैं जो हमेशा हमारी सुरक्षा करें, हमें हमारी गल्तियाँ बताये तथा अच्छे व बुरे सभी पलों को हमारे साथ बाँट तथा हमारा हाथ थाम कर सही रास्ता दिखायें।

सच्चा मित्र तो वही है जिससे हम अपने मन की सारी बातें कह सके जो सुख-दु:ख में हमारे काम आये। विपत्ति आने पर एक सच्चा मित्र धैर्य व साहस दिलाता है पद्म पुराण में पवनंजय के विषय में उल्लेख मिलता है कि उनका भी एक प्रहसित नाम का मित्र था। जो दिन-रात छाया की तरह उनके साथ रहता था। जब पवनंजय को मालूम चलता है कि उनका विवाह अंजना के साथ होना सुनिश्चित हुआ है। तब वे उसे देखने इतने आतुरित हो जाते हैं कि मुझे तो अभी अंजना से मिलना है तब रात्रि के समय में प्रहसित की सहायता से ही वे अंजना के महल तक पहुँचते हैं तथा जब अंजना व उसकी सखी के पारस्परिक वार्तालाप को सुनते हैं तो क्षुब्ध हो जाते हैं यह अंजना तो सखी द्वारा मेरी अवहेलना किये जाने पर तथा अन्य की प्रशंसा किये जाने पर भी मौन है। अत: इसके लिए मैं नहीं अन्य कोई इष्ट है इत्यादि विपरीत बुद्धि जब पवनंजय की उत्पन्न होती है तो पहले तो विवाह ही नहीं

करना चाहते तब प्रहसित उन्हें बहुत समझाते हैं सन्मार्ग दिखाते है तब कहीं वे विवाह के लिए स्वीकृति देते हैं परंतु अंजना से उपेक्षित व्यवहार रखते हैं।

इधर कर्म विपाक पूर्ण होने पर पुण्योदय से पपीहा के विरह को देखकर चकवी के वियोग में चकवे की स्थिति को देखकर उन्हें अपनी वल्लभा अंजना का स्मरण हो आता है। ओहो! मैंने तो २२ वर्ष से जिसका मुख तक नहीं देखा उसके दु:ख का क्या कोई पार होगा। ऐसा विचार करते ही वे शोकाकुलित हो विह्वल हो उठते हैं अब ऐसी अवस्था में यदि युद्ध करने जाता हूँ तो पराजय निश्चित है अत: वे पहले अंजना के पास जाना उचित समझते हैं उनकी व्याकुलता अवस्था को देखकर प्रहसित उन्हें धैर्य बधाते हैं हे मित्र पवनंजय! आप तनिक भी चिंता न करें, व्याकुलता का परित्याग करें मैं रात्रि के समय शीघ्र ही आपको अंजना से मिला दूंगा। यदि दिन के समय जाते तो लोग दुगंछा होती। इसलिए रात्रि में जाने का विचार बनाते हैं प्रहसित के धैर्य पूर्ण वचन उनके हृदय पर हुए घाव पर मरहम का कार्य कर रहे थे।

बंधुओ! सच्चा मित्र तो वही है जो विपत्ति के आने पर धैर्य दिलाये, साहस बाँधे। इधर जब अंजना का कथानक पढ़ते हैं तो पूर्वोपार्जित पाप कर्म का फल भोगती हुई अंजना को जब सास-ससुर कलंक लगाकर घर से निकाल देते हैं तब वह उन्हें छोड़ माता-पिता की शरण में पहुँचती है तो वहाँ पर माता-पिता की कुल कलंकी कह कर उसे घर से निकाल देते हैं तथा भीषण भयानक जंगल में छुड़वा देते हैं। घनघोर जंगल में अंजना के साथ न तो माता-पिता थे न कुटुम्बी जन न ही अन्य कोई एक मात्र एक सखी थी। जो बचपन से हर उसके साथ रहती थी। आंखों में अश्रुओं की धारा बहाती हुई, गर्भ के भार से चलने में असमर्थ अंजना एक-एक कदम भी दु:ख के साथ आगे बढ़ रही थी।

हे सखि! अब मुझसे नहीं चला जाता। पापोदय के भार को कब तक सहन करूं इस प्रकार अंजना को अधीर देखकर उसकी सखि उसको हाथ का सहारा देकर आगे बढ़ाती है और कहती है-हे अंजने! तुम दु:खी मत हो धैर्य? धारण करो, लाओ मैं तुम्हारा हाथ पकड़ती हूँ। वह हाथ पकड़कर धीरे-धीरे उसे आगे बढ़ाती है और कहती है धीरज रखो, सब दिन एक जैसे नहीं होते, आज पूर्वोपार्जित पाप कर्म के उदय से जो तुम्हारी दशा हुई है वह शीघ्र ही सुधरेगी, कर्मों के बादल छटेंगे और सुख का सूर्योदय अवश्य होगा। ऐसे साहस व संबल पूर्ण वचन सुन अंजना आंसू पोंछती और पुन: कुछ आगे बढ़ती।

विपत्ति के समय पर सच्चा मित्र साहस दिखाता है, सन्मार्ग दिखाता है। सुख-दु:ख में सच्चा साथी बन जाता है।

जब सुदामा व श्रीकृष्ण की मित्रता देखते हैं तो लगता है जहाँ सच्ची मित्रता होती है धन संपदा की ऊँचाई व नीचापन बाधक नहीं होता। जब प्रथम बार सुदामा, श्रीकृष्ण के पास पहुँचते हैं तब श्रीकृष्ण जब द्वारपाल के मुख से सुदामा के आने का समाचार सुनते हैं तो गद्गद् हो जाते हैं उन्हें सम्मान पूर्वक अंदर लाते हैं तथा स्वयं अपने हाथों से उनका पाद प्रच्छालन करते हैं पैरों के काँटे निकालते हैं जबकि श्रीकृष्ण कितने बड़े राजा थे व सुदामा एक अत्यंत दरिद्र व्यक्ति था। फटे पुराने वस्त्र पहने था। परंतु सच्चे मित्र को तो न फटे पुराने कपड़े दिख रहे थे न दयनीय दशा उन्हें तो मात्र अपना मित्र ही दिख रहा था। जहाँ सच्ची मित्रता हो वहाँ धन पैसा भी रूकावट नहीं बन पाता।

बंधुओं! मित्रता की परिभाषा बहुत विशद है। यह तो सामान्य लौकिक मित्रता है। संतजन प्राणी मात्र से मित्रता रखते हैं इसलिए सबसे बैर भाव त्याग कर प्राणी मात्र की रक्षा में संलग्न हो जाते हैं। परंतु जब हम पारमार्थिक दृष्टि से मित्र की परिभाषा देखते हैं तो आचार्य भगवन् कहते हैं-

''धर्म: नास्त्यपर: सुहृद् भव भृताम्।''

अर्थात् इस प्राणी का धर्म के समान कोई दूसरा श्रेष्ठ मित्र नहीं है। जहाँ सभी संसार के मित्र भी साथ छोड़ देते हैं वहाँ धर्म रूपी सच्चा मित्र सुरक्षा कवच बनकर हमारी सहायता में तत्पर खड़ा हो जाता है। धर्मात्मा व्यक्ति की तो सारी दुनिया भी मित्र हो जाती है धर्मात्मा के चरणों में तो स्वर्ग के देवता भी अपना मस्तक झुकाते हैं। अत: संसार में धर्म रूपी मित्र का साथ विवेकीजनों को कदापि नहीं छोड़ना चाहिए। वही सच्चा मित्र एक दिन हमें मुक्ति अर्थात् निर्वाण की यात्रा करा देता है।

अत: आप सभी उसी मित्र से मित्रता कर अपने जीवन को सुख शांतिमय बनायें।

इसी भावना के साथ....।

''1008 धर्मनाथ भगवान की जय''

दिनांक 16-07-2008

बुधवार, प्रात: 9.00 बजे — बोरीवली, मुंबई

हृदय में करूणा नीर भरूँ

भव्य मनीषियो!

कल कवि जुगल किशोर जी मित्रता की बात कह रहे थे कि प्राणी मात्र से मेरी मित्रता हो, किसी भी प्राणी से बैर विरोध न हो, जिसका मन कोमल होता है उसी के हृदय में मैत्री, करूणा, दया जैसे गुण स्थान पाते हैं। अगली पंक्ति में वे कहते हैं-

"दीन दुःखी जीवों पर मेरे, उर से करूणा स्रोत बहे।"

बहुत ही सुंदर बात कवि कह रहे हैं-करूणा का जन्म उर से होता है और दया का जन्म बाहर से। करूणा का जन्म अंतरात्मा से होता है। दया-सम्यग्दृष्टि व मिथ्यादृष्टि दोनों में हो सकती है। परंतु करूणा सम्यग्दृष्टि के ही अंदर पायी जाती है। सम्यक्त्व के 8 गुणों में करूणा/अनुकंपा नाम का गुण कहा है। जब हृदय में दया होती है तो हृदय कोमल हो जाता है। जिस प्रकार किसान कठोर जमीन में बीज बोये तो वह अंकुरित नहीं होता इसलिए वह जमीन को जोत-जोत कर पहले मुलायम बना लेते है। तभी वह उर्वरा शक्ति संपन्न होती है। यदि मुलायमपना है तो मिट्टी को सांचे में ढाल सकते हैं चाहे जैसा आकार भी दे सकते हैं। मुलायमपाना यानि नम्रता है तो सब कुछ संभव है। जिसके हृदय में नम्रता नहीं होती, हृदय कठोर होता है तो ऐसे हृदय में धर्म का बीज बोना कठिन है। दया व करूणा की बात तो हो सकती है। परंतु दया व करूणा का जन्म कठारे हृदय में नहीं हो सकता दया का बाह्य दिखावा तो हो सकता है परंतु वास्तविक दया नहीं। ऐसे भी लोग होते हैं जिनके हृदय में अनुकंपा/करूणा नहीं है तो वे दया का पालन अच्छी तरह से नहीं कर पाते। यदि घर में चींटी/कीड़े हो गये तो व्यक्ति घर में फुल-झाड़ू तो रखते हैं। लेकिन विवेक पूर्ण करूणा नहीं है तो फुल झाड़ू से ऐसा झाड़ते हैं कि वे चींटी पानी,

अग्नि या रास्ते पर गिरती है जहाँ से गाड़ियाँ आती जाती है तो वे जीव मर जाते है कहने का तात्पर्य यह है कि दया तो की परंतु सत्य तो यह है कि वास्तविक दया नहीं हो पायी। प्राणियों की रक्षा करनी चाही परंतु उल्टा उनके प्राण और अधिक संकट में पड़ गये। न झाड़ते तो २-४ बच जाती परंतु अनुचित स्थान पर उन्हें छोड़ देने से तो किसी के भी जीवित रहने की आशा नहीं रही।

इसीलिए कहा जाता है कि अंतरर्मन से दया का जन्म होना चाहिए। जब दया अंदर से नहीं होती तो समस्या खड़ी हो जाती है। बहुत से जैन लोग धर्म का पालन तो करते हैं, पानी तो छानते हैं लेकिन ऐसा छानते हैं कि सारे जीव उसी छन्ने में सूख कर मर जाते हैं। धर्म कहता है-कि उत्तम तरीका तो यह है कि जिस स्रोत से पानी लाये हैं उसी स्रोत में विलछानी/जीवानी को डालना चाहिए। आज के समय में बड़ा कठिन है एक सज्जन बोले महाराज! क्या करें पानी बहुत दूर से आता है जहाँ तक हम पहुँच नहीं सकते, ठीक है तो कोई बात नहीं वहाँ नहीं जा सकते तो कम से कम हौज या टंकी के अंदर तो डाल ही सकते हैं। एकत्रित करते जाइए अथवा जहाँ पानी भरा है वहाँ डाल दो। ऐसा स्थान बना लो जहाँ जीवानी डाल सकें। एक फ्लेट में यदि जैनियों के 4-6 मकान हो तो एक साथ एकत्रित कर सकते हैं। यह भी न हो सकें तो आचार्य श्री कल्पश्रुत सागर महाराज कहते थे कि कम से कम ऐसे ही तो मत निचोड़ो, जहाँ पानी भरा हो, वहाँ डाल दो यद्यपि तो भी जीवों की रक्षा होना बहुत कठिन है। क्योंकि जल के जीव शक्ति संपन्न नहीं है जरा सा भी क्षारीय पानी लगा तो मर जाते हैं। अंतर विचार से सोचना चाहिए कि उनकी रक्षा कैसे करें। पानी छानकर प्रयोग करने का ध्यान रखें। बहुत से लोक तर्क करते हैं, व्यंग्य कसते हैं। निश्चित है हमारी क्रियायें हमें हंसी का पात्र बना देती हैं-वे कहते हैं-तुम पानी तो छानते हो परंतु चूहे के बिल में गोली डाल देते हो जिससे वे मर जाते हैं। बताओ तुम्हारा पानी छानना कहाँ तक सार्थक है। पानी का Use कम से कम करो। व्यर्थ में पानी मत ढोलो। कोई प्रयोजन नहीं फिर भी नल चालू ही छोड़ दिया पानी बहकर गटर में जाता है और न जाने कितने जीवों की विराधना होती है। Government कहती है कि पानी का सीमित उपयोग करो परंतु धर्म तो पहले से ही कह रहा था पंचेंद्रिय जीवों की मक्खी, मच्छर, चूहे आदि रक्षा करें। यह धर्म की परिभाषा है। कुछ लोग चूहों को Control करने के लिए बिल्ली को पालते हैं सोचो आप कैसे करूणाशील हो। चूहे के लिए बिल्ली रख रहे हो। हिंसक

जानवरों का पालन मत करो। गाय आदि कथंचित् रख भी सकते हैं परंतु बिल्ली, कुत्ता को तो नहीं पालना चाहिए आज तो कुत्ते को पालने की फैशन हो गई है। लेकिन सोचिए कुत्ता भी हिंसक प्राणी है वह चिड़िया व कबूतरां पर झपटता है, चूहा, बिल्ली को भी सताता है। ऐसे जानवरों को न पाले तो हमारी शान घट जाती हो सो ऐसा नहीं है। परंतु हिंसक प्राणियों को पालने से तत्‌जन्य हिंसा का पाप लगता है। जानवर पाप कर रहा है परंतु उसे आश्रय आप ने दिया इसलिए उसके पाप में आपका पूरा सहभाग माना जाएगा।

कुछ लोग तर्क करते हैं कि हम तो कभी किसी जीव को नहीं मारते अपितु बचाते हैं लेकिन उस हिंसक प्राणी को आपने पाला है तो दोष भी आपको ही लगेगा। कोई दूसरा तर्क देते हैं-यदि हम उसे नहीं भी पालेंगे तो भी वह हिंसा तो करेगा ही। यह ठीक हैं परंतु उस हिंसा में भागीदार आप नहीं बनेंगे। कभी-कभी देखा जाता है ग्रामीण इलाकों में या घरों में से जब सर्प निकलता है तो लोगों की अवधारणा रहती है कि सर्प को मार दो, परंतु मैं कहता हूँ। सर्प की तो पाप योनी ही है वह निरंतर हिंसा करता है इसलिए पापी ही है परंतु पापी को मारकर तुम क्या कहलाओगे? पापी ही नहीं महापापी हो जाओगे इसलिए भैया! धर्म कहता है कि हिंसक से भी हिंसक प्राणी हो तो भी उसे सताना या मारना नहीं चाहिए। भगवान पार्श्वनाथ ने पापी की ही तो रक्षा की थी। सर्प को अग्नि में मरने नहीं दिया ऐसा नहीं सोचा मर जाने दो। पापी की भी रक्षा होनी चाहिए।

महात्मा गांधी जी कहते थे-''**पाप से घृणा करो पापी से नहीं।**'' हो सकता है कि पापी को सत्संगति मिल जाये और वह सुधर जाये, पवित्र हो जाए परंतु पाप कभी भी पवित्र नहीं होता। इसलिए पापों का परित्याग कर देना चाहिए। शास्त्रों में उल्लेख मिलता है विभिन्न पापिष्ठ प्राणियों की महापुरुषों ने रक्षा की व उन पापिष्ठ प्राणियों ने हिंसाये छोड़ दी। यह कब हो जायेगा जबकि हृदय में करूणा हो, हृदय पसीजना चाहिए हृदय कोमल होना चाहिए तथा भद्र परिणाम होना चाहिए। हम किसी प्राणी की रक्षा कर सकें या न कर सकें पर भाव यही रहते हैं कि जीव की हिंसा न हो। यदि रात्रि में लाईट जलाने पर कीड़े खाने के उद्देश्य से छिपकली आ जाए तो पढ़ाई से अधिक महत्वशाली जीव रक्षा है। दिन में पढ़ लेना चाहिए क्योंकि आप तो करूणा की मूर्ति हैं, यदि हृदय में कोमलता है तो दूसरे के दर्द को देखकर दयालु दौड़ा करते हैं, दयार्द्र हो जाते हैं। जब हृदय में धर्म उत्पन्न होता है

तो करूणा उत्पन्न होती है। दूसरों के आँसू देख हमारी भी आंखे भींग जाती है।

पंडित पन्नालाल श्री साहित्याकार के विषय में एक बार ब्रह्मचारी जी सुना रहे थे कि जब पंडित जी पद्मपुराण का अनुवाद कर रहे थे तब शास्त्र में अंजना की दुःखद घटना का चित्रण सामने आया जिसे पढ़कर पंडित जी की कलम कुछ देर के लिए रूक गई व आंखे सजल हो गई। ब्रह्मचारी जी ने यह दृश्य देख लिया पूछा-पंडित जी क्या बात हो गई आपकी आंखों में आंसू। पंडित जी बोले-नहीं, बस अंजना की दुःख भरी कहानी पढ़ आँखें भर आई।

बंधुओं! यह होती है अंतरंग की करूणा जो हृदय में उत्पन्न होती है और अपना चिन्ह नेत्रों के माध्यम से प्रगट कर देती है। एक बार की बात है। हम लोगों का चातुर्मास श्रेयांसगिरि में चल रहा था। मैं रक्षा बंधन की कहानी पढ़ रहा था, कहानी पढ़ते-पढ़ते हमारा हृदय भर आया, 700 मुनिराजों पर हुए उपसर्ग की दुःखद घटना को पढ़कर मन द्रवित हो गया और आंखे भर आयी और पुस्तक दूसरों को देनी पड़ी।

बंधुओं! जिसका हृदय दया से भीगा हुआ है करूणा से भरा है वह शीघ्र ही द्रवित हो जाता है।

पत्थर की शिला पर बीज बोने पर फसल नहीं हो सकती उसी प्रकार जिसका हृदय पत्थर की तरह कठोर है उसमें धर्म, दया, करूणा का अंकुर नहीं फुटता।

हम खूब पूजा करते हैं, उपवास करते हैं, सेवा करते हैं, माला फेरते हैं लेकिन इसके पहले एक पॉईन्ट महत्वशाली है कि आपका हृदय कितना कोमल है। सारे जीवन की तपस्या का फल हृदय की कोमलता पर निर्भर है निर्मल हृदय से किया व्रत, जप, तप, अनुष्ठान उत्तम फलदायी होते हैं और निर्मलता वहाँ आती है जहाँ कोमलता हो। इतना महावीर स्वामी का जगत प्रसिद्ध सूत्र है-''**जीयो और जीने दो।**'' इतना महान सूत्र है यदि हम इसके अर्थ में उतरे तो लगेगा इसके बिना दया, धर्म, करूणा, अहिंसा उत्पन्न नहीं हो सकती। सदैव हृदय को निर्मल करो। जिसका हृदय निर्मल, कोमल है वह दूसरों को पीड़ा देना तो दूर रहा, दूसरों को पीड़ित देख भी नहीं सकता। भगवान पार्श्वनाथ दया की मूर्ति थे। राम, पार्श्वनाथ जैसे महापुरुषों ने दया धर्म के मात्र नारे नहीं लगाये, प्रदर्शन नहीं किया अपितु आचरण में ढाल कर दिखा दिया। करूणा का दर्शन तो चर्या से हो जाता है। गौतम

बुद्ध के पास एक बार घायल हंस गिरा, दयार्द्र होकर बुद्ध ने उसे हाथों में उठा लिया बाण निकाल कर घाव पर मरहम पट्टी की। जो दुःख दर्द में मरहम पट्टी करें वे दयालु है। एक बार आचार्य महावीर कीर्ति जी महाराज आहार के लिए जा रहे थे जाते-जाते देखा रास्ते में एक मकान के पास भीड़ लगी थी, गली छोटी थी। महाराज को देखकर लोग अलग हुए वहाँ एक बिल्ली लोहे के द्वार में फंस गई थी वह न तो अंदर हो पा रही थी न बाहर। महावीर कीर्ति महाराज दयालु थे तुरंत उन्होंने मुद्रा छोड़ दी तथा मंत्र पढ़कर बिल्ली को पिच्छी लगा दी और इतने देर से फंसी बिल्ली क्षण भर में निकल गई। संत दिन में एक बार ही आहार के लिए उठते हैं। महाराज ने उपवास करना श्रेष्ठ समझा परंतु मूक प्राणी की रक्षा कर ली। किसी ने पूछा-महाराज। आपने उपवास क्यों किया? महाराज बोले! किसी के प्राणों से बढ़कर मेरा आहार नहीं है। दूसरे प्राणी के प्राणों की रक्षा करना यह प्रथम कर्त्तव्य है।

अमेरिका के राष्ट्रपति अब्राहिम लिंकन हुए है वे बड़े दयालु प्रकृति के थे। एक बार वे अपने बंगले पर जा रहे थे रास्ते में उन्होंने देखा कि एक सुअर गटर में फंसा हुआ है। दृश्य देखते ही उन्होंने अपनी गाड़ी रोकी और तड़पते प्राणी को अपने हाथों से निकाला और निकाल कर छोड़ दिया। उनके ड्राइवर ने कहा-सर यह कार्य तो मैं भी कर सकता था। उन्होंने कहा-''**जो करे सो पावे**'' कुछ समय ऐसे होते हैं जब आज्ञा नहीं दी जाती अपितु स्वयं करके दिखाया जाता है। जब तक मैं तुमसे कहता तब तक वह खत्म हो जाता। जब वे अपने बंगले पर पहुँचे तो पत्नि ने कहा कि आपके कपड़े इतने गंदे कैसे हैं। एक सुअर गटर में गिर गया था यदि मैं उसे नहीं निकालता तो वह मर जाता। कपड़े की कीमत उसके प्राणों से अधिक नहीं थी। मेरे कपड़े गंदे हो गये तो पुनः धुल सकते हैं कपड़े (change) भी कर सकते है। लेकिन यदि उसकी जान चली जाती तो फिर वापस नहीं आती। शास्त्रों में अथवा अन्यत्र जब हम ऐसे उदाहरण पढ़ते हैं तो लगता है जटाजूट धारी लोगों से ऐसे दयालु प्रकृति के लोग सच्चे धर्मात्मा हैं। जिनका हृदय दया से भींगता है।

एक बार जीवन्धर कुमार भोजन करने बैठे तभी वहाँ एक भिखारी आया बोला मैं ३ दिन से भूखा हूँ, कुछ खाने को दे दो। जीवन्धर कुमार ने उसे अपनी खीर दे दी उन्होंने सोचा मैं तो १ दिन से ही भूखा हूँ।

धर्मस्थल के वीरेन्द्र हेंगड़े व सुरेन्द्र हेंगड़े जी जो वहाँ के राजा तुल्य हैं

ऐसा भी कह दिया तो कम है अटूट संपत्ति के स्वामी हैं एक बार वे हमारे दर्शनार्थ आये थे वे भी दयालु प्रकृति के थे माँ रत्न अम्मा थी। एक बार रत्नवर्मा के घर कोई तीन साधुसंत आये थे उन्होंने भिक्षा मांगी। हम बहुत दिन से भूखे हैं अत: हमें कुछ खाने को दो। रत्नवर्मा दयालु प्रकृति के थे वे बोले आप लोग आराम से यहाँ बैठिये व खा पीकर के जाइए। वे बैठ गये, उन्होंने आनंद के साथ भोजन किया। भोजन करने के उपरांत वे खुश हो गये और बोले-आपका भंडार सदा भरा रहेगा कोई भी कभी भी तुम्हारे द्वार से भूखा नहीं जायेगा। रात्रि में स्वप्न आया वे तीनों साधु घर पर आये हैं और बोल रहे हैं मै। आपके यहाँ रहना चाहता हूँ। अत: ठहरने हेतु जगह दे दो। रत्नवर्मा जी ने कहा-आप यहाँ ठहर जाईये मुझे कुछ भी परेशानी नहीं है। वे बोले-हम साधु हैं तथा जहाँ गृहस्थ रहते हैं वहाँ हम नहीं रूकते तो उन्होंने कहा-मैं रूकने के लिए आपको दूसरा मकान दे दूंगा। वे बोले-नहीं, हम तो आपके ही मकान में रहेंगे। चर्चा चल रही थी। रत्नवर्मा जी ने कहा-ठीक है, आप यहाँ रूकिये मैं दूसरे फ्लेट में चला जाता हूँ। नींद खुली तो देखा तीन साधु है सिराहने में वे सोने की त्रिशूल, बर्छी रखे हैं। वे देखकर दंग रह गये उन्होंने तुरंत रत्नअम्मा को सारी कहानी सुना दी। उनकी पत्नि भी उदारमना थी उन्होंने कहा-जब आपने मकान दे ही दिया है तो फिर चलो यहाँ से और वे दूसरे मकान में चले गये ओर दिन दूनी रात चौगुनी समृद्धि उस दिन से होती चली गई और वे इतने समृद्धशाली हो गये कि आज भी प्रतिदिन 10,000 लोग भोजन करते हैं।

बंधुओ! दया का परिणाम, करूणा का परिणाम गुणित क्रम से फलता है।

अत: हमें निरंतर दया व करूणा रूप परिणाम बनाना चाहिए। यदि हम किसी की पीड़ा को दूर न कर सके तो कम से कम बढ़ाये न। यदि सिकी के घाव पर मरहम न लगा सके तो कोई बात नहीं घाव पर नमक तो न छिड़के किसी दु:खी प्राणी के दु:ख को दूर न कर सके तो कम से कम उसके दु:ख को बढ़ाए न। यही सच्चे अर्थों में हमारी दया, करूणा होगी और यही मानवता है। सहानुभूति ही रख लें दु:खी के प्रति तो हमारा यह लाइन पढ़ना सार्थक हो जाएगा।

इसी भावना के साथ....।

"1008 शांतिनाथ भगवान की जय"

दिनांक 17-07-2008

गुरुवार, प्रात: 9.00 बजे — बोरीवली, मुंबई

क्रोध नहीं साम्य भाव धरूँ

भव्य बंधुओ!

कल हमने काव्य 5 की दूसरी पंक्ति के माध्यम से दया, करूणा को देखा था कि बिना करूणा के धर्म के पथ में प्रवेश संभव नहीं अगली पंक्ति के माध्यम से कवि जुगलकिशोर जी कह रहे हैं-

"दुर्जन क्रूर कुमार्गरतों पर, क्षोभ नहीं मुझको आवे।
साम्य भाव रक्खूं मैं उन पर, ऐसी परिणति हो जावे।।"

'क्षोभ' अर्थात् क्रोध की उत्पत्ति देखी जाती है। जो दुर्जन प्रकृति के लोग होते हैं उनका कितना भी उपकार किया जाए परंतु वे उपकार का बदला प्राय: अपकार से ही चुकाते हैं तथा ऐसे लोगों को कितना भी उपदेश दिया जाए वह सब व्यर्थ ही हो जाता है।

उपदेशो हि मूर्खाणां, प्रकोपाय न शान्तये।
पयापानं भुजंगानां, केवलं विष वर्द्धनम्।।

जिस प्रकार सर्प को दूध पिलाने पर भी वह विष ही उगलता है। उसी प्रकार दुर्जन व्यक्ति होते हैं उन्हें कितना भी उपदेश दिया जाये परंतु वह प्रकोप शांति का हेतु नहीं बन पाता। अर्थात् किसी को यदि हित की बात कही जाए और वह उसे अहितकर माने तो वह दुर्जन प्रकृति का ही व्यक्ति है। माँ बेटे से कहती है- बेटा, रोज मंदिर जाया करो, मम्मी मंदिर में क्या रखा है वहाँ तो पत्थर की मूर्ति है जब ऐसी बात बच्चा कहे तो माँ शांत हो जाती है जब बच्चा शांत हो जाए तब समझाओ तो बात समझ में आती है। कोई व्यक्ति क्रोध में है उसे समझाने जाओगे तो वह आपकी सुनेगा नहीं अपितु आपको ही चार बात सुनायेगा। शास्त्रों में कहा है-क्रोध को शांत करने के तरीके हैं यदि क्रोध उत्पन्न हो रहा है तो (1) विषय को

Change कर दो। मान लीजिए रूपये पैसे को लेकर झगड़ा हो गया, मान-सम्मान को लेकर झगड़ा हो गया है और सामने वाला बोलता है आपसे उत्तर लेकर रहूंगा। वे घर-घर की कहानियाँ हैं। कभी पति का पत्नी से तो कभी पत्नी का पति से झगड़ा हो जाता है तो उदाहरण देखे जाते हैं। व्यक्ति, एक ही Point पर चर्चा करना चाहता है। मैं और कुछ भी नहीं सुनना चाहता हूँ। पत्नि से कोई कीमती सामग्री टूट गई या फुट गई। पत्नि तो चाहती है Matter Change हो परंतु पति क्रोध में पूछ रहे हैं कहाँ गई? उस समय Matter Change करें बड़े प्यार से बोले शाम को मिल जायेगी, ये तरीका है प्रकरण बींदहम कर दीजिए। बड़ी खुशी के साथ आदर-सम्मान के साथ मोड़ती है, तरीका निकालती है कहती है कि आप पहले ये तो बतलाइए आप कहाँ से आ रहे हैं और कहाँ जाना है, Matter को Change करती है, आचार्यों ने कहा-बढ़ते क्रोध को शांत करने का उपाय है। (1) विषय को बदल दें तो विसंवाद नहीं होगा।

किसी बात को लेकर झगड़ा हुआ तो पहले दो-दो बातें, फिर मुक्का-मुक्की फिर लट्ठा-लट्ठी भी हो जाती है। बड़े-बड़े हादसे हो जाते हैं इसलिए विषय को बदल दीजिए। अब यदि कदाचित् Matter बदल नहीं पा रहा, सामने वाला अड़ ही गया कि अभी जबाब देना होगा। तो आप व्यक्ति को बदल दीजिए। इसका समाधान सासु, जेठानी दे देगी। कोई न कोई माध्यम बना लीजिए तो बढ़ता हुआ क्रोध शांत हो जायेगा।

एक बार लक्ष्मण व परशुराम का विसंवाद हो गया। लक्ष्मण, परशुराम के क्रोध को भड़काने लगे एक तो वे वैसी ही क्रोधी ऊपर से लक्ष्मण और चिड़ाने चमकाने लगे। आग में यदि ईंधन डाला जाए तो आग और अधिक बढ़ जाती है। उसी प्रकार परशुराम का क्रोध भी और अधिक बढ़ जाती है। उसी प्रकार परशुराम का क्रोध भी और अधिक बढ़ गया वे क्रोध में अस्त्र लेकर दौड़े। तो लक्ष्मण राम के पास पहुँच गए। परशुराम, राम के सम्मुख खड़े हुए। राम परशुराम के चरण छूकर उनके क्रोध को शांत कर देते हैं। चरण छूकर कहते हैं-आप तो गुरु तुल्य हैं। आदरणीय, सम्माननीय हैं। मैं आपके दर्शन पाकर धन्य हुआ। परशुराम पानी-पानी हो गये उनका क्रोध शांत हो गया।

हमारे यहाँ भगवान महावीर स्वामी के विषय में उल्लेख मिलता है-एक बार एक हाथी मदोन्मत्त हो गया वह सांकल छोड़कर नगर की ओर भागा और

उत्पाद मचाने लगा, सर्वत्र हाहाकार मच गया जब महावीर कुमार को पता चला तो कुमार प्रसन्न मुद्रा में बढ़े उसी ओर सामने से हाथी आ रहा था। कुमार महावीर की प्रशांत मुद्रा को देखकर हाथी शांत हो गया और चरणों में आकर बैठ गया। महावीर कुमार हाथी को विजित कर उस पर बैठते हैं तथा सभी को निर्भयता प्रदान करते हैं। यह तो हमारे राज्य का हाथी है महावीर कुमार ने घोषणा कर दी। ग्रामवासी प्रशन्न हो गये उस समय ग्रामवासियों ने महावीर कुमार को वीर नाम से पुकारा। दुनियाँ में बहुत से वीर देखे परंतु आप तो ऐसे वीर हैं कि मात्र दृष्टि से ही हाथी जैसे पराक्रमी प्राणी को जीत लिया। लोगों ने कुमार की बहुत स्तुति की। कहने का तात्पर्य यही है Matter Change करो। वह संभव न हो तो व्यक्ति Change कीजिए।

कभी-कभी देखा जाता है कि जितने भी क्रूर प्राणी होते हैं, क्रोधी का जिससे बैर हो उसका ही बिगाड़ करते हैं। दूसरा व्यक्ति यदि माध्यम बना तो क्रोध शांत हो जाता है और कभी-कभी ऐसा होता है कि दो के बीच के झगड़े में तीसरा आये तो वह उल्टा फंस जाता है। जिससे क्रोध बढ़ रहा था उसे बदलिये कदाचित् ऐसी परिस्थिति आ जाये कि नहीं-नहीं आपसे ही चर्चा करूंगा। तो ऐसी परिस्थिति में आचार्य कहते हैं-घबराइए नहीं स्थान बदल दीजिए। क्योंकि द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव भी अपना प्रभाव डालते हैं।

वाल्मीकि रामायण में उल्लेख मिलता है-राम-लक्ष्मण व सीता वन में विचरण करते हुए किसी स्थान पर पहुँचे वहाँ पहुँचते ही लक्ष्मण, राम से रूष्ट हो गये, अविनय-अनादर की भाषा प्रारंभ हो गई। आपके कारण मैंने माता-पिता को छोड़ा, नगर-देश को छोड़ा, दिनोदिन भूखा रहा, कष्ट सहे। राम शांति मूर्ति होकर सब कुछ सुनते गये, चेहरे पर किंचित भी रोष के भाव नहीं थे। सीता जी से रह नहीं गया, सीता, राम से बोली-हे प्राणनाथ! आप लक्ष्मण को शांत करो, आज तक कभी मैंने ऐसा रूप लक्ष्मण का नहीं देखा, लक्ष्मण ने सीता को शांत कर दिया मेरा लक्ष्मण ऐसा नहीं है यह तो यहाँ की भूमि अपना प्रभाव दिखा रही है। यहाँ की मिट्टी थोड़ी सी पल्लू में बांध लो। उन्होंने वैसा ही किया। लक्ष्मण, सीता, राम साथ चले, थोड़ी ही दूर तक आगे बढ़े तो लक्ष्मण के अंदर परिवर्तन आ गया। लक्ष्मण, राम के चरणों में गिर गये। मुझे क्षमा कीजिए। न जाने आप से क्या-क्या कह दिया। धन्य हैं मेरे भैय्या! उन्होंने मुझे कुछ भी नहीं कहा। ऐसे भाई विश्व में कहीं नहीं

मिलेंगे, चरणों में पड़कर वे आंसू बहाने लगे अब सीताजी भी पिघल गई। लक्ष्मण भाई हैं वे क्षमा मांग रहे हैं आप उन्हें उठा लीजिए गल्ती से हो गई उनसे, क्षमा कर दीजिए। राम, लक्ष्मण को उठा लेते है और सीता से बोलते है देखो स्थान परिवर्तन का प्रभाव अब तुम जो पल्लू में मिट्टी बांध कर लायी थी वह लक्ष्मण के पैरों के नीचे डाल दो सीता जी ने वैसा ही किया, बस मिट्टी का डालना ही था कि लक्ष्मण जी फिर शुरू हो गए। आपका इतना कठोर हृदय, मैं इतनी देर से क्षमा मांग रहा हूं फिर भी दया नहीं कर रहे। मुझ पर दया नहीं तो किस पर करोगे। सीता जी बोली यह क्या? राम बोले-यह धरती का प्रभाव है।

अर्थात् यदि क्रोध भड़क रहा है तो स्थानान्तरण कीजिए। जिस बात को लेकर तू-तू मैं-मैं हो रही है। यदि घर पर झगड़ा हुआ है तो कहिये-चर्चा मंदिर में करेंगे। अन्य स्थान पर करेंगे। स्थान परिवर्तन से रोष शांत हो जाता है आचार्य श्री नेमीचंद्र सिद्धान्ताचार्य महाराज कहते हैं कि क्रोध का वेग अंतरमुहूर्त तक ही रहता है। जिस प्रकार थर्मामीटर में पारा होता है जितना बुखार होता है उतना ही पारा ऊपर चढ़ता है। उसी प्रकार क्रोध की सीमा अंतर्मुहूर्त की है।

कवि ने प्रथम विशेषण दुर्जन दिया है। दुर्जन का दूसरा लक्षण-जो आपके अच्छे कार्यों को अच्छा न माने, उपकार को उपकार न माने, अच्छे को बुरा कहने लग जाए। कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि आपने भला किया और सामने वाला कहे आपने बुरा किया तो ऐसी स्थिति में पारा बढ़ने लगता है।

यदि कोई आपको अच्छे से परोसकर भोजन कराये और अजीर्ण हो जाए तो दोष खिलाने वाले का नहीं, खाने वाले का है। कुर्सी पर से आप गिर गये तो देखने वाले का नहीं दोष आपका है। इसीलिए कवि भावना भाता है कि दुर्जन व्यक्ति को देखकर हे भगवन्! हमारी अंतरात्मा में क्रोध, रोष-तोष उत्पन्न न हो। छोटी-छोटी बाते विकराल रूप ले लेती हैं। दूसरा विश्लेषण है-क्रूर-यानि निर्दयी, जिसके अंदर दया, करूणा न हो। जो किसी भी प्रकार से झुकना नहीं चाहता वह क्रूर कहलाता है। दूसरे के कष्ट देखकर, परिस्थिति देखकर भी जो नहीं पिघलते, प्रार्थना सुनकर भी नहीं पिघलते। सज्जन क्षमा मांगने से पिघल जायेगा, शांत हो जायेगा, क्षमा कर देगा। दुर्जन एक हाथ और मार देगा, देखकर चलता नहीं और कहता है माफ कर दीजिए। शांत रह जाना अच्छा है। बात को बात तक ही रखे हाथ तक नहीं, हाथ को डंडे व डंडे को अस्त्र तक न पहुंचने दो। अगला विशेषण

दिया-कुमार्गरत-जो बुरे मार्ग, मिथ्या मार्ग पर लगे हुए हैं वे कुमार्गरत कहलाते हैं। यदि शराबी व्यक्ति से कहो कि शराब मत पियो, तो ऐसे लोग मिल जाते हैं जो कहते हैं मैं शराब पिऊँगा तो तुम्हारे पैसे खर्च हो रहे हैं क्या? नरक तुम जाओगे क्या? तुम अपनी देखो मुझे नहीं। उनकी बातों से आपकी उमंग, खुशी समाप्त हो जाती है। कभी-कभी कुमार्गगामी ऐसे भी होते है जो आपको ही गलत रास्ते पर लगा देंगे। एक बार किसी ने एक शराबी व्यक्ति से कहा-कि तुम शराब मत पिओ वह बहुत बुरी वस्तु है। अनेक शराबियों ने मिलकर उसे पकड़ा और उसे ही शराब पिला दी।

कुमार्गरतों से सावधान रहना चाहिए अपने व्रतों की रक्षा के लिए कुमार्गरतों से भी दूर रहना चाहिए। कहीं ऐसा न हो कि हम उन्हें सतपथ पर चलाने आगे बढ़े और हम ही उनके चक्कर में फंस जाए। किसी की बुरी आदत छुड़ाने के लिए गये वह तो छूटी नहीं और उल्टे हम ही उन जैसे बन गये तो ऐसे लोगों के पास जाना ठीक नहीं।

कवि कहता है-इस प्रकार जो दुर्जन, क्रूर व कुमार्गरत है हे भगवन्! उन पर मुझे क्षोभ/क्रोध नहीं अपितु-''**साम्य भाव रक्खूँ मैं उन पर ऐसी परिणति हो जाए।**'' विपरीत माहौल के बीच में भक्त भगवान से प्रार्थना करता है कि हे भगवन्! मेरे अंदर क्षोभ उत्पन्न न हो अपितु सामयता, क्षमा भाव उत्पन्न हो जाए। हमारी क्षमा को देखकर दूसरा अवश्य ही शांत हो जाएगा। पार्श्वनाथ भगवान की समता को देखकर कमठ ने क्रूरता छोड़ दी। एक बार महात्मा गांधी को गाल पर किसी ने तमाचा मारा तो उन्होंने दूसरा गाल आगे कर दिया। 3-4 बार ऐसा हुआ तो मारने वाला ठंडा हो गया। अब की बार उसने हाथ नहीं उठाया। महात्मा गांधी जी ने कहा-अपना रोष पूरा करो, तो सामने वाले ने अपने हाथ जोड़ लिये धन्य है आपको।

आचार्य महावीर कीर्ति महाराज के ऊपर एक बार कुछ लोगों ने प्रहार कर दिया वे घायल हो गये तभी पुलिस की लायरी (गाड़ी) वहाँ से निकली उन्होंने जैसे ही अत्याचार होते देखा-आताताईयों को पकड़ लिया और दंड देने हेतु Police Captan ने महाराज से आग्रह किया-संत महात्मा जी आप जो दंड सुनिश्चित करेंगे वही दंड इन्हें दिया जाएगा। महाराज ने कहा ठीक है तो इन सब को छोड़ दिया जाए। महाराज! ये आप क्या कह रहे हैं महाराज बोले-ये लोग भोले

भाले हैं, धर्म से अनभिज्ञ है, साधु की साधना को नहीं जानते इसलिए गल्ती हो गई। इन्हें छोड़ दो, आगे से ये ऐसा नहीं करेंगे। महाराज के शब्दों को सुन वे लोग श्रद्धा-भक्ति से पानी-पानी हो गये और महाराज के चरणों में पड़ क्षमा मांगने लगे हमने तो आप पर उपसर्ग किया और आप ने हमें क्षमा प्रदान की आप धन्य हैं।

राजा श्रेणिक ने भी यशोधर मुनिराज के गले में मरा सर्प डाल कर उपसर्ग किया परंतु साम्य भाव धारी यशोधर मुनिराज ने उपसर्ग कर्ता श्रेणिक व उपसर्गहर्ता चेलना दोनों को समान आशीर्वाद दिया। राजा श्रेणिक मुनिराज के साम्य भाव को देख आश्चर्य में पड़ जाते है व अपने किये दुष्कृत्य का बहुत पश्चाताप करते है।

यह सत्य है जिसके पास जो होता है वह वही देता है जिसके पास शूल है वह शूल ही देता है परंतु जिसके पास फुल है वह फुल देता। जो सज्जन है वे अपकार करने वाले का भी उपकार करते हैं। कवि ने बहुत सुंदर बात कही है-

शूल जो बो रहे, हो तुम्हारे लिए।
तुम सजा कर उन्हें, फुल का हार दो।।

अर्थात् जो समता शील होते हैं वे शूल बोने वाले को भी बदले में फुलों का हार देते हैं।

इसीलिए भावना भायी जा रही है कि हे भगवन्! मेरी परिणति इतनी निर्मल हो जाए कि कष्ट देने वाले को भी सुख दूँ। अपकारी का भी उपकार करूँ।

यही शाश्वत सुख को पाने का अमोघ उपाय है।

''1008 श्री कुंथुनाथ भगवान की जय''

दिनांक 18-07-2008
शुक्रवार, प्रात: 9.00 बजे बोरीवली, मुंबई

प्रसन्न हो, गुणों में प्रीति करूँ

भव्य मनीषियो!

''**मेरी-भावना**'' के माध्यम से कवि नये-नये गुण रूपी सुमनों की सृष्टि करते जा रहे हैं। जो संसार ताप से घबराये प्राणियों को अद्‌भूत शीतलता प्रदान कर रहे हैं। काव्य-6 के माध्यम से वे कहते हैं-

गुणीजनों का देख हृदय में, मेरे प्रेम उमड़ आवे।
बने जहाँ तक उनकी सेवा, करके यह मन सुख पावे।
होऊँ नहीं कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे।
गुण-ग्रहण का भाव रहे नित, दृष्टि न दोषों पर जावे।।6।।

ये पंक्तियाँ इस बात का परिचय दे रही हैं कि आप कैसे हैं? दूसरों का परिचय होने के पहले अंगुली हमारा परिचय करा देती है अमुक व्यक्ति बुरा है तो तीन गुना बुरा मैं हूँ। यदि हम एक गुना किसी को अच्छा कहें तो तीन गुने हम अच्छे हैं। दर्पण मे जब हम देखते हैं तो अपना चेहरा दिखता है। सज्जन व दुर्जन को अपना ही रूप नजर आता है। यदि हम अच्छे हैं तो दुनिया हमें अच्छी नजर आती है। हम बुरे हैं तो दुनियाँ भी हमें बुरी नजर आने लगती है। अच्छा-बुरा पदार्थ नहीं हमारा समझने-सोचने का तरीका है। हम चाहे तो बुरे पदार्थों में भी अच्छाईयाँ और चाहे तो अच्छे पदार्थों में भी बुराईयों को ग्रहण कर सकते हैं। यह हमारे ऊपर है कि हम क्या ग्रहण करना चाहते हैं। हम जो चाहते हैं उसी का मूल्यांकन या कीमत होती है श्री कृष्ण, अर्जुन के रथ के सारथी थे। वे रथ वन की ओर ले जा रहे थे। अर्जुन प्रसन्न थे। रथ चलते-चलते वन की एक ऐसी गली, रास्ते पर पहुँच गया जहाँ अर्जुन ने कहा-हे पार्थ! रथ को शीघ्र रोकिए। श्रीकृष्ण मुड़कर अर्जुन की ओर देखते हैं और कहते हैं-वीर पुरुष जिस रास्ते पर चलते हैं फिर पीछे हटते नहीं है।

फिर मेरा रथ पीछे कैसे हटेगा। अर्जुन बोले-मैं आपका उपदेश बाद में सुनूंगा, पहले रथ को मोड़िए। मेरा तो दम घुट रहा है। एक मित्र, दूसरे के साथ मित्रता का व्यवहार करता है मेरी विनती सुनो पहले रथ मोड़ो बाद में आपकी सुनूंगा। श्रीकृष्ण कहते हैं-पहले कारण बताओ क्यों रोकूं जहाँ अर्जुन खड़े नहीं होना चाहते थे, श्रीकृष्ण ने अपना रथ वहीं रोका। क्या कहना चाहते हो, श्रीकृष्ण से अर्जुन क्या कहें। श्रीकृष्ण सहसा बात नहीं मानेंगे, सामने कुत्ता मरा पड़ा था, क्षत-विक्षत हो गया था, वीभत्स नजर आ रहा था, दुर्गंध भी आ रही थी, रूकना संभव नहीं। श्रीकृष्ण, अर्जुन से कहते है-ये बुरा है तो तुम देखते क्यों हो? बुरी वस्तु को नहीं देखना चाहते फिर भी देख रहे हो। ये अनादि काल के संस्कार हैं-व्यक्ति बुरा देखना तो नहीं चाहता लेकिन देखे बिना रहता नहीं। बुराई सुनना नहीं चाहता फिर भी सुने बिना रह पाता नहीं। यदि आपका शत्रु बगल में बैठा हो तो आपको लगेगा कि कहीं मेरी बुराई तो नहीं कर रहा। अर्जुन से श्रीकृष्ण कहते हैं-बुरा नहीं देखना चाहते तो नहीं देखो। श्रीकृष्ण जी कहते हैं-मुझे तो यहाँ आनंद आ रहा है-अर्जुन कहते हैं वह क्यों? देखो, उस कुत्ते के दाँत देखो कितने सुंदर दाँत है। जो देखने लायक हैं उसी को देखता हूँ। यह सज्जन, पुरुष की पहचान है। सज्जन पुरुष जो वस्तु देखने लायक हो उसे ही देखता है। दुर्जन/मूर्ख व्यक्ति न देखने लायक को देखता है।

श्रीकृष्ण जी कहते हैं-वस्तु नहीं, हमारी दृष्टि बुरी होती है। मन बुरा है। जो बुराई की ओर जाता है। सज्जन का मन अच्छा है वह दूसरे की अच्छाईयों को देखता है। उसी को ग्रहण करता है इसलिए वह सज्जन है। दुर्जन को अच्छी बात/उपदेश भी अच्छा नहीं लगता, दुर्जन को धर्म की बात अच्छी नहीं लगती। सज्जन को धर्म की बातें अच्छी लगती है। सज्जन उपदेश में बिना कहे आता है व सुनता है। कई व्यक्ति संतों के प्रवचनों को घरों में बैठकर भी सुनते हैं जबकि दुर्जन अच्छी बात को नहीं सुनता। गाली, लड़ाई-झगड़ा कहीं चल रहा हो तो शीघ्र उठकर आ जाता है। कोई कहे प्रवचन सुनने चलो तो कहेगा रहने दो मुझे अमुक काम है। गुणवान की दृष्टि गुण पर होती है। संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं जिसमें कोई न कोई गुण न हो, जिसकी कीमत न हो। आज के समय में फुटे घड़े व फटे-पुराने वस्त्रों की भी कीमत है। संसार में ऐसा क्या है जिसकी कुछ न कुछ कीमत न हो। देखने, समझने की दृष्टि आपकी हो, ये तरीका आपका होना चाहिए। संसार के प्रत्येक

प्राणी मे कुछ न कुछ अच्छाई है। जिसकी दृष्टि बुरी है उसे तो भगवान भी बुरे लगेंगे। भगवान से क्या लाभ? उनकी पूजा से क्या लाभ? जितना पूजा में खर्चते हो उसमें किसी गरीब का पेट भरता। इतना पैसा बर्बाद कर दिया। आपकी यह सोच ठीक नहीं हैं। बुराईयों से, पापों से, अवगुणों से बचाने वाले जिनालय ही होते हैं। वे तो सुख-शांति के आलय हैं। यद्यपि प्रत्येक पदार्थ में गुण व दोष होते हैं। परंतु हमारा दृष्टिकोण जैसा होगा हमें वैसा ही दिखेगा। चूंकि कवि उन गुणों की बात कर रहे हैं जो गुण आत्मा को उठाते हैं, उन्नतिशील बनाते हैं। ऐसे गुण देखो जिससे अपना हित कल्याण हो, आत्मशांति मिले। गुणवान को देखने का प्रयत्न प्रयास करो। किसी की श्रद्धा को देखो, किसी के सच्चे ज्ञान को देखो। किसी के सम्यक्चारित्र को देखो। किसी के अंदर सच्चे तप, विनय, शिष्टाचार, सभ्यता, मृदुभाषा, सहनवृत्ति को, परोपकार वृत्ति को, दीन-दुःखियों पर उमड़ते करूणा भाव को देख लो। गुण की ओर दृष्टि हो तो संसार में गुण ही गुण दिखते हैं। गुणग्राही दृष्टि हो तो सर्वत्र आनंद की वृष्टि होती है। किसी के दुर्गुण देखते हैं तो दुसरे की बुराई पर दृष्टि जा रही है। उसका (दुर्गुण देखने वाले का) चेहरा बुरा दिखेगा, आंख भौंहे चढ़ जायेगी, नाक सिकुड़ जायेगी, चेहरे पर म्लानता दिखेगी। अर्जुन के चेहरे पर जब श्रीकृष्ण जी ने दृष्टि डाली तो बोले तुम्हारी फोटो बनाना चाहिए। आज विकृत्ति, बुराई तुम्हारे चेहरे पर दिख रही है। इसका मतलब तुम्हारा मन व आत्मा उससे बुरा है कहा है- "Face is index of heart" चेहरा व्यक्ति के मन को पढ़ा देता है। मन के रूप को दिखा देता है, हृदय के दर्शन करा देता है। बड़े-बड़े सामुद्रिक शास्त्र के पारगामी विद्वान हुए, शरीर के लक्षणों को जानने वाले शास्त्रों में कहा जाता है ऐसे कान, ऐसी नाम होने का ये लक्षण है। जब आपकी दृष्टि बुराई पर पड़े तो दर्पण में अपना चेहरा देख लो, एक दर्पण अवश्य होना चाहिए व उस में अपना मुख देखना चाहिए। फिर अपने मन से पूछो कि आपको अपना यह रूप पसंद है या नहीं। यदि नहीं तो गुणों पर दृष्टि ले जाइए। दृष्टि हमें अर्जुन की तरह नहीं श्रीकृष्ण की तरह बनाना चाहिए। आचार्य कहते हैं-बुरी वस्तु पर दृष्टि मत ले जाओ दृष्टि वहाँ ले जाओ जहाँ गुण है। गुणों पर दृष्टि ले जाओगे तो आपका मुख कमल खिल जायेगा, प्रसन्नता, हर्ष व खुशी से भर जायेगा। आपका रोम-रोम पुलकित हो जायेगा। कुछ लोग कमजोर होते हैं हृष्ट-पुष्ट होते हैं। कभी उनके पास बैठकर परखो, अन्वेषण, शोध करो तो पता चलेगा

ये व्यक्ति मोटा क्यों है? क्या बादाम, हलवा, पूरी, पकौड़ी खाता है नहीं, यह तो नमक रोटी खाता है। फिर भी हृष्ट-पुष्ट है। क्यों-क्या कारण है? उसके पास बैठोगे तो सबसे बड़ी बात वह प्रसन्न मिलेगा और जो दुबला-पतला है वह हमेशा रोता ही दिखेगा। जो राग-द्वेष, कषाय करता है वह सूखता जाता है।

छोटे बच्चों के विषय में प्राय: कहा जाता है-कि छोटे बच्चों को बुरा मत कहना अन्यथा वह हीन भावना से भर जायेगा और वह उन्नति नहीं कर पायेगा, बच्चे के सिर पर तो प्यार से हाथ रखना और कहना इस दिशा में प्रगति करो। कभी यदि बच्चा गिर जाये तो ये मत कहना ये कमजोर है इससे कहना राजा बेटा गिर पड़ा। मैं तो राजा बेटा हूँ, नहीं मम्मी मैं गिरा नहीं था, बैठ गया था, यदि किसी से बच्चे की बुराई करो तो उसके अंदर हीनता भर जायेगी, मेरा बेटा अच्छा है जब कहो कि बेटा मंदिर चले जाओ तो चला जाता है। मेरा आज्ञाकारी बेटा है तो वह बहुत खुश हो जायेगा। यह कहेगा मेरी मम्मी अच्छी है इसीलिए मान लेता हूँ।

''**गुणी जनों को देख हृदय में मेरे प्रेम उमड़ आवे।**'' हमें कहीं कोई अच्छे व्यक्ति शिष्टाचारी, धर्मात्मा, ज्ञानी, सदाचारी नजर आ जाये तो प्रसन्न हो जाइए। यदि आप प्रसन्न हैं तो सामने वाले की प्रसन्नता बढ़ जायेगी। यदि देखना ही है तो प्रसन्न व्यक्ति को देखो तो आपका मन भी प्रसन्नता से भर जायेगा।

मकान में यदि फोटो लगाने का अवसर आये तो सीनरी नहीं, वीतराग प्रसन्न चित्त भगवान की फोटो लगाओ जिसे देखकर वेदना, संक्लेशता, कष्ट दूर हो जाए। सीनरी से कोई महत्वपूर्ण लाभ नहीं मिलता। महापुरुषों के केलेण्डर, मूर्ति आदि को देखने से मन प्रसन्न हो जाता है। रास्ते में गुजरो तो प्रसन्न व्यक्ति को देखो। देवताओं का वास प्रसन्नता में होता है। एक व्यक्ति ने कहा-मेरा सब कुछ चला गया, दुकान लुट गई-क्या उपाय है। इतनी मेहनत से आपके पास आया, कोई उपाय नहीं, मंत्र दे दो, जाप फलीभूत नहीं होगी, जाप सिद्ध नहीं होगी, रास्ता बता दो, लक्ष्मी का द्वार तुम्हारे लिए बंद हो जाएगा। सत्य मेरा धर्म है इसलिए सत्य बोल रहा हूँ। सबसे पहले चेहरे पर प्रसन्नता लाओ, तब देवता आयेगा।

सदा प्रसन्न रहिए, प्रसन्नता ही दूसरों को प्रभावित करती है। आपकी प्रसन्नता दूसरों के अंदर प्रसन्नता का संचार कर देगी। संघ का नायक, घर का मुखिया, नगर का राजा, देश का राष्ट्रपति संघ के गुरु, घर के पिता, आदि बड़ी-बड़ी वेदना छिपाकर भी प्रसन्नता प्रकट करते है। उनकी थोड़ी सी उदासता से सारा

परिवार उदास हो जायेगा। इसलिए कहा जाता है-सब कुछ दु:ख छिपा लेते हैं ताकि दूसरे लोग चिंतित न हो।

इसलिए सदा प्रसन्न ही प्रसन्न रहिए प्रसन्न रहोगे तो कुछ न कुछ मिलेगा। प्रसन्न मुद्रा से दिया आशीर्वाद व्यक्ति को कीमती उपलब्धियाँ प्रदान करता है। जबरदस्ती से लिया गया उपलब्धियाँ नहीं देता है।

एक बार सामायिक में बैठे थे एक बच्चा बोला-आशीर्वाद दो, अड़ गया अंत में हमारी पिच्छी उठाई और अपने सिर पर रख ली। कहने का तात्पर्य है कि जब भी कोई गुणवान व्यक्ति मिले, धर्मात्मा, साधु संत मिले तो उन्हें देखकर प्रसन्न हो जाइए। गुणी रत्नत्रयधारी को देखकर हृदय में प्रेम उमड़ना चाहिए और जहाँ प्रीति होती है तो प्रसन्नता चेहरे पर स्वयमेव आ जाती है। अथवा यूं कहे कि प्रसन्नचित्त ही गुणवान से प्रीति करता है तो भी सत्य हैं। काव्य-६ के माध्यम से कवि ने प्रथम पंक्ति में ही बात कही है कि गुणवान से प्रेम करोगे तो जीवन में प्रसन्नता आयेगी और प्रसन्नता से तुम सारी उपलब्धियों को पा सकेंगे।

इसी भावना के साथ....।

"1008 अरहनाथ भगवान की जय"

दिनांक 18-07-2008

शुक्रवार, प्रात: 9.00 बजे — बोरीवली, मुंबई

सेवा कर बड़भागी बनूँ

बंधुओ!

''**मेरी-भावना**'' अपनी गति से गतिमान है लेखक विद्वान पंडित ने कहा है-''**गुणी जनों को देख हृदय में मेरे प्रेम उमड़ आवे।**'' जो वस्तु जिसे प्रिय होती है। उसे देखकर प्रसन्नता होती है। प्यासा जल को देखकर, भूखा भोजन को देखकर, मां बेटे को तथा बेटा मां को देखकर प्रसन्न, हर्षित, खुश होता है। क्यों? जिसके लिए जो प्रिय होता है उसे पाकर प्रसन्नता होती है। भक्त भगवान के पास जाकर हर्षित हो जाता है। उसी प्रकार गुणीजन गुणों को देखना चाहते हैं, गुणों को गुणी ही देख सकता है, जो गुणवान नहीं है वह न तो गुणों को देख ही सकता है और न पा सकता है क्योंकि वह गुण की कीमत महिमा नहीं जानता जबकि गुणी धर्मात्मा, दूसरे धर्मात्मा को देखकर प्रसन्न हो रहा है उसका परिचय बढ़ रहा है। वे व्यक्ति गुणी जनों को देखकर आनंदित होते हैं। प्रसन्न होना पर्याप्त नहीं है। ऐसी प्रसन्नता से क्या फायदा जिसके पीछे आदर-सम्मान, सेवा-भक्ति न हो कोई व्यक्ति मात्र पूछता रहे कि आपने खाना खा लिया क्या? और खिलायें नहीं यदि सामने वाला हाँ कह दें और आप धीरे से खिसक पियोगे क्या? यदि सामने वाला हाँ कह दें और आप धीरे से खिसक जायें तो पूछने से क्या फायदा? इससे कुछ भी लाभ नहीं। इससे तो मात्र प्रदर्शन झलकेगा, इससे Show-room की वस्तु की तरह सुंदर दिखेंगे पर वैसे होते नहीं हैं। जिस प्रकार Show-room की वस्तु जैसी दिखती है वैसी होती नहीं है। यहाँ गुणी की बात कही पर सत्य तो यह है कि आपके अंदर गुणों को पाने की लालसा है। आचार्य श्री उमास्वामी जी महाराज एक बड़े जैनाचार्य हुए तत्वार्थ सूत्र ग्रंथ की रचना उन्होंने की है। यह एक सार्वभौमिक ग्रंथ है। विरला ही कोई व्यक्ति होगा जो इसे पढ़ता न हो इसे सभी

जानते हैं तथा दिगम्बर व श्वेताम्बर संप्रदाय दोनों में मिलता है। इस ग्रंथ के मंगलाचरण में आचार्य महाराज कहते हैं-''**वंदे तद्गुण लब्धये**''। हे भगवन्! आपके उन गुणों की प्राप्ति के लिए मैं नमस्कार करता हूँ। इतने बड़े आचार्य भगवन् भी गुणों की वंदना कर रहे हैं ठीक भी है, कहा जाता है-''**गुणाः सर्वत्र पूज्यन्ते**''। अर्थात् सर्वत्र गुण ही पूज्यनीय होते हैं। व्यक्ति का सम्मान नहीं गुणों का सम्मान होता है। यदि गुण हैं तो लोग प्रभावित होते हैं, जुड़ते हैं। गुण न हो तो कोई नहीं पूछता। कहा जाता है-

कौआ काको लेत है, कोयल काको देत।
मीठी वाणी बोल के, जगआपा कर लेय।।

बोलता कौआ भी है और कोयल भी। परंतु बोलने-बोलने में अंतर है। एक प्यार की भाषा होती है एक रूखी होती है। प्यार से कोई बुलाता है तो दुनियाँ आकर बैठ जाती है। रूखापन हो तो कोई पास में नहीं फटकता। गुण ही आकर्षण का केन्द्र होती है। मीठी वाणी गुण है।

बंधुओं! कीमत सदैव गुण की होती है। गुण वर्षों की तपस्या से प्राप्त होते हैं। लेकिन जाने में देर नहीं लगती। एक ही बात काफी है, एक ही अनुचित व्यवहार काफी है। मूर्ति बनाने में वर्षों वर्ष लगते हैं परंतु गिरकर फुटने में क्षण भर भी नहीं लगता। मकान बनाने में समय लगता है, गिराने में नहीं। व्यक्तित्व बनाने के लिए बहुत श्रम करना पड़ता है। ऊँचे-नीचे रास्ते से गुजरना पड़ता है। तब जाकर व्यक्तित्व, इज्जत, सम्मान बन पाता है। घड़ा यूँ ही नहीं बनता। घड़े की भी अपनी जीवन गाथा बहुत लंबी है। घड़ा ने कभी कुदाली की मार सही है। कुम्हार जब मिट्टी खोदने जाता है, तब वह मिट्टी को चोट मारता है। मार सहकर भी उसे गधे पर लादा जाता है। यदि किसी को गधे पर बिठाया जाए तो अपनी बेइज्जती समझता है। परंतु मिट्टी को गधे पर भी लादा जाता है फिर उसके ऊपर पानी डालते हैं और पैरों से कुचला जाता है प्रताड़ित किया जाता है फिर भी मिट्टी सब कुछ चुपचाप सहती रहती है। वह कहती है कुम्हार से-तुम मुझे कुदाली मारो, गहरी चोट मारो तो भी कोई बात नहीं, मुझे विश्वास है कि तुम मुझे अच्छा बनाओगे। जब कुम्हार पैरों से कुचलता है तो भी वह सह लेती है क्योंकि मालिक पर भरोसा है। फिर कुम्हार उस मिट्टी को चाक पर रख देता है और ऐसा नचाता है कि ऐसा कोई नृत्यकारिणी को भी नहीं नचा सकता। यदि कोई व्यक्ति अपनी

इच्छानुसार काम करावे तो लोग कहते है कि मुझे अंगुलियों पर नचा रहे हो। मिट्टी उसके लिए भी तैयार हो जाती है। फिर मिट्टी को ठोक-पीट कर आकृति देता है। उस मार को भी मिट्टी सह लेती है। फिर धूप में रखकर सुखाता है, यदि किसी को 5 मिनिट भी धूप में खड़ा कर दिया जाए तो उलाहना देता है। परंतु मिट्टी धूप में पड़ी-पड़ी पूरी सूख जाती है परंतु मौन रहती है। अभी भी उसकी परीक्षा पूरी नहीं हुई कुम्हार उसे अग्नि पर तपाता है फिर भी मिट्टी कुछ नही कहती, यदि ऐसी अग्नि परीक्षा अपनी हो तो हम तो मैदान छोड़कर भाग जायेंगे। अथवा कहेंगे मुझे आपकी पूजा, प्रतिष्ठा सम्मान नहीं चाहिए। लेकिन मिट्टी सब सहन कर लेती है अग्नि परीक्षा भी दे देती है। इतना सहन के बाद एक दिन ऐसा भी आता है जब लोग उसे हाथों-हाथ लेकर चलते हैं, सिर पर रखते है। मिट्टी का यह जो सम्मान हुआ वह उसकी सहनशीलता का सम्मान है। व्यक्ति पूज्य या अपूज्य नहीं होता, व्यक्ति वो वैसा का वैसा ही होता है असम्मान-सम्मान, पूज्यता-अपूज्यता गुणों से आती है। दुर्गुण असम्मान दिलाते हैं अथवा दुर्गुण सम्मान को गिरा देता है। गुण व्यक्ति को सम्मानीय, विश्वसनीय बना देते हैं। गुणों को पाने के लिए बहुत कुछ तपस्या करनी पड़ती है। जिन्हें हम भगवान कहते हैं, मंदिर में स्थापित करते है कभी उनकी जीवन गाथा उठा कर पढ़ लीजिए। कैसे वे भगवान बने। हमारे लिए आज बड़े दुःख की बात है कि हम ऐसी स्थिति पर है कि हम एक कदम भी आगे नहीं बढ़ा पाते, अच्छाईयों को प्रकट नहीं कर पाते। रोज भगवान की पूजा, अर्चना करते है पर एक भी गुण हमारे अंदर नहीं आ पाता क्योंकि हमने गुणों को समझने का प्रयत्न ही नहीं किया। हमारी गुणों की परिभाषा मात्र नाम, सम्मान, फोटो, Video, या माला, मुकुट, सिंहासन पर ही टिकी है। अपन ऐसा समझते हैं कि ये सब मिल गया यानि सब कुछ मिल गया। भगवान हमें समझा रहे हैं। हे भव्य! यह तुम्हारी अज्ञानता है। जो तुम अमूल्य वस्तु को इन मूल्यों में माप रहे थे। माला में अमूल्यता को खो दिया। सबको माला डाल दी, मुझे तो किसी ने पूजा ही नहीं आज से मंदिर जाने का त्याग, क्यों भाई क्या हो गया? आप तो रोज मंदिर जाते थे, जाप करते थे, भगवान की स्तुति करते थे। तो क्या आपकी सारी भक्ति माला के लिए थी। भगवान कहते हैं-माला में अमूल्यता को खो मत देना। ऐसा करोगे तो मानूंगा कि व्यक्ति ने राख के लिए चंदन जला दिया। कांच खरीदने रत्न बेच दिया कांच की माला अधिक कीमत नहीं रखती। भगवान की पूजा रत्न तुल्य है। आपका

विवेक, ज्ञान क्या बोल रहा है आपका विवेक बाह्य आदर, सम्मान, नाम में आपका उपयोग है। मेरा सम्मान नहीं रखा तो आपने कांच के बदले रत्न को खो दिया, ये आपकी बड़ी भारी मूर्खता है। हे मनीषी! कांच की नहीं, रत्न की कीमत करो, धर्म, गुणों की कीमत करो। फूल में सुगंधि होना चाहिए। सुगंधि है, गुण है तो सर्वत्र स्वयमेव फैल जायेगी, व्यक्ति स्वेच्छा से आपका सम्मान रखेगा। यदि सम्मान की अपेक्षा न रखकर कार्य किया है। तो उन गुणों की कीमत और भी बढ़ जाती है। वे लोगों की दृष्टि में आते हैं कि इनका कभी सम्मान नहीं हुआ फिर भी कर्त्तव्य से कभी पीछे नहीं रहते। नाम तो पत्रिका, पोस्टर में लिखा जाता है परंतु जो नाम दूसरे के हृदय में लिख जाए उसकी कीमत अधिक ही रहती है। माला से गुणों को नहीं खरीदा जा सकता। फोटो से रूपये पैसों से गुणों को नहीं खरीदा जा सकता। त्याग, तपस्या, साधना, सहनशीलता से गुणों को प्राप्त किया जा सकता है। गुणवान को देखकर प्रेम उमड़ना चाहिए। जहाँ तक बने वहाँ तक सेवा कीजिए। सेवा ही पूजा है कहा जाता है-"Work is workship" सेवा ऊँची वस्तु है। सेवक बने बिना सेवा हो नहीं सकती। मालिक बनकर सेवा नहीं हो सकती। सेवक बनकर सेवा की जाती है। जब हम पत्र लिखते है तो अंत में लिखते हैं-हमें सेवा का अवसर अवश्य दें। लोग दर्शन करने आते हैं तो कहते हैं-सेवा का अवसर दीजिए। प्राय: दो किस्म के लोग होते हैं। कुछ मालिक किस्म के व कुछ सेवक किस्म के। सेवा का संबंध सेवक से होता है। मालिक से नहीं। बिना सेवक बने सेवा नहीं हो सकती। सेवा करने के लिए सेवक बनना अनिवार्य है। जब सेवक बन जाता है तो नियम निर्धारित नहीं है। नौकर व सेवक में अंतर है-नौकर अपना काम पूछ सकता है। सेवक नहीं पूछता। किन्हीं भी पुराणों में नहीं लिखा सेवक का क्या काम है। माने तो सब काम है न माने तो कुछ भी नहीं नौकर, नौकरी मान कर करता है और सेवक, भक्ति, समर्पण भाव से सेवा करता है। नौकर यहाँ का कचरा वहाँ, वहाँ का यहाँ कर देगा। घंटे भर तक झाडू.लगाता है। सेवक होगा तो आहिस्ते-आहिस्ते पूरी लगायेगा। एक बार लगाने के बाद अवसर आ जाये तो दुबारा भी लगा देगा। सेवक ऊँची वस्तु है, नौकर अच्छी वस्तु नहीं थी। सेवक बनना है तो ऐसे बनो जैसे-भगवान के मंदिरों में सेवक होते हैं। एक ऐसा नगर था जिसमें मैंने देखा तो सेवक ही सेवक नजर आये और एक स्थान ऐसा देखा जहाँ नौकर ही नौकर नजर आये। कहीं सेवक तो कहीं नौकर दिखते है। सेवक जहाँ होते है वहाँ एक भी

कर्मचारी नहीं है, सबकी व्यवस्थाएँ बटी है। वे बाटी नहीं गई स्वयं स्वेच्छा से ली गई है। सेवक, सेवा के अवसर की खोज में रहता है। अवसर पाते ही सेवा करने लग जाता है। एक बार की बात है एक सज्जन बहुत जल्दी निकल गये और मंदिर का द्वार खोल दिया, दूसरे सज्जन ने पीछे से झाड़ू उठायी और झाड़ू लगाने लगे, तीसरे व्यक्ति द्रव्य संशोधन करने लगे, अगले ने पानी खींचा, अन्य सज्जन ने बर्तन साफ करके रख दिये और द्रव्य लगाना शुरू कर दी एक ने थाली को मंदिर की वेदी पर पहुँचा दिया। सारे काम सुव्यवस्थित हो गये। किसी ने चटाई बिछा दी, किसी ने माईक लगा दिया, किसी ने कहा-महाराज को लेने जाए। यहाँ तो बड़ा आश्चर्य है कि अपने आप सारे कार्य सुव्यवस्थित हो रहे हैं। एक श्रावक से पूछा-तो वह बोले हमारे यहाँ कोई कर्मचारी पुजारी नहीं रखा। हमने कहा-ऐसे कैसे काम चलेगा, (मैंने परीक्षा ली) वे सज्जन बोले महाराज! हम तो भगवान के सेवक हैं/दास है। जब तक सेवक है तब तक नौकर की आवश्यकता नहीं है।

मैंने पूछा-ये कब से सीखा। तो वे बोले-जब से इस मंदिर का निर्माण किया तभी से। मंदिर का निर्माण भी छने पानी से किया गया है। स्वयं श्रम दान भी किया है। उस समय हम लोगों के पास कुछ अधिक संपत्ती नहीं थी। हम लोग नौकरी करने आये थे भगवान को ही हम भूल न जाए इसलिए हमने मंदिर बनवाया, भगवान की सेवा की। उसी सेवा व भक्ति का फल है कि जहाँ छोटे-छोटे से घर थे वहाँ अब आलीशान महल बन गये। भगवान की भक्ति सेवक बन कर करें तो उसका फल अपूर्व ही होता है। यदि नौकर बनकर करोगे तो वह फल नहीं मिलता जो मिलना चाहिए। धर्म के कार्यों में सेवा का भाव हो। नौकर तो रूपयों के लिए काम करता है। जबकि सेवक आत्महित के लिए कार्य करता है। यह दोनों में अंतर है। जो व्यक्ति नाम, फोटो, कैमरे, video, के लिए काम कर रहा है उसे सेवक कहोगे या नौकर। वह सेवक तो नहीं कहला पायेगा क्योंकि वह नौकर तुल्य है। अपेक्षा लेकर काम करने वाला नौकर है। बनना ही है तो सेवक बनो नौकर नहीं। कवि कहता है-

''बने जहाँ तक उनकी सेवा करके यह मन सुख पावे।।''

सेवा करने के बाद वजनदारी का अनुभव नहीं होना चाहिए अपितु सुख-शांति का संवेदन होना चाहिए। प्रदर्शन नहीं होना चाहिए। बहुत से लोग काम थोड़ा करते हैं परंतु नाम बहुत चाहते हैं। अपनी तरफ से तो प्रयास मत करो। गुणों

को ढांककर दुर्गुणों को खुले बर्तन की तरह रखो। गुणों को हीरे-मोती की तरह संभाल कर रखो व दुर्गुणों को उसी तरह रखो जैसे-आप रद्दी, कूड़े-करकट को रखते हो। गुणों का संभाल कर ढ़ाँक कर रखना चाहिए। मैं क्या कर सकता हूँ, छोटा-मोटा करके सौभाग्य मानता हूँ। जिसने अपने गुणों की कीमत की है वह छिपाकर रखेगा, कभी किसी की भलाई करो, सहयोग करो तो प्रदर्शन मत करो।

कभी-कभी गरीब व्यक्तियों का सहयोग उनकी पूरी बेइज्जती करके किया जाता है। माईक पर बोला जाता है यह गरीब है, खाने-पीने को नहीं है। उसका हृदय छलनी-छलनी कर दिया जाता है। वह तो परिस्थिति का सताया है, आँख बंद करके सब कुछ सहन कर लेता है। परंतु वह दूसरों की दृष्टि में गिर जाता है। दूसरों के दु:खों को समझने का प्रयत्न करो। सेवा करो तो ऐसी कि प्रदर्शन न हो।

दीवान अमरचंद जो कि जयपुर नरेश के मंत्री थे। वे सदैव छिपकर प्रजा के दु:खों को दूर करते हैं वे रात्रि में वेश बदलकर जाते थे और कोई दु:खी, दरिद्र मिलता तो उसे भरपूर धन संपत्ति देकर सुखी कर देते थे। उनका यही सूत्र था कि-

"बने जहाँ तक उनकी सेवा करके यह मन सुख पावें।"

आप मुझे सेवा का अवसर दिला दें। कोई गुरुजन आये अथवा रत्नत्रयधारी आये और आप उन्हीं से पूछने लग जाए कि क्या मैं चिटाई बिछा दूँ। तो भैय्या! यह पूछने की बात नहीं। इसी प्रकार कभी-कभी कुछ वैय्यावृत्ति करने वाले आते है और पूछने लगते हैं कि महाराज! क्या आपके पैर दबा दूं। कभी-कभी रास्ते में विहार करते समय लोग पूछते हैं-क्या आपका कमण्डल पकड़ लूँ। अरे भैय्या! कुछ काम ऐसे होते हैं जो पूछने के नहीं करने के होते हैं। हाँ, यदि मंदिर में कहीं गंदगी दिखे तो झाड़ू लगा देना चाहिए इससे आपका सम्मान गिरेगा नहीं अपितु उठेगा। कोई बीमार है असहाय है उसकी औषधी करा दो, कोई वृद्ध दिखे तो रोड़ पार करा दो। मंदिर में बिछाई न हो तो वह बिछा दो। यह भी आपकी सेवा होगी। अच्छे व्यक्ति सेवा करके ही सुख पाते हैं। यदि आपकी किसी की सेवा की और आपको सुखानुभूति हो रही है तो वह ही आपकी सच्ची सेवा होगी। आप सभी सेवाभाव को जीवन में अपनाएँ।

इसी भावना के साथ....।

"1008 मल्लिनाथ भगवान की जय"

दिनांक 19-07-2008

शनिवार, प्रात: 9.00 बजे — बोरीवली, मुंबई

उपकारी का ऋणी रहूँ

भव्य बंधुओ!

जैसे-जैसे हम ''**मेरी-भावना**'' की गहराई में उतरते जा रहे हैं नये-नये गुण रूपी सुंदर मोती प्राप्त होते चले जा रहे है। काव्य-६ की तृतीय पंक्ति में कवि कहते हैं-

''होऊँ नहीं कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे।''

इस पंक्ति में बतलाया गया है कि कृतघ्नता एक अवगुण है ओर कृतज्ञता गुण है। निरंतर गुरुजन शिक्षा देते हैं कृतघ्न नहीं होना चाहिए। जो उपकारी के उपकार को मानता है उसे कृतज्ञ कहते हैं। उपकारी के उपकार को नहीं मानना, अपकार करना द्रोह कहलाता है। जिन्होंने हमारा उपकार किया हो उसके उपकार को न भूले क्योंकि उपकार का ऋण अमूल्य होता है चुकाया नहीं जा सकता और उपकार चुकाने का मतलब है उपकार स्मरण करते रहें। जो उपकारी के उपकार को भूल जाता है वह एक बार तो उपकार करेगा तो कभी कोई आपकी सहायता नहीं करेगा। कहा जाता है-''**न हि कृतमुपकार: साधव: विस्मरन्ति।**'' अच्छे पुरुष उपकार को नहीं भूलते जब शास्त्रों को उठाकर देखते हैं तो उदाहरण याद आते हैं- कि उपकार बदला उपकार से दिया अथवा उपकार स्मरण करते हैं। तीर्थंकर पार्श्वनाथ ने मरते हुए नाग-नागिन को णमोकार मंत्र सुनाया जिससे वे स्वर्ग में जाकर देव हुए। धरणेन्द्र व पद्मावती नाम के भवनवासी देव हुए यह पार्श्वनाथ स्वामी के उपकार का प्रतिफल था जब पार्श्वनाथ पर उपसर्ग आया तो वे ही धरणेन्द्र-पद्मावती आये। आज मैं जो कुछ हूँ वह पार्श्वनाथ की कृपा का फल है। वे ऐसा विचार कर दौड़ कर आते हैं। व उपकार का बदला चुकाते हैं। कृतज्ञ उपकार के प्रति ऋणी रहता है। उसके कष्ट को दूर करने के लिए प्रयत्नशील रहता

है। निरंतर उपकार करते रहना चाहिए। उपकारी के प्रति आकांक्षा या प्रतिबदले की अपेक्षा न रखे। मैंने दूसरे का उपकार, भला किया तो वह भी मेरा उपकार, भला करें। तो वह परमार्थ नहीं होगा, सौदा हो जायेगा।

बहुत से लोग ध्यान रखते हैं, आपने मुझे भोजन कराया था तो मैं भी कराऊँगा, आपने मुझे नहीं पूछा तो मैं क्यों बोलूं, आपने मेरा सम्मान नहीं किया था, तो मैं क्यों करूँ ये विचार एक सौदागरी है यदि व्यक्ति ऐसे विचार को लेकर उपकार करता है तो वह परमार्थ/धर्म नहीं है। सच्ची सेवा नहीं है। उपकार प्रति बदले की भावना के बिना किया जाता है। पार्श्वनाथ ने नहीं सोचा कि नाग-नागिन मेरा कष्ट दूर करेंगे कि नहीं। वे मेरे द्वारा सुनाए णमोकार का बदला/प्रतिफल दे। यही कारण है पार्श्वनाथ के उपकार का बदला कई गुनी ऊँचाई को प्राप्त हो गया। धरणेन्द्र, पद्मावती कहते हैं-आपने मेरा एक नहीं भव-भव सुधार दिये, आपकी जितनी भक्ति, सेवा करूँ कम ही है। कृतज्ञ व्यक्ति निरंतर स्मरण करते हैं। सब गुरु के उपकार को देखते हैं-गुरु ने बहुत बड़ा उपकार किया मुझे रत्नत्रय प्रदान किया, मोक्षमार्ग के संस्कार दे दिए। जमीन से उठाकर सिंहासन पर बिठाल दिया। उच्च आसन पर ही नहीं धर्म के आसन पर, धर्म के रास्ते पर लगा दिया यह बहुत बड़ा उपकार है। हम लौकिक पदार्थों से माप करते हैं। गुरु के बर्तन, चटाई, खाने-पीने नहीं दिया यह व्यक्ति का सोच है। मुझे क्या दिया, हम बाह्य दुनियाँ को देखते हैं उसी का मूल्यांकन करते हैं। जब तक परमार्थ को नहीं देखते तब तक परमार्थ की कीमत नहीं कर पाते। मोक्षमार्गी तो कहेगा जो गुरु ने दिया वह कोई नहीं दे सकता। शिष्य, गुरु के उपकार को कैसे चुका सकते हैं इसके विषय में उमास्वामी महाराज ने तत्वार्थ सूत्र में कहा है-''**परस्परोपग्रहो जीवानाम्**'' परस्पर में उपकार करना जीव का लक्षण है। सर्वार्थसिद्धि में आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने कहा कि जीव, जीव का उपकार कैसे करता है। गुरु शिष्य को अच्छे मार्ग पर लगाते हैं। अनुशासन में ढाल अमूल्य बना देते हैं, यह सबसे बड़ा उपकार है वे हमें इस सांचे में न ढालते तो हम पशु तुल्य होते। प्रारंभिकता में डांट, समझाना बुरा लगता है, आज्ञा कष्टकारी लगती है जब ज्ञान हो जाता है तो पता चलता है कि उस समय की डांट ने कितना काम किया वे कंट्रोल नहीं करते तो सुधार नहीं कर पाते, डांट की कीमत थी। उन्होंने अपेक्षा नहीं रखी कि वह मेरी सेवा नहीं करेगा, उपकार नहीं चुकायेगा। आज का संसार स्वार्थ पर तुला है लोगों की Thinking होती है। कि मुझे किसी

से क्या लेना, उनका वो जाने, उसका फल वो जाने लेकिन गुरु ऐसा नहीं सोचते, गुरु दयालु होते हैं। वे नहीं चाहते कि आप नरक जाये, आपको आंसू बहाने पड़े, दु:खी होना पड़े इसी का नाम अहिंसा महाव्रत है। आपको भविष्य में दु:ख न हो इसलिए Control करते हैं। जो यह सोच ले मुझे क्या करना किसी से। उससे अधिक दया विहीन कोई नहीं। इसका मतलब कोई गिर रहा है तो उसे गिरने दो, कोई तड़फ रहा है तो तड़फने दो ऐसा कौन होगा जो दया विहीन हो। हमारे संघ में एक वृद्ध महाराज थे बहुत अच्छे थे ज्यादा पढ़े लिखे तो नहीं थे, प्रवचन नहीं करते थे परंतु ऐसे काम करते थे जो प्रवचन व शास्त्रों से बढ़कर थे। कोई सामायिक में प्रमाद करता तो बोलते थे सामायिक पूरी करना चाहिए। तभी तो कर्मक्षय होगा। कभी कदाचित् कोई गुरु अनुशासन का उल्लंघन करें अथवा प्रतिक्रमण आदि में लेट हो तो समझाने पहुँच जाते थे-गुरु चरणों में तो पहले से पहुँचना है। जब Station पर Train आती है तो यात्री गण बाद में आते हैं कि पहले? बाद में जायेंगे तो Train निकल जायेगी। हमें Time पर पहुंचना है। अमुक यात्री Platfarm पर भी सावधान रहते हैं। ठीक इसी प्रकार सावधान रहते हैं। यदि कोई व्यक्ति गलती करे और आलोचना न करे तो सभी को टोंकते थे कि आपने गलती की तो प्रायश्चित लिया, नहीं मुझे डर लगता है, यदि महाराज डाँटेंगे तो मैं क्या करूंगा? चलों मैं तुम्हारे साथ चलता हूं। यदि कोई बिना अनुमति के कुछ सामान ले ले तो वे कहते थे मैं शिकायत करूंगा-महाराज से पूछा क्या? नहीं पूछा तो पहले आज्ञा लीजिए। कहने का तात्पर्य यह है कि सबको अच्छी-अच्छी बातें बताते रहते थे। श्रावकों से भी कोई Mistake हो जाए तो उनको भी टोकते थे, तुमने ऐसा किया, कैसे किया प्रतिज्ञा करो ऐसी गलती फिर नहीं करेंगे, यह उपकार है। उपकार को भुलाया नहीं जा सकता। उपकार कभी छोटा नहीं बहुत बड़ा होता है। सुई देखने में कितनी छोटी होती है परंतु काम बहुत बड़ा करती है। कांटा लगने पर तलवार की नहीं सुई की आवश्यकता होती है। कपड़े फट जाए तो सुई की कीमत अधिक होती है। गुरु का उपकार है कि वे शिष्य को संस्कार देते हैं तथा शिष्य, गुरु के आज्ञा, अनुशासन में रहता है यह शिष्य के द्वारा गुरु पर किया गया उपकार है। एक उपमन्यु नाम छात्र था जो कृतज्ञता में प्रसिद्ध था वह आंखों से अंधा था, उसकी आंखों की रोशनी किसी कारणवश चली गई थी। आश्रम के सभी बच्चों को मेहनत, श्रम करना पड़ता था। वे आश्रम की सेवा तथा गुरु और

गुरुकुल की सेवा करते थे, गुरु की आज्ञा का पालन, गुरु के स्थान की सफाई, गुरुकुल की सफाई, आश्रम की झाड़ू आदि करते थे। एक दिन उपमन्यु को उसके गुरु ने व्यवस्था सौंपी कि आज तुम्हें गायों को जंगल में चराने जाना है, उसने गुरु आज्ञा स्वीकार की तथा गायों को लेकर जंगल चला गया, आंखों से भले अंधा था परंतु विवेक बुद्धि उसके पास थी। जंगल में जहाँ से वह गुजर रहा था वहां कूप था, कूप के चारों ओर Boundary न होने से उपमन्यु उस कुयें में गिर गया। उसे कई स्थानों पर चोट भी लग गई, परंतु जंगल में उसकी कौन सुनता, वह निरंतर भगवान के नाम का स्मरण करने लगा, जब वह जंगल से बहुत देर तक आश्रम में वापस नहीं आया तो गुरु को चिंता हो गई कि आखिर मेरा शिष्य क्यों नहीं आया और वे व्याकुलित होकर शिष्य की खोज में जंगल की ओर जाते हैं तथा अन्य शिष्यों को भी साथ ले जाते है। देखते है कि जंगल में एक स्थान पर गाय-बैल खड़े हैं। गुरु अपने शिष्य के लिए आवाज लगाते हैं वे सोचते हैं कि उपमन्यु यही-कहीं होगा वे यहाँ-वहाँ दृष्टि दौड़ाते हैं तो पाते हैं कि उपमन्यु तो एक कुयें में गिर गया है तथा भगवान का नाम उच्चारण कर रहा है। तभी आकाश से अपने विमान में देव-देवी वहाँ से गुजरते हैं। उनकी दृष्टि कुयें पर पड़ती है। देवी उपमन्यु को कुयें में पड़ा देख द्रवित हो जाती है। वह अपने देव से कहती है कि हे नाथ! देखिए! वह बच्चा कितनी मुसीबत में है उसे शीघ्र कुयें से निकालिए। उपमन्यु एक पत्थर की शिला पर खड़ा था, देव उसे निकालने हेतु आगे बढ़ता है वह उपमन्यु को देखता है कि इसे तो चोट लगी है वह कहता है उपमन्यु ये लो दवा, इसे अपने घाव पर लगा लो, चूंकि उपमन्यु गुरु भक्त था वह कहता है कि बिना गुरु की आज्ञा के मैं आपकी दवा को स्वीकार नहीं कर सकता। ठीक है तुम दवा न लो तो न सही परंतु भूखे हो तो कम से कम भोजन ही कर लो, मैं बिना गुरु आज्ञा के वह भी नहीं कर सकता। अब की बार देव कहता है कि तुम मेरे विमान में बैठ जाओ मैं तुम्हें बाहर निकाल लेता हूँ गुरु आज्ञा के बिना मैं इस कुयें से भी बाहर नहीं निकल सकूंगा, आप पहले गुरु से आज्ञा लेकर आये, पास में ही खड़े उपमन्यु के गुरु यह सब दृश्य देख रहे थे वे अपने शिष्य की एक-एक बाते सुनकर आनंदित हो रहे थे कि शिष्य हो तो ऐसा हो जो आज्ञा-अनुशासन का पालन करने वाला हो। देव की श्रद्धा-भक्ति बढ़ती जा रही थी। इंद्र सोच ही रहा था कि मैं इस गुरु-भक्त की सेवा कैसे करूं तभी गुरु बाहर से आवाज लगाते हैं कि उपमन्यु तुम बाहर आ जाओ। उपमन्यु गुरु की

आज्ञा को पाकर कुयें से बाहर आ जाता है। उपमन्यु के गुरु से इंद्र देवता कहते हैं- हे पूज्यपाद! मुझे आज्ञा दे दीजिए कि मैं सदैव उपमन्यु की सेवा, सहयोग करता रहूं तथा वह मेरी सेवा को सदैव स्वीकार करें। उपमन्यु को गुरु ने हृदय से लगा लिया। शिष्य आज्ञा, अनुशासन का पालन कर गुरु का उपकार करता है। गुरु ने भी उदार होकर इंद्र को सेवा में लगा दिया।

किसी के उपकार को चुका सके या न चुका सके परंतु कभी भी उपकार को भूलना नहीं चाहिए। हमेशा अपने उपकारी को स्मरण करते रहना चाहिए किसी भी परिस्थिति में उपकारी को नहीं भूलना चाहिए।

''**भगवती आराधना**'' ग्रंथ में आचार्य श्री शिवकोटि महाराज ने कहा है कि एक अक्षर को प्रदान करने वाले गुरु का भी सदैव ऋण रहना चाहिए, जो एक अक्षर प्रदाता के उपकार को भी भूल जाता है उसे नहीं मानता है वह मरलोक परलोक में श्वान होता है। यदि हम उपकारी का स्मरण न भी कर पाये तो भी कम से कम द्रोह पर न उतर आए। कृतघ्न व द्रोही नहीं बनना उपकार का बदला अपकार से चुकाना द्रोह है।

एक बार की बात है एक लकड़हारा था वह जंगल में लकड़ी काटने जा रहा था, तभी उसने दूर से देखा कि सामने से शेर आ रहा है वह घबरा गया और डर कर एक वृक्ष पर चढ़ गया, उसी वृक्ष के नीचे शेर आया उसके पैर से खून बह रहा था उसके पैर में बहुत बड़ा कांटा लगा हुआ था। लकड़हारा गरीब व अनपढ़ था, दयालु चित्त था, तुरंत देखता है दया से भींग जाता है तथा उपकार की भावना से वह वृक्ष से नीचे उतर जाता है और शेर के पैर का कांटा निकाल देता है। शेर कहता है-तुमने मेरा बड़ा उपकार किया मैं उस उपकार को चुकाने का इच्छुक हूँ। अत: जो लकड़ी तुम अपने सिर पर ले जाते हो वह तुम मेरी पीठ पर लाद देना मैं उसे तुम्हारे घर तक पहुंचा दूंगा। लकड़हारा लाद कर ले जाता उसे बहुत मुनाफा होता था। परंतु अब उसका लालच बढ़ने लगा और उसने शेर के ऊपर दोगुनी-चौगुनी लकड़ियाँ लादना शुरू कर दिया ऐसा करते-करते वह बहुत पैसे वाला हो गया। जब उसके पड़ौसी ने उसकी बदलती स्थिति देखी तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ और उसने पूछा-भाई! बात क्या है तुम इतने धनवान कैसे हो गये। तो लकड़हारा कहता है-कुछ मत पूछो, बस मेरे हाथ तो एक गीदड़ का बच्चा लग गया उसी के कारण अमीर हो गया हूं। शेर यह सब बात सुन रहा था कि मुझे गीदड़ का बच्चा

कहा। अब तो बात दूसरी ही हो गई वह शीघ्रता से जंगल चला गया, जैसे ही लकड़हारा लकड़ी लेने गया, शेर क्रोध पूर्ण स्वर में बोला-तुम शीघ्र ही अपनी कुल्हाड़ी को पैना करो और मेरी गर्दन पर चलाओ। यदि तुमने ऐसा नहीं किया तो मैं तुम्हें अभी खा जाऊँगा। लकड़हारा डर के मारे थरथराने लगा परंतु ''मरता क्या न करता'' अपनी जान बचाने के लिए वह कुल्हाड़ी को पैना करता है और शेर की गर्दन पर चला देता है। शेर की गर्दन उस के प्रहार से लटक गई। लकड़हारा अर्द्धमृतक सिंह से पूछता है आखिर तुमने ऐसा क्यों किया। शेर ने कहा-इसलिए किया ताकि तुम्हें शिक्षा मिल जाए कि उपकारी के उपकार को कभी अपकार से नहीं चुकाना चाहिए।

बंधुओ! शेर ने तो लकड़ी का गट्ठा उठाकर उपकार का कार्य किया परंतु लकड़हारे ने उसे गीदड़ जैसे शब्द से अपमानित कर उसका अपकार किया। इसीलिए शिक्षा देने हेतु सिंह ने ऐसा कदम उठाया।

कहने का तात्पर्य है उपकारी के उपकार को यदि उपकार से न चुका सको तो कोई बात नहीं परंतु उपकारी का अपकार कभी भी नहीं करना चाहिए।

श्रेणिक चरित्र में भी एक नेवले की कहानी आती है-एक बार की बात है एक पति-पत्नि थे उनके कोई संतान नहीं थी, एक दिन पत्नि को कहीं एक नेवला मिला, वह उसे घर ले आयी और बच्चे की तरह उसकी देखभाल करने लगी। वह हर पल उसका ध्यान रखती थी। कुछ समय पश्चात् पत्नि के एक बच्चा हो गया। अब वह नेवला उस बच्चे के पास ही रहता था। एक बार पत्नि खेत पर गई परंतु बच्चे के पास उसकी सुरक्षा हेतु नेवले को बांध गई। कुछ समय पश्चात् कहीं से एक काला नाग वहाँ आया जो धीरे-धीरे बच्चे की ओर बढ़ने लगा जैसे ही नेवले की दृष्टि उस पर पड़ी वह सावधान हो गया, उसने बच्चे की रक्षा के लिए सांप से भीषण युद्ध किया, युद्ध में साँप मारा गया परंतु नेवले के हाथ, पैर व मुंह खून से रचपच गया। शाम को जब पत्नि घर वापस आई तो दूर से ही नेवले को खून से लतपथ देख आग बबूला हो गई। हे भगवन्! इस दुष्ट ने अवश्य ही मेरे बच्चे को मार डाला है और ऐसा सोच वह नेवले के ऊपर बड़ा भारी पत्थर पटक देती है जिससे नेवला खत्म हो जाता है जब वह बच्चे के पास पहुँचती है तो देखती है कि मेरा बच्चा तो खेल रहा है और पास में सर्प मरा पड़ा है। उसे बात को समझते देर नहीं लगती कि इस नेवले ने तो मेरे बच्चे की रक्षा की है सत्य का साक्षात्कार होते ही

रोती है, पश्चाताप करती है, दु:खी होती है परंतु अब क्या हो सकता है। वह सोचती है कि बिना विचारे कभी कोई काम नहीं करूँगी। बंधुओं! तात्पर्य यह है कि जो हमारा उपकार करे उसका अपकार कभी भी नहीं करना चाहिए।

बंधुओं! थोड़ी सी उपलब्धि, ज्ञान पाकर व्यक्ति अपने आप को सब कुछ मान बैठता है। उपकारी के उपकार को भूल जाता है। वह हमारी उन्नति में बाधक न बन जाये। द्रोह छोटा होता है परंतु उसे जिंदगी भर तक भोगना पड़ता है। सारा संसार उस पर अंगुली उठाता है कि नेवले ने तो उस पत्नि का उपकार किया था उसके बच्चे की रक्षा की परंतु उस पत्नि ने नेवले के ही प्राण हरकर उसका बड़ा अपकार किया। कभी भी अपकार नहीं करना चाहिए। क्योंकि उसका परिणाम इस भव व परभव दोनों में बुरा ही होता है। इसलिए कवि ने भावना भायी है कि-''होऊँ नहीं कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे।''

हे भगवन्! मैं कभी भी न तो कृतघ्न बनूँ और न ही कभी मेरे अंदर द्रोह भाव उत्पन्न हो। सदैव उपकारियों के उपकारों को स्मरण करता रहूँ। कभी उपकार के बदले अपकार न करूँ। दूसरों का उपकार करने के निर्मल परिणाम सदा बने रहें।

इसी सद्भावना के साथ....।

''बोलिए मुनिसुव्रत नाथ भगवान की जय''

दिनांक 20-07-2008

रविवार, प्रात: 9.00 बजे   बोरीवली, मुंबई

दोष नहीं गुण वरण करूँ

बंधुओ!

कल हमने काव्य-6 की तृतीय पंक्ति के माध्यम से सीखा कि सदैव उपकारियों के उपकारों को स्मरण रखना चाहिए। आज कवि जुगलकिशोर जी चतुर्थ पंक्ति के माध्यम से कह रहे हैं- '**गुण ग्रहण का भाव रहे नित दृष्टि न दोषों पर जावे**'।

प्राय: संसारी प्राणी दोष दृष्टि रखता है। इसलिए हर वस्तु दोष युक्त ही नजर आती है। आचार्य भगवन् कहते हैं कि एक गिद्ध पक्षी होता है और एक कोयल होती है। गिद्ध पक्षी आकाश में कितनी ऊँचाई पर होता है परंतु इतनी ऊँचाई पर होकर भी दृष्टि वृक्ष के सुंदर फल पर नहीं होती अपितु मृत प्राणियों के मांस पर होती है जबकि कोयल वृक्ष पर बैठकर मीठे फल खाती है। हमारे दिगम्बर जैनाचार्यों की अर्वाचीन परंपरा में आचार्य श्री जिनसेन महाराज हुए हैं उनके विषय में उल्लेख मिलता है-कि उन्होंने जन्म से लेकर कभी भी वस्त्र ही नहीं पहने 8 वर्ष की अल्पवय में ही उनकी दीक्षा हो गई थी, इतनी छोटी अवस्था में ही वे विश्वपूज्य हो गये थे। वे ही जिनसेन महाराज अपने महापुराण ग्रंथ में लिखते हैं- ''**हंस बनो जौंक नहीं**'' हंस जो होता है वह नीर में से भी क्षीर-क्षीर को ग्रहण करता है व नीर-नीर को छोड़ देता है। अर्थात् जो प्राणी हंस की तरह दृष्टि रखते हैं। वे सारभूत बातों को जीवन में ग्रहण करते जाते हैं तथा असार की बातों को छोड़ते जाते हैं। जबकि जौंक होता है। वह गाय के स्तन से भी दूध नहीं अपितु खून को चूंसती है। इसी प्रकार जो दोषग्राही होता है वह अच्छाई को नहीं देखता, अवगुणों/दोषों पर ही उसकी दृष्टि होती है।

एक बार की बात है एक बहुत बड़े विद्वान थे उनका नाम अष्टवक्रग्रीव

था और उनका यह नाम इसलिए पड़ा क्योंकि उनक आठों अंग टेड़े-मेड़े थे। प्राय: राजा-महाराजा उनका सम्मान करते थे और उन्हें बड़ी-बड़ी राजसभाओं में बुलाया जाता था। एक बार किसी ऐसे राज्य के राजा ने बुला लिया जिनके राज्य में ज्ञान व ज्ञानी की पहचान नहीं थी। अष्टवक्रग्रीव खुशी-खुशी राजसभा की ओर जा रहे थे सोच रहे थे कि अमुक सभा में विद्वान सभासद् होंगे। जब व्यक्ति अतिथि के रूप में आता है तो अच्छी भावना लेकर आता है, मुझे लोग बैठायेंगे, पूछेंगे। आगन्तुक व्यक्ति को अतिथि कहा जाता है। वैदिक परंपरा में कहा जाता है-''**अतिथि देवो भवः**''। हमारे यहाँ अतिथि को सम्मान दिया जाता है। कोई आये तो उसका सम्मान करो या न करो, भेंट दो या न दो, भोजन कराओ अथवा न कराओ परंतु कम से कम बैठने की पूछ लेना चाहिए। कोई आया और यदि आपने आदर से पूछ लिया आईये, बैठिये। तो वह प्रसन्न हो जाता है। एक पुराना समय था जब घर पर यदि कोई आता था तो व्यक्ति द्वार पर खड़े होकर आगवानी करते थे। बोरी बिछाते थे, आदर सहित बैठाते थे।

हम लोग जब श्रेयांश गिरि में थे तो पहाड़ पर ही अधिकांश समय व्यतीत करते थे। कोई कहीं भी बैठ जाता था। वहाँ पर लकड़ी काटने वाले, पत्थर तोड़ने वाले, बकरी चराने वाले मिल जाते थे वे देखते थे कि महाराज आ रहे हैं तो वे अपने हाथों से सिला साफ कर देते थे। इस पर बैठिये, इस पत्थर पर रखकर लिखिये। ''**अतिथि देवो भवः**'' आगन्तुक को सदैव आदर देना चाहिए। जिस घर में आदर सम्मान की परंपरा है वह सदैव हरा-भरा रहेगा, निरंतर उसके यहाँ लोग आते रहेंगे तथा जिस घर में किसी का सम्मान नहीं होता वह कुछ समय में सूखे-वृक्ष की तरह हो जायेगा फिर वहाँ कोई भी आना पसंद नहीं करेगा। कदाचित् सूखे वृक्ष पर काग बैठ भी जाये तो भी लोग उसे अशुभ मानेंगे।

जैसे ही अष्टवक्रग्रीव राजसभा में पहुँचे तो उन्हें देखकर सभी सभासद् व मंत्रीमंडल आदि सभी हंस पड़े वे समझ गये कि इस राज्य के सभासद् संस्कारवान नहीं है। वे तो पूर्वाभ्यासी थे, कर्म के सताये थे अत: यथास्थान बैठ गये सभी के यथाविधि दो शब्द हुए। वे अपने दो शब्दों में बोले आज तो मुझे लग रहा है कि मैं किन्हीं चमारों की सभा में आ गया हूँ। क्योंकि आप लोगों की दृष्टि शरीर पर है गुणों पर नहीं। वे एक दोहा बोलते हैं-

चंदन पड़े चमार घर, निशदिन कूटे चाम।
चंदन विचारा क्या करे, पड़े नीच के धाम।।

चंदन की लकड़ी चमार के हाथ में आ जाए तो चमार क्या करेगा, चमड़ा कूटने के काम आयेगी, वह नहीं समझेगा कि यह पूजन में चंदन बनाने के काम आवेगी। वैसा ही दशा इस राज्य के लोगों की है। अष्टवक्रग्रीव के वचन सुनकर सभी सभासद्, मंत्रीगण व राजा शर्मिन्दित होता है व उनसे क्षमा याचना करते हैं। तब लोगों को समझ में आता है कि ज्ञानी, विद्वान की क्या कीमत होती है।

दुबारा जब उन्हें आमंत्रित किया गया तो वे बोले-मैं विद्वानों की सभा में जा सकता हूँ, अज्ञानियों की सभा में नहीं। राजा बोले-अब वह सभा बदल गई है ठीक है तब तो चलूँगा, अब तो बात दूसरी थी-जैसे ही वे सभा में पहुँचे-सभी ने मस्तक झुका लिया, यह वह सभा नहीं थी, जिसमें अज्ञानी लोग हो, अब सब कुछ बदल गया था। राजा ने कहा-सब कुछ वही है जो परिवर्तन है वह यह है जो कि अज्ञानता में थे, असंस्कारित थे वे अब ज्ञानवान व संस्कारित हो गये हैं। पहले अंधकार में थे आज प्रकाश में आ गये हैं पहले इनकी दोषग्राही दृष्टि थी अब गुणग्राही हो गई है यही भावना कवि जी भा रहे हैं-कि ''**गुण ग्रहण का भाव रहे**'' तथा दोषों से दृष्टि हट जाये।

यदि हमें देखना ही है तो गुणों को देखें हंस बने, गिद्ध न बने। हंस की तरह क्षीर-क्षीर को पी लें अर्थात् सारभूत को ग्रहण कर लें परंतु गिद्ध की तरह कुत्सित दृष्टि कभी भी न रखें। यह पंक्ति हमें संकेत दे रही है कि आप क्या देखना चाहते हो। संसार में आप जो ग्रहण करना चाहते हो वही मिलेगा, गुणों पर दृष्टि रखी है तो गुणवान बन जाओगे और यदि दोषों पर दृष्टि रखोगे तो दोषवान बन जाओगे। गुणी व दोषी बनना दोनों बातें हमारे हाथ में हैं। ''**मेरी-भावना**'' की एक-एक पंक्ति महत्वपूर्ण रहस्यों से भरी है। जितनी-जितनी गहराई में उतरते जाते हैं नया-नया मक्खन निकलता ही जाता है।

आप इस पंक्ति से गुणग्राही व दोष को छोड़ने की प्रवृत्ति को अपना लें तो हितपथानुगामी बन जायेंगे।

इसी भावना के साथ....।

''श्री 1008 नमिनाथ भगवान की जय''

दिनांक 21-07-2008

सोमवार, प्रात: 9.00 बजे बोरीवली, मुंबई

न्याय मार्ग अडिग बढूँ

भव्य बंधुओ!

"**मेरी-भावना**" जिसकी एक-एक पंक्ति अपितु एक-एक शब्द गहरे रहस्यों से आपूरित हैं। एक-एक शब्द गहन समुद्र की तरह है जिसमें उतरते जाओ तो भी कोई थाह नहीं मिलती तथा नये-नये चिंतन रूपी मोती उस समुद्र से निकलते ही जाते है। पंडित कवि जुगलकिशोर जी काव्य 7 के माध्यम से अपनी भावनाओं को विशाल रूप देते हुए कहते हैं-

कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे।
लाखों वर्षों तक जीऊँ या, मृत्यु आज ही आ जावे।।
अथवा कोई कैसा ही भय, या लालच देने आवे।
तो भी न्याय मार्ग से मेरा, कभी न पद डिगने पावे।।7।।

इस काव्य के माध्यम से कवि अपनी अंतर व्यथा को प्रकट कर रहा है- हे दीन दयाल! हे दीनानाथ! हे जिनेन्द्र देव! मैं बस इतना ही चाहता हूँ कि मैं न्यायवंत रहूं। अन्याय पूर्ण नहीं मेरा जीवन न्यायवंत हो। जहाँ न्याय है वहाँ सब कुछ है। जहाँ अन्याय है वहाँ अशांति है। व्यक्ति कभी-कभी अन्याय पूर्वक बहुत कुछ पा लेता है। अन्याय से प्राप्त सम्मान, प्रतिष्ठा अधिक समय तक नहीं टिकती। अन्याय अनीति से कमाई धन संपदा 10-11 वर्ष तक उपलब्धि दे सकती है परंतु 12वें वर्ष में समूल नष्ट हो जाती है। कवि प्रार्थना करता है-न्याय की सूखी रोटी, टूटी-फुटी झोपड़ी अच्छी है, न्याय के फटे वस्त्र भी अच्छे हैं। लेकिन अन्याय के मखमली वस्त्र भी नहीं चाहिए। "**कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे।**" महाराज! आज न्याय-नीति का जमाना नहीं है। किसी व्यक्ति ने मुझे आकर कहा। अपनी दृष्टि से अच्छा कह रहे हो मैंने कहा-सभी प्राणी अपने लिये

तो न्याय चाहते हैं और दूसरों के लिए अन्याय। स्वयं पर मुसीबत आये तो कहते हो न्याय कीजिए व दूसरों के लिए न्याय की कुछ भी बात नहीं। मैंने कहा हाँ-हाँ ठीक है संसार अपने लिए न्याय चाहता है पर महापुरुष सभी के प्रति न्याय करते हैं।

महाराज श्रेणिक (बिंबसार) इतिहास प्रसिद्ध महापुरुष हुए हैं। वे भगवान महावीर स्वामी की सभा के प्रमुख श्रोता थे। वे एक न्यायवंत राजा थे, सारे राज्य में उनके न्याय की प्रसिद्धि थी। उनका एक पुत्र था जिसका नाम वारिषेण था। वारिषेण सदैव धार्मिक विचारों से ओतप्रोत रहते थे, उन्हें व्रत, नियम, संयम व सादगी पसंद थी। वे हर अष्टमी व चतुर्दशी आदि पर्व के दिनों में श्मशान में जाकर निर्वस्त्र होकर ध्यान किया करते थे, कभी भयानक जंगली जानवरों से भरे जंगल में ध्यानारूढ़ हो जाते थे। एक दिन अचानक एक घटना घट गई। नगर में निरंतर चोरियाँ होने लगी, प्रयत्न करने पर भी चोर का पता नहीं लग रहा था, चारों ओर जागरूकता थी, उस ही रात्रि में राजमहल में किसी चोर ने चोरी की व महारानी चेलना के गले का हार चुरा लिया, वह चोरी करके भागा लेकिन कृष्ण पक्ष की रात्रि में, हार चमक रहा था, उस चमक को देखते ही द्वारपालों ने उसका पीछा किया। आगे-आगे चोर तथा पीछे-पीछे द्वारपाल भाग रहे थे। चोर भागते-भागते वहाँ से गुजरा जहाँ पर खड़े होकर वारिषेण ध्यान कर रहे थे। उसने सोचा द्वारपाल मेरे पीछे खड़े हैं उनसे बचना कठिन है अत: वह हार को वारिषेण के सामने फेंक वृक्ष की झाड़ियों में छिप जाता है। सैनिकों ने देखा कि हार तो वारिषेण ऐसा काम करेंगे। कभी-कभी व्यक्ति शीघ्र ही प्रभावित हो जाते हैं। सारे लोग हाथ बांधकर खड़े हो गये। क्यों? महाराजा श्रेणिक के बेटे ही ऐसे हो तो न्याय कौन करे? तभी किसी ने कहा-हमारे महाराजा न्यायवंत हैं वे अवश्य ही न्याय करेंगे। राजा श्रेणिक क्षत्रिय, वीर और पराक्रमी थे, मेरे बेटे ने ऐसा अन्याय किया है और न्यायासन पर बैठकर न्याय करना मेरा परम धर्म है। महाराजा श्रेणिक ने अपने सिपाहियों को आज्ञा दे दी कि वारिषेण का सिर उतार कर ले आओ। महाराजा श्रेणिक की इतनी कठोर आज्ञा सुनकर सारा मंत्रीमंडल विस्मित था लेकिन कोई उपाय नहीं था, राजाज्ञा को कौन टाल सकता था और सारे सबूत इस बात का संकेत दे रहे थे कि वारिषेण ही चोर हैं। जल्लाद राजाज्ञा के पालन हेतु तलवार लेकर वारिषेण के पास पहुँचते हैं और वार करते हैं परंतु जैसे ही तलवार से वार करते हैं तलवार फूलों के हार में बदल गई और ''सत्यमेव जयते'' की अनुगूंज प्रारंभ हो गई। सर्वत्र तेजी से

चर्चा फैल गई। चर्चा फैलते-फैलते राजमहल में पहुंच गई। राजा श्रेणिक मन ही मन बेटे की सत्यता से प्रसन्न थे। परंतु पुन: सैनिकों को आज्ञा देते हैं कि मेरे समक्ष पुन: वारिषेण के ऊपर वार किया जाए क्योंकि राजा का प्राण न्याय है। वारिषेण के ऊपर पुन: वार किया गया तो पुन: तलवार हार बन गई। झाड़ी में छिपा सूर्य चोर जो यह संपूर्ण दृश्य देख रहा था वह वारिषेण की ध्यान साधना व सत्य से अत्यंत प्रभावित हो जाता है तथा स्वयं बाहर आ जाता है और कहता है कि महाराज चोरी वारिषेण ने नहीं मैंने की है। मैं ही असली चोर हूँ। राजा सारे मंत्रीमंडल को देखते हैं। मंत्री भी कहते हैं। हाँ-हाँ यही वह प्रसिद्ध चोर है। जिसकी पिछले कई दिनों से खोज जारी है। महाराजा श्रेणिक जब न्याय करने खड़े हुए तो यह भी नहीं देखा यह मेरा पुत्र है। अत: उनके न्याय की सर्वत्र जयजयकार हुई।

न्याय के कितने सारे उदाहरण आते हैं-''लक्ष्मी आवे या जावे''। ऐसे-ऐसे हमारे देश में वीर प्रतापी हुए जिन्होंने लोभ लालच दिखाये जाने पर भी न्याय को नहीं छोड़ा। परंतु कभी-कभी व्यक्ति लोभ-लालच में आकर न्याय-अन्याय को भी भूल जाता है। झाँसी की रानी महारानी ''लक्ष्मीबाई'' जब उनके ऊपर राज्य भार आ गया जब राज्य संचालन के दौरान एक बार अंग्रेजों ने उनके किले को चारों ओर से घेर लिया, बहुत युद्ध करने पर भी वे सफल नहीं हो पा रहे थे तब अंग्रेजों ने ''फुट-नीति'' को अपनाया। चारों ओर पहरेदार खड़े थे, उन्होंने खोज की, कि इनमें से कमजोर लालची कौन है। एक द्वार पर लोभी-लालची द्वारपाल मिल ही गया। अंग्रेजों ने उसे स्वर्ण से भरी थैली दिखाई, थैली लो अन्यथा गोली खानी पड़ेगी। द्वारपाल तो लालची था ही वह स्वर्ण की थैली को स्वीकार कर लेता है और अंग्रेजों को अंदर जाने का रास्ता दे दिया। अंग्रेजों की सेना अंदर प्रवेश कर जाती है। न्याय छूटा तो संकट आ जाते हैं। एक व्यक्ति अन्याय करता है, सारे लोगों को सजा भोगनी पड़ती है। 'महारानी लक्ष्मीबाई' की हार उसी दगाबाज द्वारपाल के कारण लड़ते-लड़ते ही मृत्यु हो गई।

कभी-कभी एक व्यक्ति न्याय करता है और उपलब्धियाँ सभी को मिलती है। श्रेणिक चरित्र में ऐसा उल्लेख मिलता है जिसमें एक बार महाराजा श्रेणिक के समक्ष एक समस्या रखी गई। प्रसंग था दोनों महिलाओं का जो एक ही बेटे को अपना बताती थी। एक महिला का कहना था इसे मैंने जन्म दिया है यह मेरा बेटा है तो दूसरी महिला कहती थी कि नहीं यह तो मेरा है। दोनों एक ही पति

की पत्नियाँ थी। राजा श्रेणिक ने पूछताछ की, उन्हें बहुत समझाया परंतु वे अपनी-अपनी बात पर अडिग थी। महाराजा श्रेणिक कुछ भी निर्णय ही नहीं कर पा रहे थे, यदि कोई वस्तु हो तो बांट भी दी जाए। महाराजा श्रेणिक के पुत्र अभय कुमार जो कि अत्यंत कुशाग्र बुद्धि थे। उन्होंने कहा पिताजी! मेरे रहते आप परेशान न हो यह निर्णय मैं ही किये देता हूँ। बेटे के रहते आप चिंतित हो यह तो अनुचित है तथा मेरे लिए शोभनीय भी नहीं है। पितृ सेवा के भावों से इतिहास भरा पड़ा है। बेटे की बात सुन महाराजा श्रेणिक प्रसन्न होते हैं। फलत: (निर्णय) न्याय प्राप्त करने हेतु दोनों पत्नियाँ अभयकुमार के समक्ष पहुँचती हैं। कुमार दोनों पत्नियों को पास बिठाता है परंतु सही उत्तर नहीं मिलता। बच्चे का पालन करने वाली माँ असली लगती थी। दोनों का रो-रो कर बहुत बुरा हाल था अब निर्णय कैसे हो। तभी अभयकुमार ने एक युक्ति निकाली वे बोले-बहुत देर से मैं आप लोगों की बातें सुन रहा हूँ परंतु कुछ निर्णय नहीं हो पा रहा है इसलिए सबसे श्रेष्ठ उपाय यही है कि मैं इस बेटे के दो टुकड़े किये देता हूं आधा आप ले लेना, आधा दूसरे को दे देना। इतने शब्द सुनते ही थे कि असली माँ चीख उठती है और मूर्च्छा खाकर गिरती है। लोग उसे उठाते हैं तो कुछ होश में आते ही वह कुमार से कहती है। हे कुमार! नहीं-नहीं ऐसा मत करना मुझे नहीं चाहिए यह मेरा बेटा नहीं, मेरी सौत को ही दे देना। कुमार घोषणा कर देते हैं कि बच्चे की असली माँ यही है न्याय के मार्ग पर मुसीबतें आ सकती है, कष्ट भी आ सकते हैं। परंतु अंतत: न्यायवान ही सुख को पाते हैं।

एक Income Tax Officer थे। वे भी न्याय की कमाई पर विश्वास रखते थे। इतने बड़े Officer होकर भी साईकिल पर चलते थे। पुराने मकान में रहते थे। काफी प्रयत्न किया परंतु उन्होंने स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कहा-''**लक्ष्मी आवे या जावे तो भी न्याय मार्ग से मेरा कभी न पद डिगने पावे**'' वे कहते थे-अपनी जिंदगी उपकार में लगाना है। न्यायवंत धन-दौलत की कीमत नहीं करते। न्याय का एक पैसा भी क्यों न हो हजारों की कीमत करेगा। ऐसे-ऐसे लोग हैं जो बोलते हैं-जब आये थे तो कैसे थे और अब कैसे हैं।

बीना में नमक वाले हैं जो 1-2 किलो नमक बेचते थे। उनका सिद्धान्त था असली ही बेचूँगा, सही कीमत पर दूँगा। जब भी वे दुकान लगाते थे उनकी बहुत तेजी से बिक्री होती थी और धीरे-धीरे वे एक नगर सेठ बन गये।

कहने का तात्पर्य यह है न्याय के विषय में जितना भी कहा जाए कम है।

न्यायवंत को कष्ट, दुःख, तकलीफ तो सहना पड़ सकती है परंतु वह न्याय अंत में सुख व शांति को प्रदान कराने वाला होता है। न्याय की महिमा बहुत बड़ी होती है। न्याय से तलवार भी फूलों की माला तथा सूली सिंहासन बन जाती है। अग्नि भी शीतल जल बन जाती है। न्याय में देर तो हो सकती है पर अंधेर नहीं होता। न्याय से कमायी गई इज्जत, सम्मान स्थायी रहता है। जबकि अन्याय से यदि इज्जत, सम्मान मिल भी जाए तो वह क्षणिक ही होता है। अन्याय का सिंहासन जमीन पर ला देता है और न्याय की जमीन भी सिंहासन पर बैठा देती है। राजा वसु ने अन्याय किया फलस्वरूप वे नरक में गये तथा नारद ने न्याय को अपनाया तो वह स्वर्ग गया।

'**न्याय**' के विषय में जैन शास्त्रों के अलावा अन्य हिन्दु शास्त्रों में भी उल्लेख मिलता है न्याय की महिमा सर्वत्र गायी गई है। बंधुओं! आप भी उस ''न्याय'' को अपने जीवन में उतार कर सुख-शांति को प्राप्त करें।

इसी भावना के साथ....।

''1008 नेमिनाथ भगवान की जय''

दिनांक 22-07-2008

मंगलवान, प्रात: 9.00 बजे बोरीवली, मुंबई

सुख-दुख में समताभाव धरूँ

भव्य बंधुओ!

जब हृदय में विशालता, उदारता होती है तो प्राणी मात्र के प्रति हित की भावनायें उत्पन्न होने लगती हैं। कवि जुगलकिशोर जी ने प्राणी मात्र के हितार्थ जो ''**मेरी-भावना**'' लिखी वह मेरी ही नहीं जन-जन की भावना बन गई और आज सर्वाधिक प्रचलन में है काव्य 8 के माध्यम से कवि कहते हैं-

''होकर सुख में मग्न न फूले, दुःख में कभी न घबरावे।
पर्वत नदी श्मशान भयानक, अटवी से नहीं भय खावे।।
रहे अडोल अकंप निरंतर, यह मन दृढ़तर बन जावे।
इष्ट वियोग अनिष्ट योग में, सहनशीलता दिखलावे।।''

''**मेरी-भावना**'' की ये चार पंक्तियाँ जीवन के रहस्य को उद्घाटित करती है। जीवन के दो ही मुख्य पहलू हैं सुख या दुःख। इस प्राणी जगत में दो ही प्रकार के व्यक्ति हैं या तो कोई दुःखी हैं या सुखी। किसी घर में शहनाई सुनाई देती है तो कहीं चीत्कार। किसी घर का सुप्रभात भगवान के नामोच्चार से होता है तो कहीं लड़ाई-झगड़े से। हर्ष-विषाद बुरा नहीं है। सुख आता है तो कुछ देकर जाता है। दुःख हमारे हाथ की बात नहीं है। व्यक्ति सोचता है, हमारे प्रयास से सुख-दुःख मिलता है। परंतु तीर्थंकर परमदेव कहते हैं-सुख व दुःख दोनों तुम्हारी ही करनी का फल है। सुख व दुःख देने वाला कोई अन्य नहीं है। यदि सुख देने से मिलने लग जाए तो व्यक्ति सुख ही सुख मांगेगा और दुःख का नाम भी नहीं रहेगा। लेकिन आचार्य भगवन् अमितगति महाराज अपने सामायिक पाठ में लिखते हैं-

स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा, फलं तदीयं लभते शुभा शुभम्।
परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं, स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा।।

व लिखते हैं जो लोग इस कल्पना में डूब जाते है कि सुख देने वाले भगवान है या अन्य कोई वस्तु तो निश्चित है कि वह अपने वास्तविक स्वरूप को नहीं समझ पायेगा। यदि देने से सुख-दुःख तो वह लेन-देन की वस्तु हो जाए। फिर अपनी करनी का अस्तित्व ही नहीं रहेगा। फिर तो बड़े से बड़ा पाप करने वाला सुखी नजर आना चाहिए। बड़ी से बड़ी धर्म साधना करने वाला दुःखी नजर आना चाहिए। तत्कालता में देखे तो बड़े से बड़ा पाप करने वाला भी सुखी नजर आ सकता है।

दो भाई थे पिता की मृत्यु बेला में संपत्ति दोनों बच्चों में बांट दी गई। दोनों के विचार परस्पर (change) थे। सोच भिन्न-भिन्न था। एक का विचार था कि जीवन में सुख-शांति, एशो आराम से मिलती है। दूसरे का विचार था कि जीवन धर्म से सुखी होता है। अतः दूसरा वाला भाई धर्मात्मा था। वह संतों के प्रवचन सुनता था, दीन-दुःखियों की सेवा करता है, व्रत उपवास करता था, व्रत-नियम-संयम का पालन करता था। धीरे-धीरे समय निकलता गया और अपार धन-संपदा भी क्षीण हो गई तथा ऐसा समय आ गया कि खाने-पीने को दाना भी नहीं रहा, छोटा भाई सहयोग लेने बड़े भाई के घर पहुंचा बोला भैय्या कुछ मेरी सहायता करो, दिन खराब आ गये हैं। जो भी था बिक गया, कुछ भी नहीं रहा, मुझे किसी कार्य में लगा दो। बड़ा भाई कहता है-मैंने, तुझे अनेक बार समझाया था कि धर्म से कुछ भी फायदा नहीं, धर्म से शांति नहीं मिलती लेकिन तुमने मेरी कुछ भी बात नहीं मानी व भगवान की पूजा में सारा समय लगा दिया और ये दिन आ गये। छोटा भाई गरीब जरूर हो गया था परंतु उसके हृदय में अब भी धार्मिकता थी। वह बोला-जो भी मिलता है वह सब कुछ धर्म से ही मिलता है यह अकाट्य विश्वास है, धर्म से कभी किसी पर विपत्ति, संकट नहीं आते अपितु दूर होते हैं। यदि धर्म के संकट आने लग जाए तो संकट दूर कहाँ होगा। बड़ा भाई कहता है-मैं तुम्हारी बात तो मानूंगा परंतु वही जो मानने लायक हो। क्या तू मुझे नहीं देख रहा कि मैं कभी भी मंदिर नहीं जाता, दर्शन, पूजन नहीं करता। फिर भी पिता की दी हुई संपत्ति में बढोतरी ही की है घटाई नहीं है। छोटा भाई कहता है-कि भैया! यह सब पुराना पुण्य है, नया कुछ भी नहीं। बड़े भाई को अपने छोटे भाई की बात कुछ अच्छी नहीं लगी वह बोला मैं तुम्हारी बात को सत्य कैसे मानूं। छोटा भाई बोला चलो हम अपना निर्णय मंदिर में विराजे निर्ग्रंथ गुरु के समक्ष करेंगे जो विशेष दिव्य ज्ञान के

धारी हैं। दोनों दूसरे दिन प्रात:काल मुनिराज के पास जाने के लिए निकलते हैं- छोटा भाई प्रात: होते ही जैसे ही अपने घर से निकलता तो रास्ते में उसे कांटा लग गया, जैसे-तैसे धीरे-धीरे वह मंदिर जी तक पहुँचा। यहाँ बड़ा भाई वेश्यालय से निकलता है तो रास्ते में उसे अशर्फियों से भरी थैली मिल जाती है। वह खुश हो जाता है। जब वे दोनों भाई निर्णय करने हेतु महाराज के पास जाते हैं तो महाराज को नमोस्तु करते हैं। छोटा भाई पूछता है-हे गुरुदेव! हम आपकी शरण में आये हैं। कृपया बताइए कि धर्म का फल क्या है वह कर्म का फल क्या है? महाराज बोले-

धर्मः सर्व सुखाकरो हितकरो धर्मं बुधाश्चिन्वते,
धर्मेणैव समाप्यते शिवसुखं धर्माय तस्मै नमः।
धर्मः नास्त्यपरः सुहृद भव भृताम् धर्मस्य मूलं दया,
धर्मे चित्त महं दधे प्रतिदिनं हे धर्म मां पालय।।

अर्थात् धर्म ही सब सुखों की खान है, हितकारी है वह शिवसुख मोक्ष को देने वाला है, धर्म ही सच्चा मित्र है।

बड़ा भाई कहता है-महाराज! मेरा छोटा भाई इतना धर्म करता है, पूजा-पाठ करता है फिर भी दु:खी है। मैं व्यसनी हूँ फिर भी अमीर हूँ। महाराज कहते हैं- यह सुख-दु:ख सब पूर्व कमाई का फल है। पहले तुमने अच्छा किया तो अच्छा फल मिल रहा है आज वर्तमान में जो बुरे बीज बो रहे हो तो बुरा ही फल मिलेगा और तुम्हारे छोटे भाई ने पहले कुछ बुरा किया था वह उसका फल भोग रहा है और आज यह अच्छा कर रहा है तो भविष्य में इसे अच्छा फल मिलेगा।

अगर ऐसी बात है तो इसे काँटा और मुझे पैसों, अशर्फियों से भरी थैली मिली है ऐसा क्यों हुआ? महाराज बोले-इसे कांटा लगा। तो इसके पुण्य रूप धार्मिक भावों से मृत्यु, कांटे में बदल गई। जहाँ से यह आ रहा था वहाँ रास्ते में एक नदी पड़ती है। उसे पार करने के लिए पत्थर पर पैर रखकर निकलना पड़ता था परंतु पैर में कांटा लगा होने के कारण आज उसने पत्थर पर पैर नहीं रखा उस पत्थर के नीचे बड़ा सर्प था। यदि वह पत्थर पर पैर रखता तो सर्प उसे डंस लेता और उसकी मृत्यु हो जाती। अत: बड़ा कर्म, छोटे में बदल गया और तुम्हें आज के दिन राज्य मिलने वाला था। परंतु तुम्हारे पाप कर्म के कारण राज्य, छोटी सी सोने से भरी थैली में बदल गया। आज तुम्हारे द्वार पर राजा का हाथी आया था, राजा की मृत्यु के पश्चात् उनकी गद्दी खाली थी। हाथी तुम्हारे गले में माला डालता परंतु तुम

उस समय वेश्यालय में थे। पाप के कारण पुण्य क्षीण हो गया। जब बड़ा भाई अपने घर गया तो उसे पता चला कि सचमुच में मेरे घर के पास राजा का हाथी आया था। लोगों ने बताया कि वह बहुत देर तक तुम्हारे घर के द्वार पर खड़ा रहा परंतु तुम नहीं थे तो आगे बढ़ गया और दूसरे के गले में माला डाल दी। आज तो तुम्हारा राजतिलक होने वाला था। जब बड़े भाई को सत्य का ज्ञान हुआ तो वह नास्तिक से आस्तिक बन गया।

सुख धर्म से मिलता है। अज्ञानी व्यक्ति सुख के आने पर, संपदा के होने पर, बाह्य उपलब्धियों के होने पर धर्म की कीमत नहीं समझता। जिससे सुख संपदा मिलती है। उसी को भूल जाता है।

एक बार की बात है एक नगर में एक गरीब व्यक्ति रहता था वह चने बेचकर अपने उदर की पूर्ति करता था। परिवार चलाता था, एक दिन नगर के मंदिर में एक त्यागी/ब्रह्मचारी जी आये। वे मंदिर में ही रूके परंतु किसी ने उन्हें पूछा तक नहीं कि कौन है? कहाँ से आये हैं? एकाद कोई पूछने वाला मिला भी तो वह भी पूछकर आगे बढ़ गया। ३ दिन हो गये ब्रह्मचारी जी का भोजन नहीं हुआ किसी ने उन्हें पूछा नहीं। तभी वह चना बेचने वाला वहाँ से निकला, उसने ब्रह्मचारी जी को देखा तो पूछा ब्रह्मचारी जी आप कब आये भोजन हुआ कि नहीं शरीर आपका कमजोर दिख रहा है। ब्रह्मचारी जी मुस्कुरा दिये। चने वाला समझ गया कि उन्होंने भोजन नहीं किया। ब्रह्मचारी जी बोले-जब लाभान्तराय कर्म का क्षयोपशम होगा तभी तो मिलेगा, उदय चल रहा है तो कैसे मिलेगा, आज चौथा दिन है। बेचारा गरीब पिघल गया। उसने कहा-भैय्या जी मेरा व्यापार चना बेचने का है यदि आप चना का भोजन स्वीकार करें तो आपको आमंत्रण देता हूँ मेरे घर चलें। ब्रह्मचारी जी बोले-हम त्यागी हैं। यह हिसाब-किताब नहीं लगाते कि चीज मूल्यवान है या कम मूल्य की। गोचरी वृत्ति से जो दिया जाए वह स्वीकार कर लेते हैं। वह चने वाला कहता है-आज मैं अपने हाथों से अतिथि को दान दूंगा मेरा घर पवित्र हो जाएगा, वह द्रव्य से गरीब जरूर था, परंतु भाव गरीब नहीं था। भावों का उदार था वह हर्ष के साथ भैय्या जी को घर ले गया। वह विनय व आदर के साथ उन्हें चना खिलाता है। ब्रह्मचारी जी भोजन करने के उपरांत अपने स्थान पर चले जाते है। यहाँ चने वाला अपने चने बेचने बाजार की ओर बढ़ता है। उसने देखा रोज 10 रूपये के चना बेचते थे आज चना 10 रूपये के बेच भी दिये फिर भी चना शेष बचे हैं।

धर्म में जो धन लगता है वह घटता नहीं अपितु बढ़ता है। उसने दूसरे दिन भी ब्रह्मचारी जी को भोजन करा दिया। अब पुन: चने बेचने में फायदा हुआ 10 के 10 रूपये भी बचे और चना भी। वह सोचता है यह अच्छा है, अब तो रोज भी करायेंगे तो कोई बात नहीं। वह रोज-रोज ब्रह्मचारी जी को भोजन कराने लगा। ब्रह्मचारी जी उसके यहाँ चने खाते और अपनी धर्म साधना करते। वह चने वाला सोचता-मेरा दाम का दाम सुरक्षित है और धर्म का धर्म भी होता है। अब तो कोई भी व्रती आये उसको भोजन कराऊंगा। एक दिन ऐसा आया कि ब्रह्मचारी जी को बाहर जाना था। उन्होंने चने वाले गरीब से कहा-मैं संध्या काल में यहाँ से निकल जाऊँगा, कोई अतिथि यहाँ से भूखा न जाये इस बात का ध्यान रखना। चने वाले ने कहा-जो आज्ञा, मेरे घर से कभी कोई भूखा नहीं जायेगा। एक बात का और भी ध्यान रखना जीवन में बुरे दिन भी आते हैं और अच्छे दिन भी आते हैं। यदि हाथ में कुछ भी न हो तो अतिथि सेवा कैसे करेंगे। मैं यहाँ वेदी पर एक यंत्र बनाता हूँ। उस पर १ रूपये का सिक्का तुम्हें अवश्य मिलेगा, जितनी आवश्यकता हो उतनी बिंदी लगाते जाना तुम्हें उतना रूपया मिल जायेगा। वह चने वाला परीक्षा करने हेतु जाता है। तो सचमुच उसे वेदी पर 1 रूपया मिलता है वह उसे उठा लेता है। अब उसे याद आता है। कि ब्रह्मचारी जी ने बोला था जीरो लगाते जाना। वह इस बात की परीक्षा हेतु एक अंक के आगे एक जीरो लगाता है तो 10 हो गये, उसे दस रूपये बैठे-बैठे मिल गये। वह सोचता है-दिन भर गली-गली घूमना पड़ता था तब जाकर 10 रूपये कमा पाता था यहाँ तो बैठे-बैठे ही मिल गये। अब कुछ लालच बढ़ा दूसरे दिन और 10 के आगे उसने एक और जीरो लगा दिया तो 10 के 100 हो गये। वह बहुत खुश हो गया उसे जीरो लगाने की बात जम गई वह रोज 1-1 जीरो बढ़ाता जाता और 100 से 1000 हजार से दस हजार व दस हजार से लाख तक हो गये अब क्या था। आलीशान भवन तैयार हो गया उसके उन पैसो से बड़े-बड़े व्यापार प्रारम्भ हो गये। कारखाने, मिलें खुल गई। लाखों, करोड़ों का स्वामी हो गया। वइ इतना ठनेल हो गया कि उसे अब मंदिर तक जाने की फुर्सत नहीं रही। बड़ा नगर सेठ बन गया। किसी भी वस्तु का उद्घाटन होता तो उन्हें बुलाया जाता था। गरीबों का कोई रिश्तेदार नहीं होता कि सांस लेने की फुर्सत भी नहीं रही फिर भगवान कहाँ याद रहने वाले थे। प्रतिदिन वेदी से दस लाख रूपये नौकर को भेजकर मंगा लेता था। उसका लालच निरंतर बढ़ता ही जा रहा था। एक दिन

ब्रह्मचारी जी पुन: आ गये। पहले दिन तो ब्रह्मचारी जी का उपवास हो गया दूसरे दिन उपवास का पुन: नम्बर आ गया। अब ब्रह्मचारी जी ने लोगों से पूछा कि यहाँ जो चना बेचने वाला आता था वह कहाँ गया उसकी झोपड़ी भी नहीं दिख रही यहाँ तो बड़े-बड़े आलीशान भवन दिखाई देते हैं। एक सज्जन बोले-ब्रह्मचारी जी, उसे चना बेचने वाला मत कहना वे तो नगर सेठ हो गये हैं। उनका ही यह भवन बना है। ब्रह्मचारी जी ने पूछा-वे मंदिर कब आते हैं। वह बोला-मंदिर तो वे आते ही नहीं है। क्या उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं है। स्वास्थ्य तो ठीक है परंतु अभी वे अमुक स्थान पर उद्घाटन के लिए गये हैं। कभी मीटिंग में जाते हैं इसलिए फुर्सत नहीं। वे बड़े आदमी हैं इसलिए नहीं आते, एक आदमी अवश्य उस वेदी में रहता है। दूसरे कोई लोग वेदी के पास नहीं जाते वे तो दूर से ही दर्शन करते हैं। ब्रह्मचारी जी को पता चला कि दस लाख रूपये वेदी पर से रोज जाते हैं। इन्हीं रूपयों ने चने बेचने वाले का सत्संग धर्म छुड़ा दिया। पता लगाया तो पता चला कि चने वाले का न केवल मंदिर छूटा अपितु वे तो बड़े सेठ होकर शराबी हो गये, नृत्यकी के नृत्य देखने लगें पहले भरपूर करूणा थी और अब रास्ते से निकलते हैं तो दीन-दु:खियों को धक्का दे देते हैं। ब्रह्मचारी बहुत सोचते रहे-सेठजी को समाचार देकर बुलाया पर वे आने के लिए तैयार नहीं हुए वे बोले-मैं किसी ब्रह्मचारी को नहीं जानता। ब्रह्मचारी जी समझ गये-गाड़ी लाईन से बाहर है वे तुरंत वेदी के पास गये और एक जीरो मिटा दिया। एक जीरो मिटाते ही मील में आग लग गई। दूसरे दिन भी सेठ जी नहीं आये तो ब्रह्मचारी जी ने एक और जीरो मिटा दिया फलत: उनकी किसी दुकान को लोगों ने लूट ली। फिर एक जीरो मिटाया तो घर में चोरी हो गई। सारा माल, खजाना चोर ले गये। एक जीरो और मिटाया तो अमुक दुकान में रेड़ पड़ गयी। अंत में जिस भवन में सेठजी रहते थे उसकी भी नीलामी हो गई। चना बेचने वाले ने सोचा कि मुझे तो इतना नुकसान होता जा रहा है चलो मंदिर चलकर वहाँ से पैसा लेकर के आता हूं। जैसे ही वह मंदिर पहुँचा। वहाँ ब्रह्मचारी जी खड़े थे। ब्रह्मचारी जी को देखते ही चने वाला पहचान गया बोला-भैय्या जी, आप वही है न? हाँ! वही हूँ आप कब आ गये? 7 दिन हो गये। आपका भोजन पानी। जब पुण्य होगा तभी तो मिलेगा। चलिये, मेरे घर चलिए, नहीं चल सकता क्योंकि आपको दुर्व्यसनों में आसक्त है। आपका दिया हुआ आहार नहीं ले सकता। चने वाले ने हाथ जोड़े-क्षमा मांगी। सारे जीरो मिटाते-मिटाते 1 का अंक शेष रह गया। सेठजी

(चने वाला) चरणों में पड़ गये, आंखों से आंसू बहाता है। रो-रोकर वर्तमान की स्थिति सुनाता है, भूतकाल कैसे बीता सुनाओ, भूत में कहीं तुम भी तो भूत नहीं बन गये थे। वह सेठ जी कहते हैं-हाँ भूत ही बन गया था। कवि कहता है-

"होकर सुख में मग्न न फूले, दु:ख में कभी न घबरावे।"

जब जीवन में सुख के दिन आते हैं तो व्यक्ति को अभिमान हो जाता है और वह सुख-सुविधाओं में जीवन गंवा देता है। भोगों में जीवन बर्बाद हो जाता है और दु:ख के दिन आते हैं तो आंसू बहाता है। कहा जाता है-

दु:ख में सुमिरन सब करे, सुख में करे न कोय।
जो सुख में सुमिरन करे, दु:ख काहे को होय।।

बंधुओ! व्यक्ति दु:ख के दिनों में भगवान को याद करता है। धर्म का स्मरण करता है। जब दु:ख के दिन बीत जाते हैं तो व्यक्ति भगवान, कर्त्तव्याकर्त्तव्य व धर्म को भूल जाता है। यही सबसे बड़ी भूल है। सुख में अहंकार में आकर हे भगवन्! आपको धर्म को व कर्त्तव्य को न भूल पाऊँ। दु:ख में भी कर्त्तव्यों को भूल जाऊँ, चिंता/Tension में समय बर्बाद न कर दूं। कभी-कभी व्यक्ति पाप के उदय में भी पाप को नहीं छोड़े और पापानुबंधी पाप बांध लेते हैं। भिखारी को देखो-दो-दो पैसे मांग कर धन एकत्रित करता है और उस धन से भी वह उदय पूर्ति न करके जुआ खेलता है, शराब पीता है, व्यसन करता है और पाप के उदय में पाप ही कमाता है। लोग ऐसे भिखारियों को करूणादान देते हैं परंतु इसका अर्थ यह नहीं कि आप उन्हें पैसे दान में दें क्योंकि वह उन पैसों का यदि दुरूपयोग करेगा। व्यसनों में लगायेगा तो पाप के भागी आप ही बनेंगे इसलिए ऐसे गरीब लोगों को ही अपना करूणा पूर्वक भोजन करा दीजिए अथवा किसी व्यापार में लगा दीजिए जिससे वे अपनी आजीविका चला सके अथवा औषधि करा दीजिए। परंतु पैसे कभी नहीं देना चाहिए।

कहने का तात्पर्य यह है कि व्यक्ति एक तो पाप कर्म से दु:खी है, फिर भी उसके कभी विचार ही नहीं होते कि भगवान के दर्शन करूँ, पूजा कर लूं, णमोकार की जाप कर लूं। व्यक्ति सारा समय आँसू बहाते-बहाते निकाल देता है और जिंदगी को यूं ही समाप्त कर देता है। कवि यही बात कह रहे है-कि दु:ख में कभी न घबराऊँ अपने कर्त्तव्य पर अड़िग रहना चाहिए। जीवन को सहनशील बनायें, ये न सोचे कि सहन नहीं होता, तकलीफ के दिन में बुरे विचारों में न उतरे। पाश्चात्य

संस्कृति है दुःख के दिन आते हैं तो व्यक्ति आत्म-हत्या के विचार बनाने लग जाता है। जैन धर्म कहता है कि ये तो महापाप होगा। यदि विचार ऐसे रहे तो भविष्य इससे भी बुरा होगा। शरीर तो छूट जाता है पर कर्म नहीं। कर्म का बंध शरीर में नहीं आत्मा में होता है बहुत से लोग Suiside कर लेते हैं परंतु फिर भी दुःख से नहीं बच पाते। इसीलिए यदि बुरे दिन भी आ जाये तो भी सत्संग को नहीं छोड़ना चाहिए। बुरे दिनों में भी विपरीत विचार नहीं लाना चाहिए तथा परमात्मा को सदैव स्मरण करना चाहिए। परमात्मा की भक्ति, गुरु की सेवा, व्रत, नियम, संयम के पालन से एक दिन बुरे दिन भी बदल जायेंगे।

''**सुख में फुलना व दुःख में कूलना**'' ये दोनों बातें ही आत्मा का अहित करने वाली हैं इसलिए दोनों में साम्यभाव को स्थापित करना चाहिए तभी समीचीन मार्ग व लक्ष्य की सिद्धि संभव है।

इसी भावना के साथ....।

''जय बोलिए 1008 श्री पार्श्वनाथ भगवान की जय''

दिनांक 23-07-2008

बुधवार, प्रातः 9.00 बजे   बोरीवली, मुंबई

सहनशीलता आत्मसात् करूँ

भव्य बंधुओ!

कल हमने देखा कि जीवन में चाहे जितना सुख आ जाए अथवा कितना भी बड़ा दु:ख क्यों न आ जावे फिर भी हर्ष में फूलना नहीं व दु:ख में कूलना नहीं, अपितु साम्य भाव रखना। क्योंकि समता से ही सच्चा सुख मिलता है ऐसा शाश्वत सुख जो मिलकर फिर छूटता नहीं। काव्य-8 की आगे की पंक्तियों में कवि कहता है-

''पर्वत, नदी, श्मशान भयानक, अटवी से नहीं भय खावे''।

अर्थात् चाहे पर्वत पर चढ़ना पड़ जाये, चाहे किसी नदी को पार करना पड़े, भूत-प्रेतों से युक्त श्मशान भूमि हो या भयानक अटवी-घनघोर जंगल का भी सामना करना पड़ जाये तो भी भय किंचित् मेरे पास न हो।

जब हम अध्यात्म जगत की ओर दृष्टिपात करते हैं तो संत योगी जनों का स्मरण हो जाता है। संतजनों की साधना निर्भयता की जीवंत प्रतिमूर्ति होती है। बड़े-बड़े ऊँचे-ऊँचे पर्वतों, जिन पर आरोहण करना अतीव दुर्लभ प्रतीत होता है ऐसे बड़े-बड़े पर्वतों पर भी अपनी आत्म साधना के इच्छुक संत जन निर्भयता से जाते हैं और आत्मा का ध्यान करते हैं। यदि आपके समक्ष किसी पर्वत पर चढ़ने का प्रसंग आ जाए तो आप घबरा जायेंगे। कभी-कभी देखा जाता है जो यात्रीगण गिरनारजी या शिखरजी की यात्रा करना चाहते हैं। पहले तो वे पर्वत की ऊँचाई को देखकर ही घबरा जाते हैं कि इतना बड़ा पहाड़ हम कैसे चढ़ पायेंगे परंतु अपने आराध्य के प्रति भक्ति कुछ साहस व संबल प्रदान करती है और व्यक्ति जिसकी कल्पना से भी घबराते हैं ऐसे पर्वतों पर भी आसानी से चढ़ जाते हैं। और जब उनकी वंदना पूरी हो जाती है तो कहते हैं-हमें तो विश्वास ही नहीं होता कि हम

इस पर्वत पर जाकर आये हैं। यह शक्ति कहाँ से आ गयी। भगवत् भक्ति ने प्रेरणा दी। कवि कहता है भगवन्! कभी पर्वत से न घबराऊँ। आगे नदी की बात कही है। बड़ी-बड़ी नदियाँ होती है। जिन में बड़े-बड़े भँवर उत्पन्न होते हैं यदि कोई व्यक्ति उसमें फंस जाये तो बचना मुश्किल है। कभी-कभी कोई व्यक्ति नदी की बाड़ में फंसकर जीवन से हाथ धो देते हैं। परंतु जिनके पास भगवत् भक्ति का सहारा होता है वे बड़े से बड़े भंवरों से भी बचकर निकल जाते हैं।

जिन भयानक श्मशानों से सामान्य व्यक्ति घबराता है। यदि कोई श्मशान का नाम भी ले लें तो व्यक्ति घबरा जाता है। परंतु आत्मा की साधना करने वाले संतजन अपनी साधना करने ऐसे ही श्मशानों को अपनी साधना स्थली बनाते हैं। उनकी एकाग्रता और दृढ़ता के समक्ष बड़े-बड़े भूत, प्रेत भी नतमस्तक हो जाते हैं। कवि प्रार्थना करता है कि हे भगवन्! उन संतों के सम मेरा मन दृढ़, निश्चल बन जाए और बड़े-बड़े श्मशानों से भी मुझे भय न लगे। आगे कहते हैं-भयानक अटवी।

एक प्राचीन काल ऐसा भी था जब कि इतनी सुविधा संपन्नताएँ नहीं थी, व्यक्ति प्राय: एक गांव से दूसरे गांव जाते थे तो उन्हें भयानक अटवियों से पार होकर जाना पड़ता था। ऐसी भयानक अटवियाँ जहाँ खतरनाक जंगली जानवर घूमते रहते हैं। कब वार कर दे कुछ भरोसा नहीं। ऐसी भयानक अटवियों में जाकर संतजन भी आत्म साधना में निमग्न रहते हैं। कई श्रावकों के उदाहरण भी शास्त्रों में मिलते हैं-सती सीता का उदाहरण ज्वलंत है। सती सीता को रावण से युद्ध में विजित कर रामजी अयोध्या ले आते हैं तब तक धोबी का संवाद-''कि परघर रहकर आयी स्त्री को राम ने स्वीकार किया।'' ऐसे लोकोपवाद के भय से रामचन्द्र जी सीता को भयानक अटवी में छोड़ने की कठोर आज्ञा कृतान्तवक्र को देते हैं। राजाज्ञा को पाकर कृतान्तवक्र सीता देवी को तीर्थयात्रा के बहाने ले जाता है और भयानक अटवी में छोड़ देता है। सीता जी आश्चर्य चकित होकर कृतान्तवक्र से पूछती है, हे कृतान्तवक्र! तुमने अचानक रथ को इस भयानक अटवी में क्यों रोका। कृतान्तवक्र की आंखों में आंसू तो थे पर मुख में शब्द नहीं, कण्ठ अवरूद्ध हो रहा था। सीता जी के बार-बार आग्रह करने पर कृतान्तवक्र बहती अश्रुधारा के साथ कहते हैं। हे माता! स्वामी की आज्ञा आपको यहीं तक छोड़ने की है। उसके ऐसे शब्द सुनकर एक पल के लिए तो सीता जी सहम जाती है। हे भगवन्! यह

स्वामी ने कैसी आज्ञा दी उन्हें ऐसा लगता है मानो पगतल से धरती ही खिसक गई हो। परंतु अपने आप को संभालती हुई। कहती है-कहो कृतान्तवक्र मेरा क्या अपराध है। कृतान्तवक्र लोकोपवाद की सारी बात बता देते हैं तब धैर्य, साहस गुण को धारण करने वाली सीता जी जो कि अत्यंत धर्मपरायण थी-कर्म सिद्धान्त का विचार करती है और कहती है-हे कृतान्तवक्र! तुम दुःखी मत हो स्वामी ने जो आज्ञा दी वह उचित ही है और पूर्व में मैंने कुछ ऐसा कर्म किया होगा जो आज मेरी यह अवस्था है। इस संसार में प्रत्येक प्राणी कर्मों की पराधीनता में जीता है। परंतु दुःख के आने पर भी धैर्य, साहस रखना ऐसा मुझे गुरु ने सिखाया है। परंतु जाते-जाते स्वामी को मेरा एक संदेश अवश्य सुना देना कि जैसे लोकोपवाद के भय से उन्होंने मेरा त्याग कर दिया वैसे कभी भी लोकोपवाद में आकर कभी सच्चे जिन धर्म को नहीं छोड़ना।

उस भयानक अटवी से भी सीताजी ने भय नहीं खाया। अपितु साहस रखा। कवि यही बात कहता है हे भवगन्! चाहे जितनी भी विपत्तियाँ संकट आये परंतु-

रहे अडोल अकंप निरंतर, यह मन दृढ़तर बन जावे।
इष्ट वियोग अनिष्ट योग में, सहन शीलता दिखलावे।।

सदा अडोल और अकंप बना रहूँ तथा सीताजी की तरह यह मन भी दृढ़ता को प्राप्त हो जाए। फिर चाहे इष्ट का वियोग हो जाए या अनिष्ट का संयोग दोनों में समता, सहनशीलता बनी रही है। वर्णी जी की माँ चिरौंजा बाई जी का दृष्टान्त प्रेरणास्पद है। एक बार की बात है कि माँ चिरौंजा बाई जी शिखर जी की यात्रा के लिए रवाना हुई, वे शिखर जी पहुँच गई चोर सारा माल चुरा कर ले गये। चिरौंजाबाई को जब यह समाचार ज्ञात हुआ तो सबकी नजरें उनके चेहरे पर थी परंतु उनके चेहरे पर किंचित् भी शिकन तक नहीं थी। लोगों ने कहा-बाईजी घर पर चोरी हो गई क्या आप घर वापस नहीं जाओगी। उन्होंने बड़ा सुंदर उत्तर दिया-अब चोरी तो हो गई मेरे जाने से वापस तो नहीं मिलेगा फिर इतनी दूर आयी हूँ तो बिना भगवान के दर्शन, तीर्थयात्रा के कहीं नहीं जाऊँगी। उन्होंने वहीं रूककर ५ दिन तक यात्रा की बाद में घर गई। कहने का तात्पर्य यह है कि धन को मनुष्य का प्राण ग्यारह वाँ कहा जाता है। प्राणों के जाने पर कौन कष्ट का अनुभव न करेगा। परंतु इष्ट पदार्थों के वियोग हो जाने पर भी मन में अपार शांति छाई हुई थी।

कभी अनिष्ट पदार्थों का संयोग हो जाए तो समता है- '**यशोधर मुनिराज के गले में राजा श्रेणिक ने मरा हुआ सर्प डाला**' यह बात सर्व विदित है-परंतु यशोधर मुनिराज अनिष्ट के संयोग होने पर भी प्रसन्न चित्त थे अपनी आत्मा के ध्यान में निमग्न थे। न तो अनिष्ट वस्तु से द्वेष था न ही प्रतिकार करने वाले के प्रति प्रतिशोध का भाव अपितु छाई थी अपूर्व समता व शांति जो परिचय दे रही थी उनकी अनुपम सहनशीलता की।

इष्ट के वियोग में दु:ख व अनिष्ट के संयोग में पीड़ा संसारी प्राणियों की सहज अवस्थाएँ है। परंतु इष्टानिष्ट की कल्पना से परे निज शांत का वेदन करने वाली आत्माएँ विरली ही होती है। ''मेरी-भावना'' में उन्हीं पवित्र भावनाओं का अमृत रस भरा गया है। जो आज तक पाया अब वह नहीं पाना, जो चाहा वह नहीं चाहना, जो देखा वह नहीं देखना। अपितु इससे परे जो नहीं पाया उस साम्यता को पाना है। इन्हीं तात्विक गहराईयों का उद्घाटन करने वाली ये पंक्तियाँ है। आप इन्हें मात्र '**मेरी-भावना**' की पंक्तियाँ ही न समझे अपितु आत्म शांति को पाने का अमोघ उपाय समझ जीवन में आत्मसात करें तभी सुख-शांति का पथ मिल सकेगा।

इसी भावना के साथ....।

''1008 महावीर भगवान की जय''

दिनांक 24-07-2008

गुरुवार, प्रात: 9.00 बजे   बोरीवली, मुंबई

दुखी नहीं सबको सुखी करूँ

भव्य बंधुओ!

''**मेरी-भावना**'' के माध्यम से विद्वान कवि जुगलकिशोर जी नये-नये विकास के सूत्र दे रहे हैं। आत्मा की उन्नति, उत्थान जिन गुणों से होती है उन गुण रूपी मोतियों को परस्पर पिरोकर ''**मेरी-भावना**'' रूपी माला तैयार कर दी है। काव्य 9 के माध्यम से वे कहते हैं-

''सुखी रहे सब जीव जगत के, कोई कभी न घबरावे।
वैर पाप अभिमान छोड़ जग, नित्य नये मंगल गावे।।
घर-घर चर्चा रहे धर्म की, दृष्कृत दुष्कर हो जावे।
ज्ञान चरित उन्नत कर अपना, मनुज जन्म फल सब पावे।।1।।

इन पंक्तियों में बतलाया है कि सम्यग्दृष्टि ज्ञानी जीव की, अंतरात्मा पवित्र, निर्मल होती है, उनके मन से पावन विचार उत्पन्न होते हैं। बीज अच्छा है तो फल अच्छे होंगे। बीज अच्छा नहीं हो तो फल भी अच्छा नहीं होगा। वह बीज अंतरात्मा के विचार, भाव, परिणाम है। हम अपने भाव कैसे रखें, जैसे भाव रखेंगे आत्मा वैसी होगी। कहा भी जाता है-''**भावना भव नाशिनी**'' ''**भावना भव वर्द्धनी**''। भावना ही संसार को बढ़ाती है वही संसार का घटा देती है। बैठे-2 ही व्यक्ति पुण्यास्रव भी कर लेता है और पापास्रव भी। दोनों ही बैठे हैं परंतु दोनों के बैठने में बड़ा भारी अंतर है। एक पवित्र भावना में डूबा है तो दूसरा अपवित्र भावना में डूबा है। एक अच्छे विचारों में खोया है दूसरा बुरे विचारों में। ''**सुखी रहे सब जीव जगत के**'' यह विचार उत्पन्न हो रहा है। तो इसका मतलब है कि आपका मन पवित्र है। आप अच्छा कार्य करके आते हैं। पुण्य विचार भी बिना पुण्य के नहीं होते। एक गरीब, भिखारी जगह-जगह से भीख मांगता है। दर-दर की ठोकरे खाता हैं। दर-दर से तिरस्कृत होता है। कर्मों को कोसता है। दुर्भाग्य को कोसता है। दुर्भाग्य

तो मानता है परंतु भाग्य का काम नहीं कर पाता। कभी सोच नहीं पाता कि कुछ अच्छा करूं। आचार्य भगवन् कहते हैं-पाप अंदर से बुद्धि को भ्रष्ट कर देता है। व्यक्ति खाली होता तो जुआ खेलेगा, शराब पीयेगा, लड़ाई-झगड़ा करेगा। भगवान का नाम नहीं जपेगा, ध्यान नहीं करेगा, मंदिर के सामने से निकल जायेगा परंतु भगवान के दर्शन के विचार नहीं हो पायेंगे। भगवान की मूर्ति के सामने से निकल जायेगा पर हाथ जोड़ने के भाव नहीं होंगे। भाव एक समय में एक ही प्रकार के होते हैं। दो प्रकार के नहीं हो सकते। पवित्र मन से/पवित्र दृष्टि से, पवित्र ही विचार होते हैं। विचार पवित्र न हो तो व्यक्ति घंटे-घंटे तक का समय सोते-सोते ही निकाल देते हैं परंतु स्वाध्याय नहीं कर पायेंगे। कई बार ऐसे लोगों को देखा जाता हैं जो मंदिर में बैठकर जाप नहीं कर पाते, स्वाध्याय में नहीं बैठ पाते। पाप कर्म का ऐसा ही उदय है जिसके कारण ऐसी अवस्थाएँ बनती हैं। भिखारी भीख मांगकर अपनी जिंदगी यूँ ही पूरी कर देता है। भगवान का नाम जपता भी है तो कोई कुछ दे दे इस लालसा से जप लेता है अंतरात्मा से नहीं।

शिखर जी 2000 के चातुर्मास में जब हम लोगों के साथ पर्वत की वंदना करने श्रावक जाते थे तो रास्ते में बहुत से अंधे-पंगु बैठे रहते थे। वे श्रावकों को देखते ही-''**सावलियाँ पारस नाथ शिखर पर भला विराजा जी**'' इत्यादि भजन की पंक्तियाँ गाने लगते थे। मैं सोचता ये यहाँ क्यों बैठे हैं? भगवान के द्वार पर क्यों नहीं बैठे? भक्ति जो भगवान के चरणों में बैठकर की जाती है। तब एक श्रावक बोले-महाराज! ये पेट-पूर्ति के लिए सब कर रहे भक्ति भाव से नहीं।

धिक्कार है ऐसे कर्म को कि व्यक्ति भगवान का नाम भी पेट के लिए लेता है। कल्याण के लिए नहीं आगे चले तो मालूम पड़ेगा। आगे बढ़े तो खंजरी रख दी और दूसरे लोग आये तो पुन: बजाना शुरू कर दिया। लोग पाप पुण्य की बड़ी-बड़ी व्याख्या करते हैं पर सबसे बड़ा पाप है हम गुरुओं की सेवा, प्रवचन, भक्ति न कर पाये। भगवान की पूजा न कर पाये ये सबसे बड़ा दुर्भाग्य है। इससे बड़ा पाप का उदय दूसरा नहीं। व्यक्ति गरीब है फिर भी धर्म कर रहा है तो वह पुण्यार्जन में लगा है और यदि अमीर होकर भी व्यक्ति धर्म से दूर है तो वह धन पाप के कीचड़ में ही ले जायेगा।

प्राय: प्राणी भगवान से एक ही प्रार्थना करता है कि मैं सुखी रहूं। छहढाला में पंडित दौलतरामजी कहते हैं-

"जे त्रिभुवन में जीव अनंत सुख चाहे दु:ख ते भयवन्त"

इन तीनों लोकों में जितने भी प्राणी हैं वे प्राय: सुख ही चाहते हैं व इसी की कल्पना में डूबे रहते हैं। परन्तु सुख की वास्तविक परिभाषा को समझते नहीं हैं। प्यासे से सुख की परिभाषा पूछो तो कहेगा-पानी मिल जाय तो सुखी हो जाऊँ। भूखे से पूछो तो कहेगा-भोजन में ही सबसे बड़ा सुख है। पानी में भीगने वाले से पूछो तो छत्ते में ही सबसे बड़ा सुख है। जिसे गर्मी सता रही है वह पंखे में सुख मानता है। जिसके पास मकान नहीं उसे मकान के मिलने पर सुख होता है। यदि बच्चों से पूछा जाए तो कहेंगे मैं I[st] Division पास हो जाऊँ उसी में सुख है। किसी युवा से पूछो तो मुझे सर्विस मिल जाए तो सुखी हो जाऊँ इत्यादि नाना प्रकार की कल्पनाएँ हमारी होती हैं। निरंतर सुख की परिभाषा कुछ बदलती रहती है। चूंकि जीव अनंत हैं इसलिए सुख की परिभाषाएँ भी अनंत हो जायेगी।

भगवान महावीर स्वामी कहते है-आप सभी भ्रम में हैं इसीलिए इस अनादि संसार में आज तक घूमते रहे हो। इन इच्छाओं का नाम वास्तव में सुख नहीं है। अपितु इच्छा को रोकने में सुख है। आचार्य वीरसेन महाराज धवलाजी में लिखते है-"**इच्छा निरोध: तप:**"। इच्छाओं को रोकने का नाम तप है। जब सांसारिक इच्छाओं पर break लगता है। तब व्यक्ति समय निकाल कर दर्शन, पूजन, आत्मध्यान करता है। सुख के रास्ते को प्रशस्त करता है। जो स्वयं सुख के मार्ग पर लगा है वहीं दूसरों के लिए सुख की भावना भा सकता है। जो स्वयं दु:खी है वह दूसरों को सुख क्या दे सकेगा। जो स्वयं भूखा-प्यासा है दूसरे की क्षुधा-तृष्णा को शांत क्या कर सकेगा। आचार्य कहते हैं-कि तुम सुख के पथ पर तभी बढ़ पाओगे जबकि मोक्ष पथ पर बढ़ोगे। कहा जाता है-"**धर्म: सर्व सुखाकरो**" धर्म ही सब सुखों का आकर है। धर्म से ही सुख होता है। बुद्धिमान जन धर्म को ही मंगल स्वरूप कहते है। धर्म में ही शिवसुख समाविष्ट होता है। धर्मात्मा व्यक्ति जैसे अपनी आत्मा के लिए सुख चाहता है। वैसे ही वह दूसरों को भी सुखी देखना चाहता है। जैसे वह स्वयं दु:खी नहीं होना चाहता वैसे ही वह दूसरों को भी दु:खी नहीं देखना चाहता। वह तो भावना भाता है-हे भगवन्! मैं भी सुखी रहूं और सारा विश्व भी सुखी रहे। भावना है-

संपूजकानां प्रतिपालकानां यतीन्द्र सामान्य तपोधनानाम्।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञ: करोतु शांतिं भगवान्-जिनेन्द्रः॥

जो जितना ऊँचा व्यक्ति होता है उसका हृदय, विचार भी उतना ही ऊँचा

होता है। वह सब प्राणियों के उन्नति, उत्थान के लिए जीता है। जो छोटा है उसका विचार भी छोटा ही होता है।

एक बार की बात थी कहीं सारी समाज की भोजन व्यवस्था रखी गई। कुछ लोगों को परोसी करने रखा गया। परोसने वाले को पता चला कि सामान समाप्त होने वाला है, अब क्या करूँ। यदि सबको बोलता हूँ तो यह एक प्लेट जो बची है। वह भी मेरे हाथ से चली जायेगी। वह प्लेट लेकर भोजनशाला के पीछे चला गया। वहाँ कोई दूसरा व्यक्ति आ गया, तो परोसने वाले ने छिपा ली और बोला-थक गया हूँ, बैठना चाहता हूँ, वह परेशान था क्या करना चाहिए-वह प्लेट लेकर आगे बढ़ने लगा, दूसरा व्यक्ति कहता है-बैठो तो सही, नहीं कुछ काम है जाता हूँ। मैं तेरी मदद करूंगा साथ चलता हूं, नहीं-नहीं मदद की आवश्यकता नहीं, मेरे पास चार प्लेटे बच गई है तो 2 तुझे दूंगा। अच्छा तो कोई बात नहीं एक प्लेट मेरे पास भी है। दो आप दे दो तो आराम से पेट भर जायेगा इतने में दूसरी समस्या खड़ी हो गई तभी पानी बरसा और पानी में उसकी प्लेट बह गई, वह कुछ भी नहीं खा पाया। पहले वाला व्यक्ति छाया में था, आराम से भोजन मिल गया। जो दूसरे का छीनता है उसे स्वयं कुछ नहीं मिल पाता। जो दूसरों को देता है उसे बहुत कुछ मिलता है।

एक बार की बात है। एक कुत्ता था वह कहीं से रोटी चुराकर मुंह में दबाये जा रहा था तभी रास्ते में उसे एक नदी मिली जैसे ही उसने अपना मुँह उस नदी में देखा तो उसे अपनी परछाई नदी में दिखाई दी उसने सोचा अरे! इसके पास भी रोटी है वह उस दूसरे कुत्ते के मुंह की रोटी छीनने के लिए जैसे ही छलांग लगाता है तो उसके मुंह की रोटी भी गिर जाती है। उसके पास कुछ भी शेष नहीं रहता।

अर्थात् दूसरों के सुख को छीनने से अपना सुख भी छिन जाता है। और दूसरों को सुख देने से अपना सुख बढ़ता है। किसी को भोजन कराओगे तो घटेगा नहीं बढ़ेगा। आज तुम उसे आधा कराओगे तो कल वह तुम्हें पूरा करायेगा। यदि तुमने आज किसी को बैठने की जगह दे दी तो तुम्हारी जगह रिजर्व हो गई है कभी अवसर आयेगा तो वह बीच सभा में तुम्हें बुला लेगा, यहाँ आ जाओ।

एक बार की बात है-एक सेठजी बड़े धनाढ्य थे, आश्चर्य था धन तो उनके पास था पर धर्म नहीं था। धर्म के गरीब थे, निरंतर धन के अभिमान में वे इतने तल्लीन रहते थे कि किसी को कुछ नहीं समझते थे, आलीशान भवन था, उच्च दर्जे की दुकान थी। एक बार पानी बरसा तो एक ग्रामीण सेठजी की दुकान में घुस

गया वह बाहर की देहलान में जाकर खड़ा हो गया, सेठजी ने उसे भगाया तो वह बोला-सेठजी दूर जाना है, भीग जाऊँगा। थोड़ा पानी कम हो जायेगा तो चला जाऊँगा। मुझे बुखार है वैद्यों ने हवा, पानी से बचने के लिए कहा-सेठजी ने उसे जोर से धक्का दिया। सिर फूट गया, खून बहने लगा। सेठजी माफ कीजिए आज्ञा का पालन नहीं किया, बरसते पानी में घर चला गया पत्नी ने देखा तो घबरा गई। उस गरीब ने नहीं बतलाया क्या हुआ वह बोला मैं गिर गया था तो मुझे चोट लग गई। उसने सोचा बतलाने से कोई लाभ नहीं, वैर-विरोध बढ़ सकता है। अन्दर की बात को अन्दर में ही रखे रह गया।

एक दिन सेठजी का नम्बर आया सेठजी अपने नगर से उधारी लेने आये। उस दिन उनकी गाड़ी खराब हो गई। रास्ता चालू नहीं था, बीच में ही जंगल था। जंगल में ही रात्रि हो गई, कोई उपाय नहीं था। बादल थे तो पानी बरसने लगा। सेठजी देखते हैं यहाँ तो बड़े-बड़े जंगली जानवर हैं कोई आश्रय मिल जाता। सेठजी को एक मकान से प्रकाश बाहर आता हुआ दिखा उन्होंने समझ लिया वहाँ कोई न कोई व्यक्ति होगा, वे उस मकान में पहुँचे, दरवाजा बंद था, काफी रात हो चुकी थी, दरवाजा खटखटाया। मकान के अंदर वे ही दोनों पति-पत्नी थे। पत्नी ने सोचा इतनी रात में दरवाजा खोलना उचित नहीं। पति ने कहा-पानी बरस रहा है, रात्रि में कोई भटक गया होगा। आया है तो उसे ठहर जाने दो, परन्तु उसके कमरे में इतनी ही जगह थी कि दो से तीसरा नहीं लेट सकता था। पति ने कहा हम कम-कम स्थान में लेट जायेंगे। दरवाजा खोल उसे अन्दर बिठा लिया। थोड़ी देर के बाद पुनः दूसरा व्यक्ति आ गया पत्नी ने पुनः मना किया-बड़ी मुश्किल से तो तीन बन रहे हैं-चौथे को कहाँ बुलाओगे। ठीक है हम बैठे रहेंगे। कुछ देर बाद पुनः 1 एक व्यक्ति आ गया रात्रि हो गई। पत्नी ने कहा-अब उसे कहाँ बिठायेंगे-बैठा लेंगे पुनः दरवाजा खोल दिया-अब दो जन खड़े हो गये व 2 बैठ गये। पुनः 1 व्यक्ति आ गया-पत्नी बोली अब दरवाजा खोला तो रात्रि जागरण करना पड़ेगा। पति ने कहा कोई बात नहीं हमें तो रात्रि जागरण ही करना पड़ेगा। परंतु यदि उसे स्थान न दिया जाए तो वह बीमार पड़ जायेगा। उसे भी भीतर कर लिया। पुनः 3 व्यक्ति आ गये, पत्नी ने पुनः विरोध किया अब तो कमरे में बैठे अन्य लोगों ने भी पत्नी की हाँ में हाँ मिलायी परंतु वह पति कहता है यदि उन पर कोई जंगली जानवर प्रहार कर देगा तो उनके प्राण संकट में पड़ जायेंगे। ट्रेन मे जब स्थान नहीं होता तो हम खड़े-खड़े समय निकालते है या नहीं। उसने उन्हें भी स्थान दे दिया। रात्रि भी पूरी हो गई, पानी

रूक गया और प्रकाश हो गया। वह पति बोला-आपने अच्छा किया जो मेरे द्वार पर आ गये। मैं तो गरीब हूं मेरे पास और कुछ नहीं है एक गाय है जो 2 किला दूध देती है। उसे ही दूहता हूँ। दूध पीकर जाना। सेठजी ने उस गरीब को बड़े ध्यान से देखा और कहा-भाई! मुझे ऐसा लगता है कि मैंने तुम्हें कहीं देखा है। वह भी पहचान गया बोला-सेठजी अवश्य ही देखा है, मैंने भी आपको देखा है। सेठजी को जैसे ही स्मरण आया वे शर्मिन्दित हो गये। यह तो वही गरीब है जिसे मैंने धक्का देकर बाहर निकाल दिया था। इतना बड़ा मेरा मकान था, बारिश में यह भीग रहा था तो भी मैंने उसे स्थान नहीं दिया था और इसने तो मेरे कारण रात्रि जागरण करके निकाल डाली। सेठजी विचार में डूब गये ये सूत्र तुमने कहाँ से पाया। मेरी भावना से पाया-कि '**सुखी रहें सब जीव जगत के, कोई कभी न घबराये**' वह बोला सेठजी मैं जैन तो नहीं हूँ परंतु जैनियों का यह पाठ नित-प्रतिदिन पढ़ता हूँ। मुझे पूरा याद तो नहीं पर श्रद्धा है परंतु शायद यथार्थ श्रद्धा नहीं। सेठजी की आँखें खुल गई और उन्होंने कान पकड़ लिये, मैं गलत रास्ते पर था, तूने मुझे सही राह बतायी है। तूने मुझे ठहरने के लिए स्थान दिया है। अभी तक मेरा धर्म प्रदर्शन में था, चर्चा में था परंतु आज से प्रतिज्ञा करता हूँ कि धर्म को चर्या का विषय बनाऊँगा। एक दु:खी-दरिद्री प्राणी धर्म धारण कर सकता है तो क्या मैं नहीं कर सकता। हम सदैव पड़ौसी के सुख की भावना रखें। यदि कोई दु:खी है, भूखा है तो पूछ लो, बुला लो, भोजन करा दो आज आप किसी को रूखी रोटी खिलाओगे तो समय आने पर व आपको खीर भी खिलायेगा और याद रखेगा कि आपने मुझे खिलाया था। यदि कोई पड़ौसी बीमार हो तो वैद्य, डॉ. को बुला दूं आपने इतना भी पूछ लिया तो उसकी तकलीफ दूर हो जायेगी और पड़ौसी तो दूर रहा पहले आप अपने घर के सदस्यों को ही देख लें बूढ़े लोग अम्मा कहीं भूखी तो नहीं, कुछ तकलीफ तो नहीं, तो वृद्ध माता-पिता भी सोचते हैं-मेरा बेटा सदा सुखी रहे और आप कभी जायेंगे तो उनके मुख से दुआ निकलेगी-बेटा! सदा सुखी रह। कभी दु:ख का सामना न हो। ऐसे वचन मुख से निकल रहे हैं कारण है कि आपने धर्म को समझा है। आपने यदि दूसरों को सुखी किया है तो उसके हृदय से आपके लिए दुआ निकलेगी। कहा भी है-'कर भला होगा भला, नेकी का बदला नेक है।' यदि तुम दूसरों का भला करोगे तो तुम्हारा एक दिन भला होगा यदि दूसरे का बुरा करोगे तो बुरा तुम्हारा ही होगा। छोटे-बच्चे रबर की बॉल को दीवार पर फेंक कर मारते हैं

तो परिणाम यह निकलता है कि बॉल लौटकर वापस आती है। यही सिद्धान्त यहाँ लागू होता है।

यदि आप किसी का भला करोगे तो भलाई ही लौटकर आयेगी, बुरा करोगे तो बुराई लौटकर आयेगी आप अपना बुरा चाहते हो या भला यह आपके ऊपर ही निर्भर है। यह एक लौकिक दृष्टि है।

परंतु यदि पारमार्थिक दृष्टि से देखें तो आचार्य श्री कुंदकुंद महाराज कहते है-जिस लौकिक इंद्रिय सुख को आप सुख मानते हो वह सच्चा सुख नहीं है। धन, मकान, दुकान, परिवार की प्राप्ति यह वास्तविक सुख नहीं है। ये सब आपको वास्तविक सुख-शांति नहीं दे सकते। ये कुछ भी तुम्हारे साथ नहीं जायेगा।

सिकन्दर के पास सब था फिर भी वह तड़फ रहा था। निर्ग्रंथ मुनि उपदेश दे रहे थे, धर्म तुम्हारा साथी है वह तुम्हारे अन्दर है। हे सिकन्दर! उसे यदि एक बार पा लिया तो हमेशा-हमेशा के लिए दुःख, अशांति से बच जाओगे फिर नकली परिभाषा असली में बदल जायेगी।

अभी तक हम जिसे सुख मानते थे वह भी दुःख में बदल जाता है। एक व्यक्ति जिसे गर्मी सता रही है उसे पंखा अच्छा लगता है परंतु यदि किसी को ठंड लग रही हो तो वही पंखा जो सुख का स्थान था वही दुःख का भी स्थान बन जाता है। आपको गुलाब जामुन अच्छा लगता है तो आपने इच्छा की कि मुझे 1 गुलाब जामुन अच्छा लगता है तो आपने इच्छा की मुझे 1 गुलाब जामुन चाहिये। 1 मिल भी गया तो आपको सुख हुआ यदि दो मिल जाये तो सुख और बढ़ जाता है तीन मिल जाये तो और सुख होगा परंतु बढ़ते-बढ़ते 10-20 खाने पड़ जाये तो सुख दस गुना होना चाहिए परंतु देखा जाता है कि सुख बढ़ने की जगह दुःख में परिवर्तित हो जाता है। क्या हुआ-पेट खराब हो गया।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि इंद्रिय सुख वास्तविक सुख नहीं है। अपितु सच्चा सुख आत्मा से होता है। अतः उसी की शरण को प्राप्त करें। जगत के प्रत्येक प्राणी सच्चे सुख को, शाश्वत सुख को प्राप्त करें।

इसी भावना के साथ....।

"108 पूज्य आचार्य गुरुवर विमलसागरजी महाराज की जय"

दिनांक 25-07-2008

शुक्रवार, प्रातः 9.00 बजे बोरीवली, मुंबई

नित्य नये मंगल गाऊँ

भव्य बंधुओ!

विषय हमारा चल रहा था कि जग के सभी प्राणी सुखी रहें, संसार में कोई भी प्राणी कभी भी दुःखी नहीं रहे। कवि कह रहे थे-

"सुखी रहें सब जीव जगत के, कोई कभी न घबरावे।
वैर आप अभिमान छोड़ जग नित्य नये मंगल गावे॥"

जो सज्जन पुरुष होते हैं वे अपनी आंखों से जगत को सुखी देखना चाहते हैं। वे कभी किसी को दुःखी नहीं देखना चाहते। जिसका हृदय करुणा से भरा होता है वह कभी भी दूसरों को दुःखी नहीं देखना चाहता, जब करुणा न हो तो हृदय कठोर हो जाता है। पार्श्वकुमार एक दुःखी प्राणी को देखकर पिघले, नाग-नागिन को दुःख से उबारने हेतु उन्हें णमोकार मंत्र सुनाया। दुःखी प्राणी को देखकर पिघल जाना धर्म है। हमें बहुत से दुःखी प्राणी दिखते हैं परंतु हम उनकी पीड़ा को दूर नहीं कर पाते, रास्ते में हमें कोई मरणासन्न व्यक्ति दिख जाये तो हम अपनी निगाहें फेर लेते हैं। इसी का नाम अदया, अधर्म है, संसार है।

भगवान नेमिनाथ तीर्थंकर महाराज राजकुमार की अवस्था में थे वे राजसी वेशभूषा में श्रृंगार के साथ व राज परिवार के साथ बारात लेकर जा रहे थे। देखा तो सामने से जानवरों की आवाज आ रही थी। परंतु कुमार यह नहीं समझ पा रहे थे कि ये जानवर यहाँ क्यों बांधे गये। यद्यपि तीर्थंकर जन्म से अवधिज्ञान के धारी होते हैं। परंतु हर समय अवधिज्ञान नहीं लगाते, जब आवश्यकता हो तभी लगाते हैं। वे सारथी से पूछते हैं हे सारथी! ये चीख पुकार कैसी है, ये जानवर यहाँ क्यों बंधे हैं। स्वाधीनता से विचरण करने वाले ये बेचारे निरीह पशु जो घास फूस खाकर जीवन बिताते हैं उन्हें यहाँ क्यों बांध रखा है। अपने-अपने प्राण सभी को प्रिय होते हैं। वे सब मारे जाने के भय से घबरा रहे हैं। कुछ ही क्षण में मर जायेंगे इसलिए चिल्ला रहे हैं। पशुओं के अन्दर भी मन पाया जाता है। वे जान लेते है कि

कौन व्यक्ति कैसा है। किसी के हाथ में रोटी हो तो कुत्ता पास आ जाता है। और यदि लाठी हो तो दूर भाग जाता है। छोटे से छोटे प्राणी भी अच्छा बुरा समझ लेते हैं। वृक्षों की जड़े उसी ओर जाती हैं जहाँ खाद-पानी को जहाँ सूखा हो वहाँ नहीं जाती। जगदीशचंद्र वसु एक भारतीय वैज्ञानिक हुए उन्होंने वनस्पति में जीवत्व की खोज की। वृक्ष भी यह समझता है कि कौन मारने वाला है कौन बचाने वाला। लेबोरेट्री में एक प्रेक्टिकल किया गया-एक व्यक्ति को कुल्हाड़ी लेकर वृक्ष काटने के लिए भेजा गया जैसे ही वह वृक्ष के पास पहुँचा तो उस वृक्ष के पास जो बल्ब के द्वारा करंट सेटिंग की गई थी तो लाल बल्ब जलने लगा उसमें कम्पन्न होने लगे तब बतलाया गया कि यह वृक्ष मृत्यु से घबराता है। यह दु:ख नहीं चाहता। इसके बाद दूसरे आदमी को भेजा गया जो खाद-पानी लिये था। जैसे ही वह वृक्ष के पास पहुँचा उसके समीप लगा हरा बल्ब जलने लगा उसमें कम्पन्न होने लगे। यह प्रेम, करुणा से भीगा प्राणी है। अमुक मुझे मारने वाला नहीं है, मेरी रक्षा करने वाला है। यदि वृक्ष को कोई सौभाग्यशाली छू लेती है तो वह प्रफुल्लित हो जाता है। यद्यपि सारा संसार भय से आक्रान्त है। यद्यपि कदम-कदम पर आपत्ति-विपत्ति है। जब उस संकट आपत्ति-विपत्ति पर उपयोग ले जाते हैं तो देखते है सारा संसार भयभीत है। चोर के सामने पुलिस पहुँच जाए तो वह डर जाता है। किसी के पास व्याघ्र आ जाए तो वह डर जाता है। हमारे पास कोई छोटा कीड़ा या छिपकली भी आ जाए तो व्यक्ति घबरा जाता है।

कीड़े को चिड़िया का भय, चिड़िया को कौए का भय, कौए को बाज भय, बाज को वन संरक्षक का भय।

इस प्रकार संसार में प्रत्येक प्राणी को किसी न किसी का भय है। छोटे बच्चों को माँ का भय है माँ को पिता का, पिता को अपने पिता का भय है। साधुजन कर्मों के आस्रव-बंध से डरते हैं, संसार परिभ्रमण से डरते हैं। क्यों कि वे पाप भीरु हैं। सारा संसार भय से भरा है प्रार्थना की जा रही है। "**कोई कभी न घबराये**" हे भगवन्! '**संसार का प्राणी घबराये न**'। संत कर्मों से मुक्त होकर अभय प्राप्त कर लेते हैं। चार संज्ञाओं में एक भय संज्ञा है। एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के सभी प्राणियों में भय संज्ञा पायी जाती है। सात प्रकार के भयों से मिथ्यादृष्टि जीव डरा रहता है। मिथ्यादृष्टि सोचता है मैं मर जाऊँगा तो मेरा अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा, सम्यग्दृष्टि को आत्मा के अस्तित्व पर विश्वास होता है इसलिए वह निर्भय माना गया है। परंतु भय संज्ञा तो 9 वें गुणस्थान तक जाती है वहाँ उसका क्षय

होता है। अरहंत देव को न कोई भय है न ही भय संज्ञा है। इसलिए वे निर्भीक होते है। भावना भायी जा रही है कि संसार का प्रत्येक प्राणी ऐसी निर्भय अवस्था को पा ले।

पहले धर्मात्मा प्राणी अभय की घोषणा करते थे। पर्यूषण, अष्टान्हिका में अभय की घोषणा की जाती थी। आज भी परंपरा जारी है। अकबर से एक बार जैन समाज के प्रतिनिधि मंडल से प्रार्थना की कि ये पर्यूषण पर्व के 10 दिन पावन पर्व के दिन है। इन दिनों में किसी को कोई कष्ट तकलीफ न हो। अकबर ने सैनिकों की प्रार्थना सुनी व घोषणा की कि 10 दिनों में किसी की भी कुर्बानी न दी जाए। आज वर्तमान में भी वे लेख सुरक्षित हैं। राम नवमी, हनुमान जयंती आदि अवसरों पर सरकार ने अभय की घोषणा की है यदि वहाँ के नागरिक चाहे तो अमुक-अमुक हिंसा के स्थानों पर रोक लगायी जाती है। महावीर जयन्ती को सार्वजनिक अहिंसा की घोषणा की जाती है। दयालु प्रकृति के आदमी के हृदय से करूणा उत्पन्न होती है।

एक जयपुर नरेश थे परंतु अहिंसक नहीं थे करुणा, दया नहीं थी वे आखेट करते थे। राजा ने अनेक शेर पाल रखे थे, जिन्हें मांस दिया जाता था। उन जयपुर नरेश के एक दीवान थे जिनका नाम दीवान-अमरचंद था। वे बड़े दयालु प्रकृति के थे जब राजा को पता चला कि हमारे दीवान जी कभी किसी प्राणी को सताते नहीं, बड़े दयालु हैं। उनकी दयालुता की परीक्षा हेतु उन्होंने दीवानजी को बुलाया और उनसे कहा कि दीवानजी आज आपको मेरे साथ शिकार खेलने चलना है, दीवानजी बोले-महाराज! मेरा वहाँ जाना अत्यन्त आवश्यक नहीं है, मेरे जाने से आपके कार्य में व्यवधान होगा। महाराजा जयपुर नरेश ने कहा-नहीं, मेरी आज्ञा है आपको चलना ही होगा। जयसिंहपुर नरेश घोड़े पर सवार हुए, दूसरे पर अमरचंद दीवान सवार हो गये अन्य सैनिक पीछे से चल दिये। वे सभी घनघोर जंगल में पहुँच गये। राजा जयसिंहपुर नरेश अनेकों निशाना बना रहे थे, वे काफी दूर तक दौड़ते गये हिरण की चाल तेज होती है हिरणों का झुंड आगे-आगे दौड़ रहा था तथा पीछे-पीछे राजा थे। दीवान अमरचंदजी उन हिरणों को संबोधन देते हैं-हे भोले प्राणियों! भाग कर कहाँ जाओगे। जहाँ राजा ही तुम्हारा भक्षक है। तो तुम्हारी रक्षा कैसे हो सकेगी। हिरणों के कान में जैसे ही ये शब्द पहुँचे तो वे सब हिरण वहाँ शान्ति से खड़े हो गये। राजा यह स्थिति देख आश्चर्य चकित हुए। महाराजा से नहीं रहा गया उन्होंने पूछा-तुमने ऐसा क्या कहा जो ये सारे प्राणी यहीं रूक गये, तुमने अपने हृदय की बात कैसे पहुँचा दी। दीवान अमरचन्द कहते हैं-

आप सारे राज्य के स्वामी हैं। प्राणी मात्र के शरणदाता हैं आप ही उन्हें मारेंगे तो बचायेगा कौन? मैंने इतना ही कहा-जो शरणदाता है वही भक्षक बना है तो किसकी शरण में जाओगे। जयसिंहपुर नरेश की आंखों में आंसू आ गये वे बोले-क्या प्राणी समझते है-हाँ, हृदय से निकली आवाज को हर व्यक्ति समझ लेता है। जंगल के जानवर भी विश्वसनीय है। जयसिंहपुर नरेश ने जैसे ही मुड़कर देखा तो सामने हिरणी खड़ी थी वह शांत चित्त होकर खड़ी थी तो दीवान अमरचंदजी बोले-पहले उस हिरणी की प्रार्थना सुन लीजिए वह कह रही है-मरने से पहले मुझे मेरे बच्चों से मिलना है। उनकी क्षुधा की पूर्ति करनी है मैं शीघ्र लौटकर वापस आ जाऊँगी। यदि ऐसा है तो हे अमरचंद! तुम्हारे विश्वास पर मैं उसे छोड़ देता हूँ। हिरणी बच्चों को दूध पिलाती है व अपने बच्चों से कहती है-अब तुम अपने पैरों पर खड़े हो जाओ अब तुम्हारी रक्षा, तुम्हारा भाग्य करेगा। '**जहाँ रक्षक ही भक्षक हो वहाँ तुम्हारी रक्षा कौन करेगा।**'' बच्चे कहते हैं-माँ कहाँ जा रही हो, सत्य का पालन करने जा रही हूँ। हिरणी लौट कर वापस आ जाती है और जयसिंहपुर नरेश के सम्मुख खड़ी हो जाती है। दीवान अमरचंदजी हिरणी को देखते हैं और तीर कमान को जमीन पर फैंक्र देते हैं।

हमारे देश के इतने अच्छे प्राणी है जो किसी को सताते नहीं, घास-फूस खाकर रह जाते है। अत: उनके प्राणों को छीनने का मुझे अधिकार नहीं, वे अहिंसा व्रत को धारण कर लेते है। नेमिनाथ भगवान सोचते है ये मूल प्राणी मेरे निमित्त से मरण को प्राप्त होंगे। बारात में म्लेच्छ राजा आये है उनकी व्यवस्था में रखे गये हैं। ऐसा विवाह मुझे नहीं करना। सारथी को आज्ञा देते हैं-सारथी रथ मोड़ दीजिए, ऐसे संसार में मुझे नहीं रहना, वे जंगल की ओर शेषावन में जाकर निर्ग्रंथ दीक्षा ले लेते हैं। दूसरों की पीड़ा व दु:खों से भींगकर राजपाठ की अपेक्षा नहीं रखते। कुटुम्ब, परिवार की अपेक्षा नहीं रखते वे जंगल में जाकर दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं।

इन पंक्तियों को पढ़ते है तो लगता है। हम नारे तो बहुत लगा लेते हैं परंतु हृदय करुणा से नहीं भींग पाता। हृदय को कोमल करने का प्रयत्न करो। आगे कहते हैं-

''वैर, पाप, अभिमान छोड़ जग नित्य नये मंगल गावे।''

सारे संसार का चित्रण किया गया है कि संसार में अमंगल का कारण क्या है। वैर, पाप व अभिमान है। यदि कोई व्यापार को निकला और यदि रास्ते में कोई एक आंख से काना व्यक्ति मिल जाए तो अपशकुन होता है। कुत्ता, बिल्ली यदि

रास्ता काट ले, कौआ यदि सूखे वृक्ष की डाल पर बैठ कर कौ-कौ की आवाज करे तो अपशकुन माना जाता है। छींक आ जाये, नीलकंठ दक्षिण की ओर से निकल जाये तो अपशकुन है। पंडित जुगलकिशोरजी कहते है-मात्र इतना ही अपशकुन नहीं है। यदि आत्मा वैर, विरोध, पाप से भरी है तो भी वह अपशकुन ही है क्योंकि वह दु:खों को उत्पन्न करने वाली है।

वैर, पाप व अभिमान ही दु:ख का मुख्य कारण है।

''दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान।''

पापों की जड़ अभिमान है जो अमंगलकारी है। यदि व्यक्ति के अंदर वैर भाव है तो उसके अंदर जलन ईर्ष्या होगी और वह सूखेगा, कषायों से मन शांत नहीं होता अपितु अशांति को प्राप्त होता है। दस धर्मों में पहला उत्तम क्षमा धर्म है। वैर कभी भी किसी भी प्रकार से अच्छा नहीं होता। व्यक्ति छोटी-छोटी बातों का बड़ा विवाद बना लेते हैं। जो भव-भवान्तर तक साथ जाता है। पार्श्वनाथ व कमठ का उदाहरण आता है दस भव तक वैर चला। पार्श्वनाथ भगवान ने हर भव में क्षमा को धारण किया और कमठ ने हर भव में वैर रखा और क्षमा का फल केवलज्ञान की प्राप्ति तथा वैर का परिणाम भव भवान्तर में परिभ्रमण। किसी भी पाप का फल बुरा ही होता है। तत्वार्थ सूत्र में कहा गया है-''**दु:खमेव वा।**'' पाप दु:ख को उत्पन्न करते हैं। उनका त्याग करो। अभिमान गिराता है, सम्मान में बाधक है, दूरियाँ खड़ी कर देता है। प्रेम वात्सल्य को सुखा देता है।

अत: वैर, पाप, अभिमान को छोड़ देना चाहिए। इनको छोड़ने के उपरांत ही जीवन में मंगल गान/मंगलाचार का प्रारंभ हो सकता है। इसीलिए कवि ने अपनी भावना भायी कि यह जग वैर, पाप व अभिमान का त्याग करें व हमेशा मंगलगान करें। नये-नये विचार, नया-नया चिंतन रखें तो जीवन मंगलमय होगा।

इसी भावना के साथ....।

''आचार्य श्री 108 सन्मति सागरजी महाराज की जय''

दिनांक 26-07-2008

शनिवार, प्रात: 9.00 बजे बोरीवली, मुंबई

नर भव को सफल करूँ

भव्य बंधुओ!

पवित्र भावनायें ही संसार में कल्याण सूत्रों को विकसित करती हैं। पहले कवि ने भावना भायी-हे भगवन्! इस संसार में कोई भी दु:खी न रहे तभी सच्चे शाश्वत सुख को प्राप्त करें। वह सच्चा सुख मिलता कहां से है तो कवि कहना चाहते हैं धर्म से सुख मिलता है वे काव्य-9 की आगे की दो पंक्तियों के माध्यम से कहते हैं-

घर-घर चर्चा रहे धर्म की-दुष्कृत दुष्कर हो जावें।
ज्ञान चरित उन्नत कर अपना, मनुज जन्म फल सब पावें।।

आचार्य कुंदकुंद देव अपने साहित्य में लिखते हैं-

''**चारित्तं खलु धम्मो**'' चारित्र ही धर्म है, यह प्रत्येक प्राणी का धर्म है, स्वभाव है। वहीं दूसरी ओर जुगलकिशोरजी कहते हैं- घर-घर में यह चारित्र रहे। हम ईंट, चूने, पत्थर के मकान को घर समझते हैं, कुटुम्ब परिवार को घर समझते हैं, परन्तु इतने मात्र का नाम घर नहीं है। घर तो प्रत्येक प्राणी के शरीर का नाम है। तुलसीदासजी ने रामायण में लिखा है-

दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान।
तुलसी दया न छोड़िये, जब तक घट में प्राण।।

शरीर यानि घर, जैन पंडित विद्वान है उन्होंने कहा-प्रत्येक शरीरधारी के अंदर धर्म की चर्चा होनी चाहिए। तो आचार्य भगवन् कहते हैं-स्वयं ही सुख व शांति का साम्राज्य छा जायेगा फिर शांति की प्रार्थना नहीं करनी पड़ेगी। सुख-शांति मांगने से नहीं मिलती। सुख किसी भी वृक्ष, खदान या फैक्टरी से प्राप्त नहीं होता, वह तो अंतरात्मा के पवित्र विचारों से उत्पन्न होता है।

एक व्यक्ति ने एक बार भगवान से प्रार्थना की, कि हे भगवन्! मुझे मकान मिल जाए तो मैं सुखी हो जाऊँगा अन्यथा दुःखी रहूंगा। इस बात को एक शिष्य ने सुना तो कहा-मेरे गुरु के पास चलो वे तुम्हें सुख का रास्ता बतायेंगे मकान, दुकान जो भी चाहिए सब कुछ गुरु देंगे। गुरु के सामने खड़ा कर दिया, गुरु ने कोई उत्तर नहीं दिया दूसरे दिन दूसरे व्यक्ति को लाकर खड़ा कर दिया, उसे दुकान की कामना थी। तीसरे दिन रोगी आया उसे भी गुरु के पास खड़ा कर दिया। परंतु गुरु मौन थे कुछ भी नहीं बोले। एक बच्चा 3 साल से फेल हो रहा था वह जगह-जगह पूछता विद्या कैसे आयेगी। शिष्य उसे भी गुरु के पास ले गया परंतु वे फिर भी मौन रहे। एक दिन एक व्यक्ति जमीन के विवाद से परेशान था। दो भाईयों का परस्पर झगड़ा था, गुरु ने कुछ नहीं सुना, काफी लोगों को लाया गया गुरु मौन ही थे। शिष्य को गुस्सा आ गया और उसने कहा गुरुदेव मैं इतने लोगों को आपसे जोड़ता हूं, इतने भक्तों को लाता हूं आपने एक की भी प्रार्थना नहीं सुनी। प्रार्थना किस बात की, ये सब प्रार्थना कर रहे हैं किसकी? ये सब दुःखी हैं, इन्हें सुख प्रदान कीजिए। सारा संसार सुख चाहता है।

"जे त्रिभुवन में जीव अनंत सुख चाहे दुःख ते भयवन्त।"

ये शब्द तुम्हारे है, विचार तुम्हारे हैं। शिष्य ने कहा भगवन् सारा संसार सुख चाहता है, ठीक है मैं उन्हें सुख दूँगा। सारे लोगों को आमंत्रित करो, कहना ही क्या था? शिष्य खुश हो गया, जगह-जगह ढोल पीटे गये सब आकर अमुक स्थान पर एकत्रित थे, हमारे गुरु आज सुख बाँटेंगे। सब प्राणी ताला लगा-लगाकर तथा अपने-अपने थेले लेकर गुरु के पास पहुँच गये। बहुत सारी भीड़ एकत्रित हो गई। शिष्य जानता था, सारा संसार सुख चाहता है, गुरुदेव आंखे खोलिये सारा लोक सुख चाहता है। सुख पाने के लिए इतनी सारी भीड़ एकत्रित हो गई है। गुरु बोले-भीड़ तो काफी है परंतु कोई शांतिच्छुक, सुखेच्छुक नहीं दिख रहा। शिष्य ने कहा-यदि ये सब सुख न चाहते तो क्यों आते। गुरु बोले सबकी एक लिस्ट तैयार करो वह एक-एक व्यक्ति के पास पहुँचा और सबकी डिमाण्ड को लिख कर एक लिस्ट तैयार की। एक-एक व्यक्ति का नाम लिखते-लिखते शाम हो गई, पूरी कॉपी भर गई। गुरु ने कहा-एक बार और पूछकर आओ अब तो कोई बात शेष नहीं यदि हो तो अभी भी लिख सकते है। दूसरी कॉपी भी भर गई। गुरु ने कहा एक बार पुनः पूछ लीजिए। शिष्य ने पुनः एनाउन्स किया और भी जो चाहते हो एक बार में लिखा दो। लोगों ने कहा-एक दिन का समय दिया जाए। शिष्य बोला गुरुदेव

लोग एक दिन का समय मांग रहे हैं। सभी ने अपनी-अपनी लिस्ट तैयार की, सबकी बड़ी-बड़ी लिस्ट थी। समाचार सुनते-सुनते सभी जगह मोबाइल कर दिया गया, सारे-रिश्तेदार, कुटुम्ब परिवार को बुला लिया। गुरु ने देखा कहा-यहाँ बैठ जाओ। और सारी लिस्ट को अच्छी तरह से आलोड़न करो और बताओ कि किसी में सुख शब्द लिखा है क्या? पन्ने पलटते-पलटते शिष्य को पसीना आ गया परंतु किसी भी लाईन में सुख शब्द नहीं था। शिष्य बोला-गुरुवर मैं तो अभी तक भ्रांति में था और संसार में सभी प्राणी भी भ्रम में है यहाँ कोई व्यक्ति सुख नहीं चाहता बल्कि पौद्गलिक वस्तु चाहता है। हमें पर पदार्थों में सुख का भ्रम अवश्य होता है। लेकिन जब निकट पहुँचते हैं तो पता चलता है इन पदार्थों में सुख नहीं अपितु दु:ख का अथाह समुद्र है। आपने कल्पना की थी कि मुझे पेट भर भोजन मिल जाए तो सुखी हो जाऊँगा। लेकिन पता चलता है कि पेटी भर भी मिल जाए तो भी दु:ख का लेवल बराबर रहता है। मैं सुखी नहीं अपितु अभी भी दु:खी हूं। रोटी नहीं मुझे मकान चाहिए, जब मकान भी मिल जाता है तो दुकान की चाहत होती है। दुकान भी मिल गई तो अब ग्राहक चाहिए, ग्राहक भी मिल गये तो अब माल चाहिए। जब माल भी मिल गया तो अब नफा भी चाहिए और पेटी रखने के लिए सुरक्षा करने वाला चाहिए। इस प्रकार प्रार्थनाएँ, इच्छायें चलती ही रहती है, परन्तु कभी भी इच्छाओं की पूर्ति हो पाना संभव नहीं है। आत्मानुशासन ग्रंथ में आचार्य श्री गुणभद्र महाराज कहते हैं-

"आशा गर्त प्रति प्राणि, यस्मिन् विश्व मणुपमं।
कस्य किं किय दायाति, वृथा वो विषयैषिता।।

कि प्रत्येक प्राणी का आशारूपी गड्ढा इतना बड़ा है कि उसमें सारा विश्व भी अणु मात्र प्रतीत होता है।

एक प्राणी जब तीनों लोकों की संपदा चाहता है तो अनंत प्राणियों की इच्छा कितनी होगी। जितना विचार हम पर पदार्थों के विषय में करते है, उतना अपनी आत्मा के विषय में नहीं कर पाते फलत: आत्मा सुखी नहीं हो पाती। जितना हम ध्यान बाह्य संसार का रखते है। उतना धर्म का रखने लग जाये तो व्यक्ति दु:खी नहीं अपितु सुख, शांति, आनंद से भर जायेगा। इसीलिए कवि कहता है-

घर-घर चर्चा रहे धर्म की, दुष्कृत्य दुष्कर हो जावें।

धर्म की चर्चा, सुख की चर्चा, शांति की चर्चा हर घर में हो। जहां संतजन

होते है वहाँ घर-घर में धर्म की चर्चा होती है। किसी न किसी पोइण्ट से व्यक्तियों के बीच चर्चा होती है। कभी स्वाध्याय, कभी प्रश्नमंच, कभी वैय्यावृत्ति तो कभी आहारदान के माध्यम से चर्चा होती है। यही धर्म चर्चा है। जहाँ चाहे माँ हो बच्चे हो, बेटा हो, पिता हो या पंडित सभी अध्ययन में लगे रहते है।

जहाँ संतजन नहीं होते तो पहले घर का प्रात:काल अखबार व चर्चा चाय से प्रारंभ होती थी अथवा विसंवाद से मंगलाचार होता था परंतु आज संतजन है तो घर-घर धर्म का मंगलाचार होता है, प्रभु नाम से प्रात:काल होता है। कवि ने कहा घर-घर चर्चा रहे....

जब घर-घर में धर्म की चर्चा रहेगी। जितने समय धर्म चर्चा होगी तो उतने समय दुष्कृत दूर हो जायेंगे एक व्यक्ति बोला-महाराज! ऐसे प्रवचन सुनने से क्या लाभ जिसे सुनकर भी एक भी नियम न हो सके। मैंने स्वाध्याय करना बंद कर दिया क्यों कि कुछ पालन नहीं कर पाता। मैंने कहा-ऐसा कभी भी नहीं करना चाहिए, कुछ पालन कर पाओ या न कर पाओ आपको कुछ समझ पाओ या न समझ पाओ तो भी प्रवचन सुनो, वाचना में आओ। भगवान के नाम गहराई में पहुँच पाओ या न पहुँचो पाओ परंतु माला सदा फेरते रहो, न जाने माला का कौन सा मोती हमारे जीवन की उन्नति में कारण बन जाए। माला होगी तो विचार आयेंगे जाप कर लूँ, शास्त्र के सन्मुख बैठोगे तो इच्छा होगी देखूं इसमें क्या है? कुछ होगा ही नहीं तो विचार कैसे बदलेंगे।

क्रिश्चियन्स में इतना साहित्य प्रकाशित हुआ कि मुफ्त में वितरित हुआ। किसी ने एक पुस्तक मांगी तो 5 दे दी गई। जगह-जगह पुस्तकें वितरित की गई। लोगों ने कहा-आपका साहित्य तो रद्दी में बिकता है कचरे में जाता है। उनके अनुयायियों ने कहा कोई दु:ख नहीं, रद्दी में भी जायेगा तो कोई न कोई उठाकर पढ़ेगा तो साहित्य की कीमत समझ में आ जायेगी। कहने का तात्पर्य है स्वाध्याय में अवश्य बैठो।

बुंदेलखण्ड में जब धवलाजी की वाचना चल रही थी उस समय वृद्ध से वृद्ध लोग भी आते थे। उनसे पूछो कि आपको कुछ समझ में आया तो बोले-महाराज! बैठता तो हूं, बैठना तो अच्छा है, यदि एक बात भी समझ में आ गई तो कुछ न कुछ ज्ञान तो बढ़ेगा। बैठने के संस्कार बनेंगे और एक दिन स्वाध्याय के विचार बन जायेंगे। कहने का तात्पर्य यह है कि हम धर्म की चर्चा भी करें तो अच्छा है लोग कहते हैं जो चर्या में न आये तो चर्चा से क्या लाभ। कम से कम यह

लाभ तो है कि जितने समय तक धर्म की चर्चा करेंगे उतने समय तक के लिए कम से कम राग, द्वेष से तो बच ही जायेंगे। धर्म की चर्चा दुष्कृत को दुष्कर कर देती है। पाप कर्म को नष्ट कर देती है।

एक सेठ जी थे जो शाम को मंदिर में जाते और स्वाध्याय में बैठते थे। परंतु जैसे ही स्वाध्याय शुरू होता था सेठजी को नींद आने लगती थी। कभी मुख खुलता तो कभी लार बहती। लोग प्रवचन कम सुनते थे और उन्हें अधिक देखते थे। लोग कहते ये सोते तो रहते है सुनते नहीं तो इनके प्रवचन में आने से क्या लाभ। प्रवचनकार ने कहा नींद भी आ जाए तो अच्छा है एक बार भी नींद खुली और कुछ शब्द भी कान में पड़ जाये तो कुछ न कुछ तो लाभ होगा। रस्सी को भी जब बार-बार पत्थर पर घिसा जाता है तो पत्थर भी कट जाता है। तो क्या कर्म रूपी पत्थर ढीले नहीं पड़ेंगे। परिवर्तन अवश्य होगा। कवि जुगलकिशोरजी कहते है-

''ज्ञान चरित उन्नत कर अपना, मनुज जन्म फल सब पावें।''

चर्चा ज्ञान व चारित्र की है। ज्ञान को देहली का दीपक कहा जाता है। जो दोनों कमरों को प्रकाशित करता है। सर्वार्थसिद्धि में आचार्य पूज्यपाद महाराज ने इसे मध्य दीपक कहा है जो एक ओर श्रद्धा को निर्मल बनाता है तो दूसरी ओर चारित्र को उन्नतशील बनाता है। हम कहते हैं ज्ञान चाहिए ज्ञान के बाद चारित्र की चर्चा है। जीवन भर का इतना समय गवां दिया। एक भी व्रत, संयम, नियम नहीं लिया, क्या अपना जीवन ऐसा ही चला जाएगा, क्या चारित्र की कॉपी खाली रहेगी। धर्म का कॉलम खाली रहेगा। चारित्र भी होना चाहिए। माँ कहती है-बेटा, रात्रि में भोजन नहीं करना, आप भी नियम लो, माँ कहती है बेटा रोज दर्शन करने जाया करो, बेटा कहता है माँ तुम भी तो मंदिर नहीं जाती। पिता कहते है-हम दोनों चाहते हैं वे खुश हो जाते हैं।

महाराज ने एक बार नियम दिया दर्पण में मुख नहीं देखना। बच्चे ने जाकर अपनी मम्मी को कहा- मम्मी-मम्मी महाराज ने आज यह नियम दिया है कि दर्पण में मुख नहीं देखना। मम्मी ने कहा यह नियम तो अच्छा है मैं भी पालन कर लूंगी, पापा ने सुना तो बोले मैं भी पालन कर लूंगा। बस दर्पण पर पर्दा डाल दिया गया।

एक व्यक्ति के नियम ने घर के वातावरण को निर्मल कर दिया। घर का एक सदस्य नियम लेता है तो सारे सदस्यों का पालन होता जाता है। मनुष्य जन्म का यही फल है जीवन को उत्साह शक्ति से भरें, व्रत-संयम से श्रृंगारित करें।

आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज ने अपनी सल्लेखना समाधि के 22 वें

उपवास के दिन अपने उद्बोधन में मनुष्य जीवन की सार्थकता को बताते हुए कहा था कि-

''बाबा नो, भीरून का, संयम धारण करा, संयम धारण केले सिवाय मुक्ति नाहीं।''

अर्थात् बाबा लोग घबराओ नहीं, संयम को धारण करो क्यों कि संयम को धारण किये सिवाय मुक्ति नहीं हो सकती।

यदि कोई यह पहले से सोच लें कि मैं कुछ नहीं कर सकता तो सारा जीवन यूं ही चला जायेगा। इसलिए अपने ज्ञान व चारित्र को ऊँचा करके मानव जीवन को सफल बनावें।

इसी भावना के साथ....।

''जिनवाणी माता की जय''

दिनांक 27-07-2008

रविवार, प्रात: 9.00 बजे बोरीवली, मुंबई

ईति भीति सब दूर भगाऊँ

भव्य बंधुओ!

कवि का अंतर हृदय अपनी गति से गतिमान है नित नये-नये चिंतन कविता का रूप लेते जा रहे हैं और पाठक के हृदय को गुण ग्राही बनने उद्‌वेलित कर रहे हैं। काव्य 10 के माध्यम से वे कहते हैं-

ईति भीति व्यापे नहीं जग में, वृष्टि समय पर हुआ करे।
धर्म निष्ठ होकर राजा भी, न्याय प्रजा का किया करे।।
रोग मरी दुर्भिक्ष न फैले, प्रजा शांति से जिया करे।
परम अहिंसा धर्म जगत में, फैल सर्व हित किया करे।।

मेरी भावना का उपान्त्य छंद है। भक्त भगवान से प्रार्थना करता है अंतरंग की बात कहता है, अपने विचारों से अपना परिचय देता है, जब हम करूणा, दया से भींग जाते हैं। हृदय करुणा से भर जाता है तो विश्वकल्याण की भावनायें उत्पन्न होती है यह धर्म का पहला लक्षण है। पहचान है कि हमारे अन्दर धर्म आ चुका है। धर्मात्मा का परिचय जटाजूट से नहीं, तिलक, चोटी, वेशभूषा से नहीं होता। धर्मात्मा किसी भी वेश में हो उसका परिचय वेश नहीं अंतरात्मा कराती है। जब धर्म उद्‌भूत होता है तो आत्मा निर्मल हो जाता है। आचार्य कहते है-पर पीड़ा का दु:ख धर्मात्मा को महसूस होता है। यदि किसी को सुई चुभाये तो जो दर्द होगा तो संवेदन पहले धर्मात्मा को होने लगता है इसलिए वह किसी को सताता नहीं है, ये दया के सूत्र है, लक्षण है, दयालु दूसरों के कष्ट तकलीफों को अपना मानता है यही कारण है कि वह पिघल जाता है। महात्मा बुद्ध जंगल में बैठ साधना कर रहे थे, ध्यान में डूबे थे, उसी वक्त बाण से विधा हंस पास में आ गिरा तो उसके शरीर से रक्त बह रहा है। जितना वह छटपटा रहा था उसे अधिक बुद्ध का मन छटपटा गया।

उन्होंने पक्षी को गोद में ले लिया, उन्होंने नहीं सोचा कि खून से मेरे कपड़े या हाथ गंदे हो जायेंगे। धर्मात्मा यदि किसी के शरीर की गंदगी को देखे तो वह उसकी रक्षा नहीं कर सकेगा। उन्होंने उसे उठा लिया और बाण निकाल दिया तथा जड़ी-बूटियों से घाव पर मरहम पट्टी कर दी। कुछ समय बाद हंस होश में आ गया उसने बुद्ध को देखा, बुद्ध ने उस हंस को पत्थर की शिला पर रखा तो वह उड़ गया। धर्मात्मा दूसरे की पीड़ा को अपना मानता है। भगवान राम जब वनवास में थे तब सीता हरण के उपरांत जब गिद्ध पक्षी सीता की रक्षा करते-करते घायल हो गया और नीचे गिर पड़ा राम ने उसे देखा-अरे इसके जिसके पंख चारों ओर से कटे है, शरीर क्षत-विक्षत था। उन्होंने उस गिद्ध पक्षी को देखा तो द्रवित हो गये, और उसे हाथ में उठा लिया, यदि अपने सामने गिद्ध होता तो हम दूसरों को पुकारते है, नौकर-कर्मचारी को देखते है। उसके शरीर में घाव है मैं नहीं छुऊँगा। मर्यादा-पुरुषोत्तम राम ने उसे जड़ी-बूटी लगाकर ठीक कर दिया। हृदय जिसका जितना कोमल होता है, तो दूसरे की वेदना को देख कर घबरा जाता है। चलते वक्त किसी से किसी का पैर लग जाये तो कहता है-माफ कीजिए, मेरे द्वारा आपको तकलीफ हो गई और आपसे अधिक तकलीफ मुझे हो रही है। जो दयालु प्रकृति का होता है कोमल हृदयी होता है वह क्षमा मांगता है। सामने वाला इतना देखता है कि देखो वह क्षमा मांग रहा है। तो वह भी पिघल जाता है। कोई बात नहीं, उसे भी रोष-तोष नहीं आता। चोट लगने पर दुनियाँ माफी मांग लेती है। परंतु दयालु सोचता है कि किसी को तकलीफ ही न हो। व्यक्ति प्रार्थना करता है कि हे भगवन्! किसी को चोट ही न लगे, पीड़ा ही न हो।

ईति यानि जहाँ विभिन्न प्रकार से संहार की, प्रलय की भूमिका आ जाती है। प्राणियों का अवसान होने लगता है। ईति से प्राणी घबराते है तब वह भीति करता है अर्थात् घबराता है। व्यक्ति को सबसे बड़ा भय अपने प्राणों का होता है। हर व्यक्ति को भय है इसलिए कहता है सब चला जाए परंतु प्राण नहीं जाये।

जब व्यक्ति समस्याओं से घिर जाता है, परेशान हो जाता है तो बड़े से बड़ा दुष्कृत्य करने में प्रवृत्त हो जाता है परंतु अंदर से आवाज हो तो उत्तर नहीं का मिलता है। हर प्राणी अपने प्राणों की रक्षा चाहता है इसलिए बचने का प्रयत्न करता है। कुत्ते से भी पूछो तो मरना नहीं चाहता यदि कोई मारना चाहे तो जान

बचाकर भागता है। एक छोटे कीड़े को भी देख लोग कोई मार न दे इस भय से हाथ-पैर हिलाना बंद कर देता है ताकि कोई मृतक समझ मुझे छोड़ दे, मैं मरने से बच जाऊँ। अशुभ पर्याय होती तो प्राणी छोड़ना चाहता। एक कुत्ता खाज भी खुजा रहा है। रोग से पीड़ित है, फिर भी मरना नहीं चाहता, शरीर में कीड़े लग गए फिर भी जीना चाहता है। गति व आयु में बड़ा अन्तर है।

ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न होती है जिनमें ईति का भय है। कुछ समय पहले भूकंप आया था उसका लोगों को बहुत भय हो गया। जैन शास्त्रों में भद्रबाहु संहिता में भविष्य में होने वाली घटना के निमित्त ज्ञान का वर्णन है। उससे पता चलता है कि ऐसी-ऐसी घटना, इतने दिन, महीने आदि के बाद घटेगी पक्षियों को देखकर भी भविष्य की घटनाओं का निमित्त ज्ञान भी लगाया जाता है। आचार्य महावीर कीर्ति जी महाराज ज्ञानी, तपस्वी साधक थे। उन्हें अनेक सिद्धियाँ थी उनका सिद्धवर कूट में प्रवेश होना था वे विहार करके आ रहे थे, काफी भीड़ थी, लोग थे। कार्यक्रम मंदिर के बाहर प्रांगण में रखा गया। महाराज ने कहा कार्यक्रम अंदर से किया जाए। व्यवस्थापकों ने कहा इतनी जनता अंदर नहीं बैठ पायेगी। महाराज बोले-ये चिड़ियां बोल रही है, सुन रहे हो क्या? वह कह रही है कि एक घंटे में घनघोर बारिश होगी, लोग बाहर से आये है, गीले हो जायेंगे, रात्रि में गीले रहना पड़ेगा। फलत: कार्यक्रम अंदर से हुआ ठीक एक घंटे के बाद घनघोर पानी गिरा। लोग कहने लगे यदि कार्यक्रम बाहर से होता तो सब भींग जाते।

एक बार आचार्य शांतिसागर जी का विहार उत्तर प्रदेश से राजस्थान की ओर हो रहा था वे राजाखेड़ा गांव में पहुँचे, वहाँ ठंडी बंहुत थी तथा संघ की सामायिक प्राय: धूप में से ही होती थी, लेकिन एक दिन महाराज ने सभी को आदेश दिया कि आज की सामायिक सभी को अंदर से ही करनी है सभी महाराज गुरु की आज्ञा को शिरोधार्य कर अंदर चले गये। गुरु आज्ञा में सोच-विचार नहीं किया जाता, गुरु आज्ञा पालने वाले शिष्य किंतु, परंतु नहीं करते। क्यों कि उनकी बातों में बड़ा रहस्य छिपा होता है। महाराज भी अंदर बैठ गये तथा आज्ञा दी दरवाजा बन्द कर सकली पर लौक लगा दो। वैसा ही किया गया अब पूछे कौन कि आखिर बात क्या है।

कुछ समय उपरांत कुछ कोलाहल सुनाई दिया, एक जुलूस आ रहा था वे

लोग दिगंबर साधुओं से चिढते थे। लोगों ने देखा कि रोज तो यहाँ साधु रहते थे आज नहीं है, जुलूस वापस लौट गया। उस समय समाज के लोग घबरा गये थे वे सोच रहे थे एक दो को तो रोक सकते हैं परंतु इतनी भीड़ को संभालना कठिन है। जुलूस के जाने के बाद सारा समाज एकत्रित हो गया। सभी ने भक्ति पूर्वक गुरुचरणों में नमोऽस्तु किया। महाराज ने कहा-क्या बात है आप सभी ऐसे क्यों देख रहे हैं वे बोले-महाराज, बहुत बड़ा संकट टल गया, हम तो सोच रहे थे कि बड़ा भारी उपसर्ग होने वाला है। महाराज ने पूछा क्या हुआ? यह अच्छा हुआ कि आप सब लोग अन्दर थे व दरवाजा बंद था। गुरुजन, आचार्यगण अपनी त्याग तपस्या के माध्यम से भविष्य को समझ लेते हैं। महावीर कीर्ति महाराज ने पक्षी को देखकर मौसम का पता लगा लिया। व्यक्ति का चेहरा, पेड़ पौधे, हाथ-पैर, हाव-भाव आदि को देखकर उसके भविष्य को बताया जा सकता है।

प्रलय आने के पहले जानवर छटपटाने लगते है। प्राय: पुरुषों का दांया अंग फड़के तो उसका लक्षण शुभ है यदि पूरा शरीर का बांया अंग फड़के तो अशुभ होता है। आचार्य भगवन् कहते हैं कि वे जान जाते हैं परन्तु मनुष्य जानने का का प्रयत्न नहीं करता। अंतरात्मा में विशुद्धि नहीं होती और विशुद्धि के अभाव में भविष्य को जानने की क्षमता नहीं होती। जब हृदय निर्मल, विशुद्ध दया से भरा होता है तो ये निमित्त ज्ञान हो जाते है।

आचार्य विमल सागर जी को निमित्त ज्ञान था, वचन सिद्धियाँ थी वे जैसा कह दे वैसा हो जाता क्यो कि वे दया से सदा भींगे रहते है। वे कहते थे मेरे पास कोई रोता हुआ न आये और जाये तो हंसता हुआ जाये। एक बार एक डॉ. ने कहा-महाराज मेरा क्लीनिक कम चलता है, आशीर्वाद दीजिए। महाराज ने कहा नहीं दूँगा। क्या तुम यह चाहते हो कि व्यक्ति बीमार पड़े और बिजनेस अच्छा चले। ऐसा नहीं सोचना चाहिए अपितु ऐसा सोचो कि जो भी हमारे यहाँ आये वह स्वस्थ होकर जाये कभी अकाल न पड़े, पीड़ा न हो और यदि कहीं अकाल पड़े तो तुरंत उसकी सहायता को जाईए।

आचार्य श्री आदिसागर जी महाराज जिनका गृहस्थ अवस्था का नाम शिवगौड़ा पाटिल था। अपने गांव में रहते हुए एक बार उस गांव में अकाल पड़ गया, फसल नहीं हुई फलत: सब काम रुक गये लोगों को खाने के लिए कुछ भी

नहीं बचा, कुछ धनिक लोगों के पास पर्याप्त अनाज था, भंडार भरे थे यहाँ लोग भूखे मर रहे थे, कोई सहयोग, सहायता करे। सारे गांव में लोग चंदा कर रहे थे परंतु एक सेठजी ने मना कर दिया, मैंने बड़ी मेहनत से कमाया है। कुछ नहीं दूंगा। लोग परेशान तभी शिवगौड़ा को एक युक्ति सूझी उन्होंने कुछ लोगों के साथ मिलकर सेठजी के भंडार पर धावा बोल दिया। भंडार से ताला तोड़ कर सारा अनाज निकाला और गरीब भूखी जनता में बांट दिया। सेठजी ने पुलिस स्टेशन में शिवगौड़ा की रिर्पोट कर दी। कोर्ट में कटघरे में शिवगौड़ा जी को खड़ा किया गया। वकील ने पूछा-क्या आपने ताला तोड़ा, सत्यभाषी शिवगौड़ाजी बोले-हाँ मैंने वैसा किया। क्यों तोड़ा? उन्होंने बड़े सरल शब्दों में कहा-सर! अकाल से पीड़ित भूखी, दरिद्र जनता ने सहयोग देने से साफ इंकार कर दिया मजबूरन हमें ताला तोड़ना पड़ा। जब जज साहब को पता चला तो प्रसन्न हो गये उन्होंने न केवल शिवगौड़ा को रिहा कर दिया अपितु उनकी प्रशंसा भी की। लोगों ने उन्हें अन्नदाता की उपाधि से विभूषित किया।

कहने का तात्पर्य है कि जो दयालु प्रकृति के होते हैं वे तो यही सोचते हैं कि कहीं भी ईति व भीति न हो। किसी भी नगर-देश में दुर्भिक्ष, अकाल ईति-भीति न हो।

तथा वृष्टि समय पर हुआ करे। संसार के प्राणी प्रकृति के व्यवस्थित होने पर सुख का अनुभव करते हैं परंतु कभी-कभी ऐसा भी होता है कि कहीं-कहीं अतिवृष्टि आवश्यकता से अधिक बारिश हो जाती है तो कहीं अनावृष्टि आवश्यकता से कम वर्षा होती है। तो दोनों ही अवस्थाओं में त्राहि-त्राहि मच जाती है, प्राणी दुःखी हो जाता है। इसीलिए भावना भायी जा रही है कि वृष्टि समय पर हुआ करे। गृहस्थ जीवन विचित्र है, साधु तो नहीं बोल सकते, गृहस्थोचित कार्य गृहस्थ ही कर सकता है। एक बाबा ने आकर एक बार मुझसे कहा-हे साधु महाराज जी, दया करो, पानी पिछले वर्ष नहीं बरसा। लगता है इस वर्ष भी नहीं बरसेगा। मैंने कहा-मांस, मदिरा मत खाना और भगवान का नाम लेना। समाज के प्रमुख ने कहा-कह दो महाराज कि पानी बरसेगा आप कह देंगे तो अवश्य ही बरस जायेगा। मैंने कहा-नहीं मंत्र सिद्धि भी हो तो भी बरसाते भी नहीं और बरसाता हो तो रोकते नहीं। यदि मैं पानी बरसा दूंगा तो कितनी चीटियाँ, छोटे-मोटे कीड़े,

जीव-जंतु मर जाते हैं उनका दोष हमें लगेगा। कहीं अतिवृष्टि हो रही थी लोगों ने कहा-महाराज पानी को रोक दो, पूर आया है मैंने कहा यदि आस-पास पानी की कमी हो और यहाँ का पानी वहाँ जा रहा हो और मैंने रोक दिया तो वे परेशान हो जायेंगे इसलिए हम रोक भी नहीं सकते। इसीलिए भावना भायी जाती है कि वृष्टि समय पर हुआ करे। असमय पर वर्षा हो तो उसकी कोई कीमत नहीं। किसान ने बीज बोया और तभी पानी बरस गया तो फसल खराब हो जायेगी। यदि पानी की वर्षा फसल के पहले हो जाए तो भी नुकसान है। इसीलिए न समय के पहले हो न बाद में हो।

यह विश्वव्यापी प्रार्थना है। ऐसी पवित्र भावनायें तभी अंतर मन में उत्पन्न होती है जबकि व्यक्ति का हृदय दयालुता, कोमलता से भरा हो। सारे विश्व में, शांति में, ऐसी पवित्र भावनायें निरंतर भाते रहना चाहिए।

इसी भावना के साथ....।

''अनंतानंत सिद्ध परमेष्ठी भगवान की जय''

दिनांक 28-07-2008

सोमवार, प्रात: 9.00 बजे — बोरीवली, मुंबई

न्याय प्रिय कर्तव्यनिष्ठ बनूँ

भव्य बंधुओ!

मेरी भावना की इन पंक्तियो में राजा की ओर संकेत किया गया है। कि हमारे देश का राजा कैसा हो? तो कहते हैं-

"धर्मनिष्ठ होकर राजा भी न्याय प्रजा का किया करे।"

न्याय करना कठिन होता है, न्याय के दो तरीके हैं पहला तो यह कि हमारा व्यक्तित्व ऐसा हो कि दुनियाँ हमारा न्याय माने। हमारा व्यक्तित्व कैसा हो- राजा धर्मनिष्ठ हो। धर्म का अर्थ है-कर्त्तव्यनिष्ठ व सदाचारी हो। राजा यदि मर्यादा के साथ आचरण करता है, सदाचारी है तो दुनियाँ उसका सम्मान करती है, बात स्वीकारती है- राजा का आचरण अच्छा नहीं है तो लोग देश छोड़कर चले जाते है अथवा राजा पर ही संकट खड़े हो जाते हैं। राजा धार्मिक नहीं है, कर्त्तव्य परायण नहीं है तो कोई भी राज्य छीन सकता है। यशस्तिलक चंपू ग्रंथ में आचार्य सोमदेव कहते है-काष्ठांगार मंत्री के राजा सत्यंधर थे, यद्यपि वे कर्त्तव्यनिष्ठ थे परंतु धार्मिक नहीं थे अपितु भोग-विलासी थे। वे अपना अधिकांश समय भोग-विलासता में बिताते थे जिससे उन्हें अपनी प्रजा का ध्यान नहीं रहता है न शासन का। शासन की डोर को राज्यमंत्री काष्ठांगार संभाले था, काष्ठांगार ने काफी प्रयास किया कि राजा सही रास्ते पर चले लेकिन बंधुओं व्यसन बहुत बुरी वस्तु है। कहा भी है-

विषयासक्त चित्तानां गुणा को वा न नाश्यति।
न वैदुष्यं न मानुष्यं नाभिजात्यं न सत्यभाक्॥

विषयासक्त के सारे गुण नष्ट हो जाते हैं। विद्ववता, मनुष्यता सब नष्ट हो जाते हैं।

काष्ठांगार ने अवसर का फायदा उठाया और सारे सैन्य बल तथा पूरे राज्य को अपने हाथ में ले लिया और स्वयं सिंहासन पर बैठ गया। राजा को मालूम पड़ा मेरा सारा राज्य व सिंहासन काष्ठांगार ने छीन लिया, जैसे ही वे राजमहल में प्रवेश करने लगे द्वारपालों ने उन्हें रोक दिया-महाराज ने आपको अंदर जाने से निषेध किया है। राजा को आश्चर्य होता है-मेरे राज्य में मुझे निषेध काष्ठांगार सैनिकों को खड़ा कर देता है, काष्ठांगार ने सभी समर्पित लोगों को अपने हाथ में ले लिया, धन-दौलत व प्रजा सब कुछ उसके हाथ में था। काष्ठांगार ने शक्तिशाली लोगों को आगे कर राजा को पराजित कर दिया, राजा अपनी गर्भवती महारानी को मयूर यंत्र में छिपे रास्ते से उड़ा देता है। वह मयूर यंत्र वन में रूकता है। वहाँ जीवन्धर कुमार का जन्म होता है। अचानक वहाँ से एक श्रेष्ठी गुजरता है, महारानी जीवन्धर कुमार को वहीं छोड़ वृक्ष की ओट में छिप जाती है। जैसे ही श्रेष्ठी वहां से गुजरता है तो देखता हैं कि यहाँ यह बालक, यहाँ कैसे पड़ा है। वह श्रेष्ठी नि:संतान था वह बालक को देख प्रसन्न हो जाता है और बच्चे को उठा लेता है। वह देखता है कि यह बालक तो बड़ा तेजस्वी है कोई राजपुत्र दिखाई देता है। वह मन ही मन सोचता है कि भगवान ने मेरी सुन ली इसलिए मुझे यह बालक भेंट में दिया है। ऐसा क्या उपाय निकालूं कि मैं यह सिद्ध कर सकूं कि यह मेरा है वह पत्नी के पास गया, पत्नी उदास थी। जिसके पुत्र न हो वह पत्नी स्त्री बहुत दु:खी होती है। क्योंकि लोग नाना प्रकार की बातें करते हैं। वह सेठानी भी अत्यंत दु:खी थी। दु:खी मन से जीवन व्यतीत कर रही थी। सेठजी, सेठानी के पास पहुँचते हैं, कहते हैं भागवान! आज भगवान ने हमारी सुन ली। भगवान ने यह पुत्र रत्न दिया है, तेजस्वी है। राजकुमार से कम नहीं भविष्य में राजा बनेगा। बालक को देखते ही वह खुश हो जाती है सेठजी, सेठानी को बालक को सौंप देते हैं कि सेठानी को गूढ़-गर्भ से पुत्र जन्म हुआ है। धीरे-धीरे जीवन्धर कुमार का विकास होता है। वे बड़े हुए जब उन्हें वास्तविकता का पता हुआ कि मेरे पिता अमुक राज्य के राजा थे वे इस तरह से बंदी बनाये गये और उनका राज्य छीन लिया गया, काष्ठांगार ने अन्याय किया। जीवन्धर कुमार युद्ध की तैयारी करते हैं व अपने बाहुबल से अपने राज्य को हासिल कर लेते हैं।

राजा धर्मनिष्ठ है तो राज्य को संभाल सकता है। वह धर्मात्मा नहीं होता

तो प्रजा भी उसे छोड़ देती है। जीवन्धर कुमार को पाकर सब प्रसन्न थे क्योंकि वह धार्मिक था। धर्मात्मा का न्याय सत्य की कसौटी पर कसा हुआ होता है। अधार्मिक का न्याय सत्य नहीं होता। जिसके अन्दर असत्य, छल, लोभ हो वह सही न्याय नहीं कर सकता।

एक बार की बात है-दो बिलाव एक स्थान से मावा एक साथ चोरी करके लाये, चोरी करके लाये तो आपस में विवाद हो गया एक बोला मैं खाऊँगा, दूसरा बोला मैं खाऊँगा। अब निर्णय कौन करे? वहाँ वृक्ष के पास एक बंदर रहता था। वे दोनों बिलाव निर्णय कराने के लिए बंदर के पास पहुँच गये बंदर महाराज! न्याय कीजिए, आप ही बलशाली है, चतुर है, बुद्धिमान है। बंदर बोला-हाँ अवश्य न्याय करूँगा। हम ये मावा चोरी करके लाये हैं अब इसे खाये कौन? बंदर ने कहा-दोनों को आधा-आधा बांट लेना चाहिए। अधिक रहेगा तो मैं ले लूंगाँ। ठीक है-आप ही आधा-आधा कर दो, जो अधिक बचे वह आप ले लेना। बंदर ने मावा के दो भाग किये आधा इस पलड़े पर आधा दूसरे पलड़े पर रख दिया। परंतु दूसरे पलड़े का कुछ ज्यादा था उसे निकाल कर बंदर ने स्वयं खा लिया, अब हुआ यों कि पहले पलड़े का ज्यादा व दूसरे का कम हो गया तो बंदर ने पहले पलड़े का कुछ मावा उठाया व स्वयं खा लिया अब पहले पलड़े का कम हो गया परंतु दूसरे पलड़े का पुन: अधिक हो गया उसने वह भी खा लिया ऐसा करते-करते पूरा मावा बंदर ने खा लिया, दोनों बिलाव देखते रह गये बंदर ने कहा मैंने न्याय कर दिया। बिलाव समझ गये कि घर के विवाद को पड़ौसी तक नहीं ले जाना चाहिए। अन्यथा फिर वह न्याय नहीं रहता अपितु अन्याय हो जाता है विवाद घर से बाहर पहुँचता है तो सुलझने की जगह उलझता ही जाता है।

राजा न्याय प्रिय, सत्यवादी, निर्लोभी, स्वार्थी होना चाहिए। यदि ऐसा है तो राज्य का संचालन कर सकता है। व्यवहार कुशल होना चाहिए कि लोग आपके न्याय को मानने वाले कम व अन्याय को मानने वाले अधिक है कभी अकेला राजा कहीं चोरी की नगरी में पहुँच जाये तो वे राजा के न्याय को भी असत्य कर देंगे। इसलिए राजा के पास धर्मशक्ति की आवश्यकता है। किसी चोरों की नगरी में यदि राजा अकेला हो तो वे चोर मिलकर राजा का काम तमाम कर देंगे या राजा से अन्याय के हस्ताक्षर ले लेंगे और प्राणों की रक्षा हेतु राजा को हस्ताक्षर

करना पड़ता है। आज कल ऐसी घटनाएँ देखने में आती हैं चोरों के घर में एक पुलिस फंस गया तो उसे भी घूंस देकर हाथ में ले लेते हैं। आज चोरी होने के बाद बहुत देर बाद में पुलिस आती है। एक नगर में डकैत पड़ा यह एम.पी. की सत्य घटना है-चोरों के गिरोह ने एक घर को चारों ओर से घेर लिया, पुलिस को फोन कर दिया गया कि अमुक गिरोह ने हमें चारों ओर घेर लिया है पुलिस ने कहा-ठीक है। समाचार तो पुलिस तक भेज दिया गया लेकिन डाकू यहाँ मालिक को चाबियाँ देने हेतु धमका रहे थे मालिक ने बहाना बनाया कि मेरी चाबी यहाँ नहीं है कहीं दूर है वहाँ से लेकर आता हूँ। परन्तु चोरों ने समझ लिया कि यह सेठ सत्य नहीं बोल रहा अत: उन्होंने भय के कारण सारी चाबियां फेंक दी। उन्होंने चाबियाँ लेकर ताले -खोल सारा माल निकाल लिया और भागने लगे, घर के लोग चिल्लाये, तब तक पुलिस भी आ गई परंतु पुलिस चोरों की ओर नहीं घर की ओर दौड़ी। यह सारा मामला कोर्ट में पहुँचा दिया गया। मकान मालिक ने कहा-कि हमने पुलिस को बहुत पहले ही सूचना दे दी थी परंतु पुलिस वाले बहुत देरी से आये। उस समय चोर जा रहे थे परंतु पुलिस वालों ने चोरों को नहीं पकड़ा और घर में घुस गये। जज ने पुलिस से पूछा यह बात सत्य है, तो पुलिस ने कहा हाँ सत्य है परंतु पुलिस कम थी, डाकूज्यादा थे। अब क्या करता? प्राणों को देकर भी उन डाकुओं को पकड़ना संभव नहीं था। सत्य कभी-कभी पिटता भी है जबकि असत्य की प्रचुरता हो, जब झूठ की बाहुलता हो तो सत्य पर संकट आने लगता है। इसीलिए दो प्रकार के बल कहे हैं :- **(1) धर्म बल (2) सैन्य बल।**

पहले व्यक्ति नैतिकता से काम करता है जब मर्यादा टूटने लगे तो सैन्य बल से काम लिया जाता है। राजा के पास सैन्य बल प्रजा को कष्ट देने के लिए नहीं, अपितु उसकी रक्षा करने के लिए होता है। अन्याय-अनीति न फैले इसलिए सैन्य बल का प्रयोग किया जाता है। पहले सर्वाधिक रूप से दंड दिये जाते थे। ताकि दंड को दिया जाए परंतु सबक सबको मिल जाए व अनेक लोग सुधर जाये यह उस समय की नीति पद्धति थी। इसीलिए कहा गया है कि-''**धर्मनिष्ठ होकर राजा भी न्याय प्रजा का किया करे।**''

'धर्म-निष्ठ' का अर्थ यह नहीं कि राजा किसी धर्म विशेष का अनुयायी हो, धर्म विशेष से जुड़ेगा तो शासन को नहीं चला पायेगा। क्यों कि एक राज्य में

अनेक धर्मानुयायी होते हैं। राजा धर्म विशेष से जुड़े तो सही न्याय नहीं कर पायेगा।

कर्त्तव्य निष्ठ, सदाचारी ऐसा राजा हर प्रकार से न्याय कर सकता है। वह स्वयं कर्त्तव्य निष्ठ बन जाये तो लोग न्याय मानेंगे, देने की आवश्यकता नहीं रहेगी। डॉ. भीमराव अंबेडकर ने देश का संविधान तैयार कर राष्ट्रपिता के सन्मुख रखा- आप राष्ट्रपिता हैं, हम बालक हैं आप इसे राष्ट्रीय दृष्टि से देख लीजिए। आपके देखने के बाद ही लागू किया जायेगा। गांधीजी ने संविधान का अच्छी तरह अवलोकन किया और रख कर बैठ गये, सभी लोग खड़े थे, सभी इंतजार कर रहे थे कि गांधी जी कुछ बोले परंतु वे चुपचाप बैठे रहे। उसे देखते रहे, अंत में बोले- संविधान के विषय में हमें दो शब्द बोलना हैं-संविधान को प्रजा मानने लग जाए, सभी अपने-अपने कर्त्तव्य के अनुसार चलने लग जाए तो संविधान बनाने की कुछ आवश्यकता ही नहीं। कानून अच्छे व्यक्तियों के लिए नहीं होता। जो बालक कर्त्तव्य निष्ठ न हो उन्हें बंधन में बांधा जाता है। कुछ लोग कहते हैं यहाँ संघ में न देख सकते, न बोल सकते, न सामान ले दे सकते हैं। परंतु जो समझदार होते हैं उन्हें ये जब बंधन नहीं लगता। वे इसमें भी स्वाधीनता का ही अनुभव करते हैं क्यों कि वे कर्त्तव्यनिष्ठ हैं। यदि व्यक्ति कर्त्तव्यनिष्ठ नहीं है, तो भी संविधान की क्या आवश्यकता।

इसके पीछे सिद्धान्त यह छिपा है कि हम कर्त्तव्य निष्ठ बने, धर्म के पथ पर अपने कदम बढ़ायें, व्रत, नियम, संयम प्रतिज्ञाओं पर अटल रहें तो कर्मों के जेल में पड़ी आत्मा बंधन मुक्त हो सकती है। मुक्ति धाम को पा सकती है। हम न्यायप्रिय, कर्त्तव्यनिष्ठ बनें तभी हमारी आत्मा सुख-शांति को पा सकता हैं।

इसी भावना के साथ....।

''चौबीस तीर्थंकर भगवान की जय''

दिनांक 29-07-2008

मंगलवार, प्रात: 9.00 बजे बोरीवली, मुंबई

धर्मशांति हित भावना भाऊँ

भव्य बंधुओ!

कवि "**मेरी-भावना**" की पंक्तियों के माध्यम से अपनी प्रार्थना भगवान से कर रहा है कि हे भगवन! संसार में कोई भी प्राणी रोगी, दु:खी न हो, सारे संसार के प्राणी सुखी रहें, ये विश्व कल्याण की भावनाएँ कवि के अंतस की कोमलता व निर्मलता की परिचायक है जहाँ मृदुता होती है वहाँ से ही ऐसे सूत्र प्रारंभ होते हैं काव्य 10 के माध्यम से वे कहते हैं-

रोग मरी दुर्भिक्ष न फैले, प्रजा शांति से जिया करे।
परम अहिंसा धर्म जगत में फैल सर्वहित किया करे।।

यहाँ प्रार्थना की जा रही है। हे भगवन्! रोग, मरी व दुर्भिक्ष न फैले मरी- जिस रोग के होने पर प्राणी मृत्यु को प्राप्त होने लगते हैं। वह मरी है शांतिधारा में बोला जाता है। सब प्रकार मे मारी का क्षय हो। पुष्प मारी, फलमारी, गजमारी- छिंदी-छिंदी, भिंदी-भिंदी अर्थात् सभी प्रकार की बीमारी नष्ट हो जावें। पुष्प व फल जिसके होने पर क्षरण को प्राप्त होने लगते हैं वह पुष्प व फलमारी कहलाती है। ऐसी बीमारियाँ किसी को न हो।

सम्यग्दृष्टि भगवान के सामने प्रार्थना करता है हे भगवन्! ऐसे रोग न फैले सोचिए उसकी कितनी ऊँची भावना है प्राय: व्यक्ति अपने दु:ख को देखता है दूसरे के दु:ख को नहीं देखता। एक व्यक्ति भावना भा रहा है नरमारी छिंदी-छिंदी, भिंदी-भिंदी यानि संसार में मनुष्य खत्म हो ऐसे रोग न फैलें। एक बार प्लेग रोग फैला था जिसका संवाहक एक चूहा था। भोजन, पानी आदि के द्वारा वे जीव आते है और व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है। हैजा हो जाता है। एक चिकनगुनियां रोग फैला जिससे प्राणियों की मृत्यु हुई। आज कल एक नया रोग स्वाईन फ्ल्यू भी चला है। यह भी किसी वायरस के माध्यम से होता है तथा शीघ्र ही व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है।

बंधुओ! भगवान का भक्त प्रभु से यही प्रार्थना करता है कि सच्चा धर्मात्मा किसी को दु:खी, अश्रुपूरित या भूखा-प्यासा नहीं देखना चाहता। जो दूसरे के कष्टों को देखकर पिघलता है वह सच्चा धर्मात्मा है। दूसरों को हमारे द्वारा कष्ट न हो ऐसा प्रयास करता है। धर्म कहीं बाहर से नहीं होता। लोग चंदन लगा लेते हैं, चंदन लगाने से, चोटी रखने से या ड्रेस पहनने मात्र से कोई धर्मात्मा नहीं होता। धर्म आपकी आत्मा में आना चाहिए। यदि ऐसा है तो वह धर्मात्मा है। धर्म का संबंध शरीर, वेश या चर्चा नहीं होना चाहिए। अपितु धर्म आत्मा में आना चाहिए।

एक बार अमेरिका के राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन थे। उनके ऑफिस में एक कर्मचारी सफाई कर रहा था, सफाई करते वक्त एक स्फटिक का पेन जो टेबल पर रखा था उसके हाथ से गिर कर टूट गया। किसी देश के प्रधानमंत्री ने सम्मान के रूप में उन्हें दिया था। वह कर्मचारी घबरा गया, उसकी आंखों से आंसू गिरने लगे, वह कांपने लगा। जब राष्ट्रपति वहाँ आये तो उन्होंने पूछा-तुझे क्या हो गया? वह डरते-डरते बोला सर! पहले मुझे प्राण दान दीजिए। राष्ट्रपति ने उसके सिर पर हाथ रखा और कहा-तुम तो मेरे परिवार के सदस्य हो। क्या मैंने आज तक किसी के प्राण लिये क्या? सर! मैंने कभी देखा भी नहीं, सुना भी नहीं पर मेरे अपराध की सजा प्राण दंड से कम नहीं। उसने पेन के टुकड़े राष्ट्रपति के हाथ में सौंप दिये वह बोला-सर! झाड़ू लगाते समय आपका कीमती पेन टूट गया। यह भारत के राष्ट्रपति ने राष्ट्रीय सम्मान में दिया था। राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन ने कहा-ये तो टूटने वाली ही वस्तु थी। तुम्हारे हाथ से नहीं टूटती तो मेरे हाथ से भी टूट सकती थी। ऐसे दयालु परिणाम जहाँ हो वही धर्मात्मा है। व्यक्ति दिखावा करता है पर आत्मा धर्म से भीगती नहीं, धार्मिकता अंतरात्मा तक नहीं पहुँचती। जब तक हृदय में धर्म नहीं तब तक वह धर्मात्मा की कोटि में नहीं आ पाओगे, धर्म की उपलब्धि नहीं हो सकती।

भावना भायी जा रही है-किसी को कभी रोग न हो और यदि हो गया हो तो उसका रोग ठीक हो जाए चाहे अपने जेब से खर्चा क्यों न करना पड़े। शिखरजी में एक सज्जन थे, ट्रस्ट के पदाधिकारी थे, मालूम चला धर्मशाला मे कोई यात्री बीमार है। उन्होंने ऑफिस से कर्मचारी को भेजा और कहा-इसे भर्ती कराकर इलाज करा दो। करीब 5 से 7 हजार खर्च हुए जो भी खर्चा था उस कर्मचारी ने मैंनेजर को दे दिया। उसी समय ट्रस्टी ने कागज स्वयं ले लिया। पैसे तो चढ़ाने पड़ेंगे उन्होंने जेब से पैसे दे दिये। लोगों ने कहा-ट्रस्ट समिति दे देगी। ट्रस्टी बोले-मैं इतना असमर्थ नहीं हूं कि किसी की औषधि का पैसा क्षेत्र से दिलाऊं, यह मेरी उपस्थिति

में नहीं हो सकता, कोई व्यक्ति इलाज कराने लायक न रहे तो मुझे खबर करना। जैन समाज के ऐसे कई उदाहरण हैं। जिन्होंने आपत्ति-विपत्ति में रक्षा की। रोग न हो, हो गया है तो ठीक हो जाए नाम आयेगा तो सहयोग करूंगा नहीं तो नहीं। ऐसे भाव न हो। अतिवृष्टि, अनावृष्टि, दुर्भिक्ष न हो। कहीं अतिवृष्टि तो कहीं अनावृष्टि होती है तो अधिक पानी गिरने से फसल नष्ट हो जाती है। देश संकटापन्न हो जाता है। फसल, पानी न गिरने से नष्ट हो जाती है। यदि किसान खुश है तो सारा देश खुश है ऐसा कहा जाता है। फसल नहीं है तो दुर्भिक्ष फैल जाता है। पर्यावरण की समस्या है। जगह-जगह रोग-बीमारी, कहीं सूखा कहीं अतिवृष्टि होती है। वैज्ञानिकों का कहना है-कि देश में हिंसा का वातावरण है इसलिए यह सब हो रहा है। पहले 360 कत्ल खाने थे महात्मा गांधी के समय 36,000 हो गये। आगे कवि कहता है-

परम अहिंसा धर्म जगत में, फैल सर्व हित किया करे।

आज अहिंसा कम, हिंसा अधिक हो रही है व्यक्ति के पास धन-दौलत है परंतु शांति/हर्ष नहीं है। एक समय था जब देश में हर्ष व आनंद की गंगा बहती थी वह ऐसा समय था जबकि घी व दूध की नदियाँ बहती थी। आज के समय में खून की नदियाँ बह रही है। आज लाखों पशु प्रतिदिन काटे जाते हैं, जब रास्ते से निकलते है तो कहीं मुर्गी पालक पॉल्ट्री फार्म में मुर्गियों को पिंजरे से डाल कर रखते है। कत्लखाने, मांसाहारियों के हाथ में पहुँचते हैं। ट्रकों के ट्रक देखने में आते हैं। आचार्य कहते हैं-जहाँ ऐसा तांडव होता तो वहाँ शांति की चर्चा, वार्ता संभव नहीं हम परमात्मा को तो क्या आत्मा को नाराज कर देते हैं तो परमात्मा भी नाराज हो जाता है। जो रोग, बीमारी फैल रही है, महामारी हो रही है। यह हिंसा का ही दुष्परिणाम है। एक ओर शांति की बात करते है तो दूसरी ओर हिंसा होती है।

जंगलों के जंगल काटे जाते है। लकड़ी को पाना कठिन हो गया, यदि गैस न होती तो भोजन बनाना मुश्किल हो जाता। प्रदूषित वातावरण को पवित्र करने का मुख्य काम वृक्ष करते है। उनकी सुखद हवा से रोग दूर होते है। नीम व तुलसी औषधी रूप वृक्ष कहलाते है। आज वे वृक्ष नहीं रहे। लोगों ने वृक्षों को नष्ट करना प्रारंभ कर दिया है। जिससे प्रदूषण होता है उसी कारण से रोग फैलते है। हमारे शास्त्रों में कहा है-जैन शासन कहता है-मात्र पशु व प्राणियों की ही नहीं पेड़-पौधों की भी रक्षा कीजिए। सीता ने जंगल में ही दो बालकों लव-कुश को जन्म दिया तथा ऋषि आश्रम में ही उनका पालन हो रहा था। सीता आश्रम में रहती थी। जंगल से लकड़ी लाकर भोजन पकाना व आश्रम को स्वच्छ रखना। एक बार लव-

कुश ने देखा माँ कुल्हाड़ी लेकर जंगल गई। वे बोले हमें भी कुल्हाड़ी चाहिए। दोनों को एक-एक कुल्हाड़ी दे दी गई। वे बोले हम भी जंगल जाऐंगे, काम करेंगे, छोटे-छोटे बच्चों के विचार अच्छे थे-मैं बड़ा हो जाऊँगा तो माँ को जंगल नहीं भेजूंगा। सीता कहती है-तुम अभी छोटे हो, इसलिए आश्रम में ही रहो अभी जंगल नहीं जाना, सीता जी आगे निकल जाती है, लव कुश से कहता है भैय्या! चलो अपन जंगल चले मां के आने के पहले हम चलते है। वे अपने नन्हें-नन्हें हाथों में कुल्हाड़ी उठाते है और वृक्ष काटने को तैयार हुए तभी सीताजी आ गई वे देखती है-ये दोनों शैतान यहाँ क्या कर रहे हैं, वे वृक्ष पर कुल्हाड़ी चला रहे थे। सीता कहती है-बेटा यह क्या कर रहे हो, कुल्हाड़ी फेंक दो। दोनों कुल्हाड़ी फेंक कर माँ के पास आ गये। सीताजी ने कहा-देखो ये वृक्ष है तुमने इस पर कुल्हाड़ी चलायी है। सोचो यदि कोई तुम्हारे पैर पर कुल्हाड़ी चलाता तो कितनी तकलीफ होती? बहुत तकलीफ होती। माँ, आप भी तो जंगल से लकड़ियाँ लाई हो। वह बोली मैंने वृक्ष को नहीं काटा, जंगल में सूखी लकड़ियाँ पड़ी थी वही लेकर आयी हूँ। वे दोनों हाथ जोड़कर माँ से क्षमा मांगते है। माँ सीता कहती है-क्षमा वृक्ष से मांगो। वे कहते हैं-हे वृक्ष! हमें क्षमा करो। हमने तुम्हें कष्ट दिया है। यह जैन धर्म की अहिंसा है कि पेड़-पौधों को भी कभी काटना नहीं चाहिए। घास पर भी कभी पैर नहीं रखना चाहिए।

इस प्रकार जो दया रूप परिणाम रखता है-कि भगवान किसी को रोग मरी न हो। इससे दूसरों के कष्ट दूर हो या न हो परंतु स्वयं को तो पुण्य लाभ होगा ही। सामने वाले का तीव्र पाप का उदय हो इस कारण उसका कष्ट दूर हो या न हो पर हमारी शुभ भावनाओं से हमें शुभास्रव तो होगा ही। सारे देश में अहिंसा धर्म फैले, धर्म की प्रभावना हो। महावीर जयन्ती व पर्यूषण पर्व को अहिंसा पर्व, जीव रक्षा के रूप में घोषित किया है। इस समय पर कत्लखाने, हिंसा को बंद कराये। हमारे सम्यक् प्रयासों से यह संभव है।

इसी भावना के साथ....।

"1008 श्री पद्मप्रभ भगवान की जय"

दिनांक 30-07-2008

बुधवार, प्रातः 9.00 बजे — बोरीवली, मुंबई

मोह नहीं प्रेम सुरभि महकाऊँ

बंधुओ!

आज हम मेरी-भावना के अंतिम काव्य में प्रवेश कर रहे हैं, जो कि संपूर्ण काव्यों का निचोड़ रूप काव्य है अथवा गुणों का समग्र ही है ऐसा भी कहा जा सकता है। काव्य 11वें में वे कहते हैं-

फैले प्रेम परस्पर जग में, मोह दूर ही रहा करें।
अप्रिय कटुक कठोर शब्द नहिं, कोई मुख से कहा करे।।
बनकर सब युग-वीर हृदय से देशोन्नति रत रहा करे।
वस्तु स्वरूप विचार खुशी से, सब दुःख संकट सहा करे।।११।।

वे लोग श्रेष्ठ व महान होते हैं जो एक साथ संगठन से रहते हैं। वे अच्छे नहीं माने जाते जो चार होने पर चार दिशाओं में जाते हैं। जहाँ दिशाएँ चार होगी वहाँ शांति का निवास नहीं हो सकता। चार व्यक्ति यदि चार दिशाओं में चले तो महान कार्य में सफल नहीं हो सकते। रथ को चार पहिये, यदि चार दिशाओं में जाने लगे तो रथ गन्तव्य स्थल तक नहीं पहुँच सकता व उसमें बैठने वाला भी असुरक्षित हो जायेगा, उसी प्रकार एक परिवार के चार सदस्य चार दिशाओं में जाये तो परिवार की अवनति हो जाती है।

जुड़ना कठिन है, टूटना आसान है। यदि परिवार के सदस्य ठान ले कि हम कभी नहीं टूटेंगे तो स्वर्ग का देव भी नहीं तोड़ सकता। चार रस्सियाँ संगठित हो जाएँ तो रस्सा बन जाता है। और उसे फिर हाथी जैसे बलशाली प्राणी भी नहीं तोड़ पाते। यदि वे रस्सियाँ अलग-अलग हो तो आसानी से तोड़ा जा सकता है। जिस समय विदेशियों ने हमारे देश में घुसपैठ की थी तो रियासतों के आपसी झगड़े थे, वैमनस्यताएँ थी। इसीलिए ''**फूट डालो राज करो**'' नीति के द्वारा देश को परतंत्र

कर दिया, फुट अच्छी नहीं होती। पूज्य आचार्य विमल सागर जी गुरुदेव कहा करते थे-यदि फुट को खेत में बो दी जाए तो सारा खेत खराब हो जाता है उसकी बेलें सारे खेत में फैल जाती है। जिससे अन्य कोई भी फसल पुष्पित-पल्लवित नहीं हो पाती है। खेत की फुट खेत को खराब कर देती है। घर में यदि फूट हो जाए तो वह घर तहस-नहस हो जाता है। रावण विद्वान राजा था, सारी उपलब्धियाँ थी, उसकी अक्षौहिणी सेना थी। युद्ध चल रहा था। राम, रावण से तो कभी लक्ष्मण, रावण से युद्ध कर रहे थे। कितनी बार लक्ष्मण कहते रावण बड़ा शक्तिशाली है पराजित नहीं हो सकता। एक दिन विभीषण राम की शरण आये, रावण ने अभिमान के कारण विभीषण को निकाल दिया। दिन भर युद्ध चला संध्या काल में युद्ध बंद हो गया। शत्रु भी हो तो भी वह शत्रु को छिप कर नहीं मारता था, छलकपट से नहीं मारता। जब तक संग्राम भूमि में युद्ध का शंखनाद न हो तब तक युद्ध प्रारंभ नहीं होता था। रात्रि के समय एक सेना के व्यक्ति दूसरी सेना में मलहम पट्टी करने जाते थे। वे न्यायिक पद्धतियां थी। विभीषण राम दल में शामिल हुए। संध्या के समय सभी राम के सम्मुख बैठे थे, इतना युद्ध होने पर भी रावण पराजित नहीं हुआ। विभीषण ने कहा-रावण पराजित होगा भी नहीं क्यों कि उसके पास एक ऐसी विशेष शक्ति व सिद्धि है। राम ने सोचा-हाँ यही तो मैं सोच रहा था कि आखिर रहस्य क्या है। विभीषण सोचता है कि एक ओर न्याय-नीति है दूसरी ओर समर्पण व धर्म है। न्याय-नीति कहती है कि पक्ष भाई का रखना चाहिए। धर्म व समर्पण कहता है पक्ष राम का रखूँ जो भी हो जिसके प्रति समर्पित हुए है उसी का पक्ष रखना चाहिए। ऐसा सोच वे रहस्य प्रकट करते हुए कहते है कि रावण की नाभि में अमृत है तथा उसकी 10 भुजाएँ है। 1 टूटेगी तो दूसरी, तीसरी तैयार हो जायेगी। एक साथ दस भुजाएँ काटो और 1 बार नाभि में बाण चलाओ तो वह शुष्क हो जायेगा। लक्ष्मण ने कहा-राम आपके चरणों की प्रतिज्ञा करता हूं। रावण को पराजित कर ही मुख दिखाऊँगा। दूसरे दिन लक्ष्मण ने युद्ध में रावण को धराशायी कर दिया और फिर लंका का राज्य विभीषण को सौंप दिया गया। यद्यपि विभीषण ने न्याय का पक्ष लिया था फिर भी कुल कलंकी के नाम से जाना जाता है। कोई भी अपने बेटे का नाम विभीषण नहीं रखता। लोग विभीषण शब्द को कुल-कलंक करने वाला कहते हैं। भेद कहीं का भी हो भेद व्यक्ति को तोड़ देता है। चार प्रकार के न्यायों में एक

भेद-नीति होती है। जब कोई सेना कमजोर होती है। तो भेद नीति अपनाती है- साम, दण्ड, दण्ड व भेद के रूप से चार प्रकार की नीतियां होती है। अंग्रेजों ने ''**फूट डालो राज करो**'' की नीति अपनायी थी। अंग्रेज लोगों में फुट डाल कर राज्य छीन लेते थे। इसका कारण हमारे अंदर प्रेम व्यवहार नहीं। हम छोटी-छोटी बातों पर आग बबूला हो जाते हैं। जबाब-सवाल करते हैं। यही आपसी संगठन को कमजोर करने की जड़ है। हमारे अंदर गंभीरता नहीं रह पाती। घर-घर में विवाद खड़े हो जाते हैं। व्यक्ति सोचता-विचारता भी नहीं और प्रति उत्तर चलते हैं। बाद में हाथापाई, फिर दंडादंडी फिर जान लेवा बन जाते हैं। जब भी किन्हीं गृहस्थों के बीच बैठते हैं, सुनते है भाई-भाई का झगड़ा है, तो कहीं बेटा-पुत्र, तो कहीं चाचा-भान्जा, तो कहीं माँ-बेटा, तो कहीं देवरानी-जेठानी का झगड़ा होता है वहाँ हर्ष व आनन्द समाप्त हो जाता है। घर के झगड़े बाहर होते है तो पड़ौसी आनंद मनाता है। चार लोगों के बीच हंसी कराता है। घर के झगड़े बाहर नहीं अपितु घर के लोग ही समाप्त कर सकते हैं। ऐसे कदम उठा सकते हैं कि झगड़े ही न हो। सहनशीलता-गंभीरता रखें। एक पक्ष गरम है तो हम नरम हो जाए। ठंडा माहौल होने पर विवाद नहीं होते। एक पक्ष गरम हो व दूसरा भी गर्म हो जाए तो गरमागरमी में विसंवाद बढ़ जाता है। अपने जीवन में कीमत धन-दौलत, मकान-दुकान की, कुटुम्ब-परिवार की उतनी नहीं जितनी की प्रेम, वात्सल्य, स्नेह की है। यदि आंखों में प्रेम है तो छोटे बच्चे भी दौड़कर गोद में पहुँच जाते हैं। जानवर भी मालिक के पास दौड़ कर जाते है। दृष्टि अच्छी नहीं तो गोद में बैठे बच्चे भी सहम जाते हैं। चहल-पहल समाप्त हो जाती है। जब घर का व्यक्ति ही घबराता है तो पड़ौसी की क्या कहें। प्रेम व स्नेह, करुणा व दया से उत्पन्न होता है। दयालु का सारा वातावरण दया से भींग जाता है। दयालु को देख लोगों का डर, भय, शत्रुता समाप्त हो जाती है। महावीर भगवान ने जब दीक्षा ली तो वे जहाँ भी वनों में विचरते थे तो वहाँ के जन्मजात बैरी भी साथ में बैठ जाते थे। शेर व गाय एक ही घाट पर बैठकर पानी-पीते थे। शेर का बच्चा गाय व गाय का बच्चा शेरनी का दूध पीता था। यह उनके हृदय की नम्रता, करुणा, दया, प्रेम का प्रतीक था इसलिए चारों ओर के वातावरण में प्रेम ही प्रेम झलकता है। जहाँ सीता जी वृक्ष के नीचे बैठती थी तो उसके चारों ओर जानवर आकर बैठ जाते थे, सीताजी से पूछा गया-ऐसा क्यों? वे

कहती है-रामजी से पूछो। वे राम से पूछते हैं कि प्रभो! जिस वृक्ष के नीचे सीता जी बैठती हैं उस वृक्ष के पास आकर सारे जानवर क्यों बैठ जाते हैं। राम कहते हैं-सीता का प्राणी जगत से प्रेम है कभी कोई दु:खी दिखता तो उसकी मलहम पट्टी करती थी। हमारे देश के नेता चाचा नेहरु हुए हैं वे जहाँ भी बैठते तो उनके कंधे, सिर पर आकर पक्षी, कबूतर, तोते बैठ जाते थे। वे एक ऐसे व्यक्तित्व के धनी थे जो कि बच्चों से प्यार करते थे। जब वे स्कूल जाते तो बच्चों के साथ खेलने लगते, कभी बच्चों को पीठ पर बिठा घोड़ा बन जाते। यह भी एक दया, प्रेम है। यद्यपि आज के समय में प्रेम शब्द का अर्थ ही बदल गया है क्यों कि उसका प्रयोग गलत अर्थों में करते हैं। कबीर दास जी ने लिखा है-

''पढ़ पढ़ पोथी मन मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई अच्छर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।।''

जिसके हृदय में प्रेम हो वह पंडित माना जाता है सच्चा ज्ञानी कौन है? वह है जो दूसरों के कष्टों को देखकर भींग जाए वह पंडित, विद्वान, धर्मात्मा है मीरा में प्रेम अर्थात् आराध्य के प्रति भक्ति थी। प्रेम यानि भक्ति। वे श्रीकृष्ण की भक्ति स्नेह से करती प्रेम शब्द खराब नहीं था अपितु अच्छा था शनै: शनै: गलत रूप में उसका प्रयोग प्रारंभ हो गया। गाय व बछड़े का उदाहरण वात्सल्य के रूप में शास्त्रों में कहा गया है। सम्यग्दृष्टि के अंदर धर्मात्माओं के प्रति अंतरंग प्रेम होता है। धर्मात्मा के कष्ट को देखकर दूसरा धर्मात्मा ही पिघलता है। वात्सल्य पर्व रक्षाबंधन एक महान पर्व/त्यौहार है। जिसमें एक धर्मात्मा का दूसरे धर्मात्मा पर वात्सल्य, परस्पर प्रेम का निरुपण है। अकंपनाचार्य आदि 700 मुनियों पर आये भीषण उपसर्ग का निवारण विष्णुकुमार महाराज ने किया उन्होंने अपने रत्नत्रय धर्म की भी परवाह नहीं की। दिगंबरत्व को छोड़कर भी उन मुनियों की रक्षा की। यह उनके अंतरंग के वात्सल्य का प्रतीक है। वात्सल्य, प्रेम, भक्ति की परीक्षा प्रतिकूल परिस्थिति में होती है। जब संकट आये, धर्मात्मा पर कष्ट आये और आपका हृदय पिघल जाये तो समझ लेना कि आपके अंदर वात्सल्य भाव है और आप सच्चे धर्मात्मा हैं।

एक बार की बात है कि साधु संघ सिद्ध क्षेत्र, द्रोणगिरी में था सभी चौबीसी के मंदिर के ऊपर बैठ कर सामायिक करते थे, उस समय वातावरण ठंडा

था सभी ने कहा-यहीं सामायिक करेंगे, पहाड़ पर सब लोग बैठते थे व बाहर की छत पर ध्यान करते थे। रात्रि के लगभग 12-1 बजे के बीच वर्षा प्रारंभ हो गई। घर-घर में लोगों को चिंता हो गई कि हमारे महाराज तो जंगल में है। वहाँ क्या हो रहा होगा लोगों के घर से पहाड़ ६ कि.मी. दूर था लड़के अपने वाहनों से आ गये। वे पहाड़ पर चढ़े तब-तक वर्षा शांत हो गई। वे पुकारने लगे-महाराज कहाँ हैं। कैसे हैं? हम लोग बाहर सामायिक में बैठे थे। मैंने पूछा-आप लोग इतनी रात्रि में यहाँ कैसे आ गये वे बोले-हमारी माँ ने भेजा है, पापा ने भेजा है। इसका नाम है स्नेह। स्नेह, प्रेम धर्मात्मा के प्रति होना चाहिए। प्रेम तो हो पर मोह न हो। प्रेम एक मोह रहित व एक मोह सहित होता है। पत्नी का पति व बच्चों के प्रति भी प्रेम होता है परंतु वह मोह की कोटि में ही गिना जाता है।

मात्र दूसरों के प्रति निःस्वार्थ सेवा, प्रेम दूसरों के दुःख में मलहम पट्टी करने की भावना जागे तो हमारा जीवन सार्थक होगा। पुराने समय में गांव में ऐसे भी व्यक्ति होते थे ज्येष्ठ होते हैं जो हमारे समाज में कोई बीमार है तो पूछते थे क्या परेशानी है। सहयोग की आवश्यकता हो तो हमें बताना। आज का व्यक्ति सहयोग तो करता है परंतु दूसरों के सम्मान को गिराकर उसको बेइज्जत करके। लोग कहते हैं-सहयोग सभा में देंगे। फोटो खिंचवायेंगे और कहेंगे-इलाज कराने के लिए पैसे नहीं थे व कुटुम्ब-परिवार ने सहयोग नहीं किया इसलिए हम इन्हें धन दे रहे हैं वह परिस्थिति से दुःखी है आपका सहयोग घाव में नमक का काम करता है। तो हम अपने विवेक को जगाएँ तथा स्नेह, वात्सल्य हृदय में रखते हुए दूसरों का सहयोग करें। सामान्य व्यक्तियों की तरह भोजन कराया तो क्या कराया। आप तो खाना खाकर आये हों न। सज्जन प्रकृति के व्यक्ति नहीं भी खाकर आये होंगे तो यही कहेंगे हाँ खाकर आया हूं। जहाँ ऐसा व्यवहार किया जाता है वह वास्तविक वात्सल्यपूर्ण व्यवहार नहीं अथवा कोई ऐसा बोलता है खाना खाओगे क्या? भिजवा देता हूँ, वहाँ चले जाना अमुक के घर चले जाना और वहाँ तक पहुँचा जहाँ पहुँचे उसने भी कह दिया कि मैं अमुक को नहीं जानता। तो आपका यह व्यवहार प्रेम नहीं कहलायेगा। अपने आदर के साथ भोजन कराये फिर वह रूखा भोजन भी क्यों न हो यदि प्रेम से कराया गया है तो वह अनादर से खिलायी खीर-पुड़ी से अच्छा है, व्यंजनों से अच्छा है।

कहने का तात्पर्य यह है कि प्रेम व्यवहार श्रेष्ठ है कवि ने यही भावना भायी है कि सर्वत्र प्रेम फैल जाये सारा संसार प्रेम भाव से युक्त हो जाए परंतु मोह हो कि आत्मा का अहित करता है वह दूर ही बना रहे। प्रेम उदारता का सूचक है जबकि मोह में संकीर्णता है प्रेम से विशुद्धि अंश जगते है जबकि मोह विशुद्धि का विनाश कर देता है। प्रेम आत्म शक्ति को उद्भूत करता है तो मोह आत्मा की शक्ति को क्षीण कर देता है। इसलिए सारे संसार में प्रेम की सुगंधि तो फैले परंतु मोह जाल न फैले।

इसी भावना के साथ....।

"1008 वासुपूज्य भगवान की जय"

दिनांक 31-07-2008

गुरुवार, प्रात: 9.00 बजे बोरीवली, मुंबई

परस्पर प्रेम भाव बढ़ाऊँ

बंधुओ!

हम बढ़ रहे हैं काव्य 11 की आगे की पंक्तियों की ओर जहाँ कवि प्रेम के सर्वत्र फैलने की बात कह रहे है। वे कहते हैं-

"फैले प्रेम परस्पर जग में।"

प्रेम उत्थान के रास्ते को उद्‌घाटित करता है दो टूटे हृदयों को जोड़ नई उपलब्धि कराता है। कभी-कभी हम घबरा जाते हैं, ये इतना बड़ा जीवन कैसे बीते, यह इतना बड़ा परिवार कैसे चले, क्या समाज का संचालन कर सकूँगा, देश व राष्ट्र का संचालन कर सकूँगा। घबराने से, चिंता करने से रास्ता सुलझता नहीं, अपितु उलझ जाता है। आचार्य कहते है हमारे जीवन में प्रेम होना चाहिए। सच्चा प्रेम है तो सारे रास्ते आसान हो जाते हैं, बड़ा सहयोग मिलता है, महाराज! जीवन से थक चुका हूं, परेशान हो चुका हूं, कोई साथ नहीं देता। व्यक्ति व पुरुषार्थ व भाग्य साथ नहीं देता। यदि तुम पुरुषार्थी हो तो घबराओ नहीं। व्यक्ति के साथ सही पुरुषार्थ होना चाहिए, भाग्य होना चाहिए। एक व्यक्ति ने प्रश्न किया क्या पुरुषार्थ व भाग्य जीवन में एक सिक्के के दो पहलू हैं? हो भी सकते है जब किसी का भाग्योदय हो व पुरुषार्थ अनुकूल हो तो एक सिक्के के दो पहलू है। परंतु यदि भाग्योदय न हो अथवा पुरुषार्थ भी न हो तो फिर एक सिक्के के दो पहलू नहीं होते। कुछ लोग पुरुषार्थ तो करते हैं परंतु भाग्य साथ नहीं देता तो वे घबराने लगते है। किसी भी परिस्थिति से घबराना नहीं चाहिए। घबराहट से समस्या हल नहीं होती, शांति से रास्ते निकालना चाहिए हम जितना अच्छा सोचते हैं उतना ही बुरा होता है यह अधिक समय तक नहीं चलेगा। आपका सोच अच्छा है तो बुरा नहीं होगा। अंत का परिणाम अच्छा निकलेगा। यदि तुम भला कर रहे हो और सामने वाला

बुरा कर रहा है उसे करने दो, परंतु तुम अच्छा ही करते जाओ एक दिन वह भी पछतायेगा मैंने उसे इतना कष्ट दिया फिर भी उसने मेरा अच्छा ही किया है। समय बदलेगा तो सोच भी बदल जायेगी फिर वह इतना पिघल जायेगा कि आपकी कल्पना के बाहर होगा। भलाई का सूत्र है-हम जिंदगी को कैसे अच्छा बना सके। हमारी व्यवहारिकता में प्रेम भरा व्यवहार हो, रूखा नहीं होना चाहिए।

साधु की सदैव मृदुभाषा होती है वे हमेशा हित-मित व प्रिय वचन ही बोलते हैं। इसीलिए कवि ने भावना भायी कि ''**फैले प्रेम परस्पर जग में**''।

आपने किसी से जय-जिनेन्द्र कर लिया तो आपका कुछ बिगड़ेगा नहीं, उसका मन आनंदित हो जायेगा, वह आपको देखकर मुस्कुरा देगा, वह आपको अपना हितैषी समझेगा यदि आपने उसे पूछ लिया-आप स्वस्थ है ऐसा पूछने पर और अधिक आनंदित हो जायेगा कि अमुक ने मुझे पूछा। यद्यपि ये सत्य है कि किसी के पूछने से दु:ख न घटता है न बढ़ता है परंतु संतोष अवश्य हो जाता है। प्राचीन संस्कार है घर के प्रमुख लोग घर के सदस्यों के स्वास्थ्य का ध्यान रखते हैं और घर के सब सदस्य उस प्रमुख का। यदि दादाजी से पूछ लिया कि आपका स्वास्थ्य ठीक है तो उन्हें संतोष होता था। दस प्रकार की समाचार विधि है-साधुगण परस्पर में उपसंपत गुण का पालन करते हैं, गुरुदेव मैं आपका हूं और आप हमारे हैं। इन दो शब्दों को ध्यान में रखना है। जहाँ से ये शब्द आये कि हम आपके व आप हमारे है तो एकता के सूत्र प्रारंभ हो जाते हैं। मैं आपका नहीं और आप मेरे नहीं जहाँ ऐसे शब्द आने लगे तो टूटने के सूत्र प्रारंभ हो जाते हैं। मूलाचार-जो कि मुनियों का आचार प्रधान ग्रंथ है। संतों का संविधान है। पहला सूत्र-मैं आपका हूँ, जहाँ ये बात होती है तो सामने वाला भी कहता है-यदि तुम मुझे अपना मानते हो तो मैं भी आपका हूँ। यदि आप किसी से ''**जय जिनेन्द्र**'' बोलोगे तो रिप्लाई में '**जय जिनेन्द्र**' ही मिलेगा। यह समाचार विधि है।

साधु उपसंपत गुण का पालन करते हैं। कोई साधक यदि साधना से विचलित होने लग जाए तो साधुजन आपस में बैठकर साहस बांधते है। आप घबराईये नहीं हम है ना। एक बार रास्ते में चलते-चलते एक ऐसे स्थान पर ठहरना हुआ जहाँ बगल में श्मशान घाट था। पास में ही स्कूल था जिसकी खिड़की से श्मशान घाट दिखता था। हम जिस कमरे में रूके थे वहाँ पर ही एक कफन टंगा

हुआ था, एक नये साधु का ध्यान उस पर चला गया तुरंत मुझको कहा यहाँ श्मशान की जली लकड़ी भी पड़ी है मैंने कहा-अब किसी से मत कहना, चुपचाप सो जाओ। जो कच्चे हृदय वाले हैं वे डर जायेंगे। मैंने प्रातः काल पूछा सभी को कल रात नींद आ गई थी क्या? आपने ऐसा क्यों पूछा? क्यों कि आप श्मशान घाट में रूके थे। सूखी हड्डी, कपाल तथा कफन के कपड़े पड़े थे, ये लकड़ी भी है। कुछ साधु बोल उठे महाराज यहाँ से जल्दी चलो। कहने का तात्पर्य है-साधु ऐसी परिस्थितियों में समाचार नीति का पालन करते हैं। एक बार एक समाधी हुई तो अन्य लोग घबरा गये, मुझे तो वे ही वे नजर आते हैं। जहाँ जाते हैं वे ही दिखते हैं। ऐसे साधुओं को साहस बंधाते हुए कहा जाता है-आप चिंता मत करें, मैं आपके पास बैठा हूँ। प्रोत्साहन देते हैं घबराओ नहीं आज हमारे साथ आहार के लिए चलना।

कभी-कभी विहार में चलते-चलते नये-नये साधु थक जाते हैं महाराज! अब नहीं चला जाता महाराज कहते हैं-कोई बात नहीं, हम बैठ जाते हैं वो देखो वहाँ वृक्ष दिख रहा है, थोड़ा सा चलकर बैठ जाते हैं, इस प्रकार गुरुजन शिष्यों को संबल देते हैं। यही उपसंगत गुण है।

एक बार मेरा स्वास्थ्य खराब हो गया। तेज लू लग गई, ३ बज गये परंतु आंख नहीं खुली कोई आम (कच्चे आम को उबाल कर) पैरों में घिस रहा था। आचार्य महाराज को पता चला कि लू लग गई तो लू उतारी गई। आंखे लाल व शरीर शिथिल हो गया था विहार की तैयारी हो गई थी कहीं रास्ते में रूक भी नहीं सकते थे। महाराज स्वयं मेरे पास चलकर आये और सिर पर हाथ रखते हुए बोले बस थोड़ा सा ही चलेंगे। गुरु का हाथ सिर पर रखना क्या हुआ कि ताकत आ गई हमने कहा-हाँ महाराज ठीक हूँ मैं चलूंगा हाथ पकड़ कर चलूंगा। आचार्य महाराज ने हमारा हाथ पकड़ लिया कुछ दूर तक तो चले। मैंने कहा-महाराज स्थान जहाँ रुकना है वह नहीं दिख रहा। महाराज बोले-बस अब अधिक दूर नहीं देखो वह वृक्ष दिख रहा है बस वहीं तक जाना है। आने ही वाला है। बस-बस देखो वह आ गया। गुरु कृपा से मैं विहार करके पहुँच गया। उपसंपत गुण में धैर्य दिलाया जाता है।

एक बार आचार्य विद्या सागरजी महाराज के संघ में एक महाराज का

स्वास्थ्य अचानक खराब हो गया, विहार की तैयारियाँ हो चुकी थी 4-5 डिग्री बुखार था। महाराज वहाँ किसी को छोड़ना नहीं चाहते थे। आचार्यों की विशेषता होती है कि वे बार-बार किसी के पास नहीं जाते, बार-बार जाने से प्रभाव घटता है। आचार्यों के पास तरीके रहते है वे मन से ध्यान रखते है, तन से नहीं जाते और जब जाते है तो उनका जाना औषधि का काम करता है। आचार्य महाराज-उन अस्वस्थ मुनिराज के पास गये और स्वास्थ्य के बारे में पूछा? वे बोले महाराज आपने पूछ लिया बस अब आपके आशीर्वाद से शीघ्र ठीक हो जाऊँगा, गुरु के पूछने से आधी बीमारी तो उसी समय दूर हो जाती है और फिर पुद्गल तो अपना काम करता ही है। आचार्य महाराज ने कहा यदि हिम्मत न हो तो आप यहीं रूक जाये 1-2 महाराज आपके पास ही रूक जायेंगे, महाराज को रूकना तो था नहीं फिर भी कह दिया वे मुनिराज बोले गुरुदेव मैं तो आपके साथ ही चलूंगा, आपके आशीर्वाद से सब ठीक हो जायेगा और आराम से विहार हो गया। जीवन में उतार-चढ़ाव आते है। साधु प्रेम व्यवहार-वात्सल्य रखते हैं। स्नेह रखते हैं यह सब उपसंपत गुण की महिमा है। लोग कहते हैं-महाराज 40 साधु एक साथ मिलकर रहते हैं आश्चर्य हैं। मैंने कहा-भद्रबाहु महाराज के संघ में 24,000 शिष्य थे। जब वे साथ-साथ रहते थे तो हम नहीं रह सकते क्या?

एक बार आचार्य श्री कुमुदनंदी जी महाराज ने पूछा-विराग सागरजी आपका इतना विशाल संघ है आखिर आप ऐसा कौन सा मंत्र पढ़ते हो जिससे इतनी शिष्य मंडली एकत्रित हो गई है मैंने कहा-कोई मंत्र नहीं पढ़ता। अपने पास प्रेम, वात्सल्य, स्नेह है तो किसी को बुलाना नहीं पड़ता अपितु स्वयं खिंचे चले आते हैं। आचार्य कुमुदनंदी जी ने पूछा आचार्य विमल सागरजी महाराज से कहा कि विराग सागरजी के पास इतने शिष्य है मेरे पास नहीं। महाराज ने कहा अभी तो उनके शिष्य और भी बढ़ते जायेंगे ऐसा ही आशीर्वाद देता हूँ। महाराज मुझे भी आशीर्वाद दे दो, नहीं तुम्हें नहीं दूंगा। ऐसा क्यों? महाराज बोले-हमारे अन्दर प्रेम, वात्सल्य होना चाहिए। हम अनुशासन में भले कठोर हो परंतु अंदर से मुलायम हो। जैसे नारियल बाहर से कठोर व अन्दर से मुलायम होता है वैसे ही गुरुजन बाहर से कठोर व अन्दर से मुलायम होते है, यदि वे कठोर न हो तो हमारी चर्या अच्छी नहीं हो सकेगी। आचार्यों के पास एक प्रताप गुण होता है। नारियल की तरह होना

अनिवार्य है। परन्तु अन्दर से मुलायम होना चाहिए। अमुक का स्वास्थ्य कैसा है? आहार कैसा हुआ? स्तुति, प्रतिक्रमण, सामायिक कैसी चल रही है जब कोई पूछता है तो मन गद्‌गद्‌ हो जाता है। साधुओं के अन्दर वात्सल्य, प्रेम गुण पाया जाता है दुनियाँ चाहती है। कि संसार के प्राणियों में प्रेम व्यवहार, संगठन हो परंतु हो नहीं पाता। आप दूसरों को प्रेम दीजिए, वात्सल्य दीजिए, वह व्यक्ति आपसे जुड़ जायेगा, कोई व्यक्ति आया है तो प्रेम से दो शब्द बोल लीजिए। वह कहीं भी जायेगा पर आपसे जुड़ा ही रहेगा। राजा श्रेणिक जब राजकुमार थे तब राजा उपश्रेणिक, श्रेणिक की परीक्षा करते हैं। राजा उपश्रेणिक ने श्रेणिक को किसी कारणवश देश से निकाल दिया और कहा कोई भी तुम्हारे साथ नहीं रहेगा। वे जंगल की ओर चल दिये। श्रेणिक के पास कोई सामग्री नहीं थी, वे ऐसे ही सो जाते हैं वे सोचते है उदर पूर्ति के लिए श्रम करना चाहिए। श्रम का भोजन भी अच्छा है। हम श्रम करेंगे। वे सोचते हैं कि बिना पैसों के व्यापार नहीं होता है। रास्ता हल करने वाला उपाय होना चाहिए। गांव वहां से दूर था, अकेला व्यक्ति लंबे रास्ते पर चले तो कटना मुश्किल है। तभी श्रेणिक को वहाँ से जाता हुआ एक व्यक्ति दिखा। श्रेणिक तभी चिल्लाया-ओ मामा-मामा। महाराष्ट्र में किसी पुरुष से मामा कहो व महिला से मौसी कहो तो लोग खुश हो जाते हैं। किसी ने मुझे मामा कहा तो वह व्यक्ति खुश हो जाता है वह व्यक्ति उसे पास बुलाता है और कहता है-कहो, तुमने मुझे मामा कैसे कहा। ये आदर सूचक शब्द होते है मैं तो आपको अपना मामा ही मानूंगा। ये शब्द व्यक्ति को जोड़ते है। जिंदगी तो वही जिंदगी है जिसमें प्रेम हो। जहाँ प्रेम न हो वह जिंदगी नीरस की तरह है। जहाँ तुम्हारे पास चार व्यक्ति बैठ न सके ऐसी जिन्दगी से क्या लाभ। जिन्दगी तो वह है जिसमें प्रेम हो। कोई आपके पास आता है तो उससे प्रेम से बोलो, बैठाओ। कुछ लोग कहते है-छोटे से क्या अच्छा बोलना, अमुक तो अपरिचित है अथवा वे नौकर हैं तो हमारे शास्त्र कहते है-"**वचनेषु का दरिद्रता**" अर्थात् वचनों में क्या दरिद्रता रखना। इसका अर्थ यह भी नहीं कि हम मात्र बातों के मीठे बने रहे। बहुत से लोग बातें अच्छी-अच्छी, मीठी-मीठी करते हैं। काम में पीछे हो जाते हैं। बातों में मीठे व काम में पीछे ऐसे भी नहीं होना चाहिए। अपितु प्रिय वचन और कार्य कुशलता दोनों होना चाहिए। सहयोग व सेवाभावी होना चाहिए। अमुक कार्य मैं करूंगा।

एक भिण्ड के नरेश भैय्याजी है उनसे जब भी किसी काम की कहो-हाँ महाराज, ये काम हो जायेगा। कम से कम तसल्ली हो जाती है कि काम हो जायेगा और फिर वे करके भी दिखा देते हैं इस तरीके से कर लेंगे। कहीं प्रेम व्यवहार हो, मृदुभाषा व कार्य-कुशलता हो वहाँ बड़े-बड़े कार्य भी हो जाते है। जिन्होंने सेठ जी को मामा कहा-वे ही आगे जाकर उन्हीं सेठ के जमाई बने ओर आगे जाकर राजा बने।

रामचन्द्रजी को जब वनवास हुआ था तो वे कितने थे, मात्र तीन ही थे राम, सीता व लक्ष्मण। आपने लंका को जीता, सोचिए तीन लोगों ने मिलकर इतने बड़े देश को कैसे जीत लिया। वहाँ का राजा रावण था प्रतिनारायण यानि त्रिखंडाधिपति था। लोगों ने राम से पूछा-आपने इतने बलशाली रावण को कैसे जीत लिया? राम ने कहा-मैंने नहीं लक्ष्मण ने जीता है, लक्ष्मण ने कहा यह कार्य मैंने नहीं हनुमान ने किया है, हनुमान ने सुना तो वे बोले-यह तो सुग्रीव ने किया है। सुग्रीव का नम्बर आया तो उन्होंने सुडील, गव, गवाक्ष, नील, महानील ने किया परस्पर के प्रेम व्यवहार से बहुत बड़ी कड़ी बन जाती है। महाराष्ट्र में एक वीर सेवादल है। उस वीर सेवादल के संचालक अन्ना साहब थे। उनके श्रम का परिणाम उनके सेवादल में 1000 वीर जैन सेवक थे। उनके जैसा व्यक्तित्व आज देखने को नहीं मिलता। उन्होंने इतनी बड़ी टीम कैसे तैयार कर ली। बंधुओं! किसी को जोड़ना आसान नहीं फिर बिना पैसों के जोड़ना तो और भी कठिन है। अन्ना साहब स्वयं काम करते थे-और जब सम्मान का अवसर आता था तो सेवादल को आगे कर देते थे। सेवादल के किसी भी सदस्य को आगे कर देते थे। एक बार अन्ना साहब से महाराज ने कहा-पंडाल में जूते-चप्पल नहीं होने चाहिए। कोई असोले वाला अन्दर नहीं आना चाहिए। अन्ना साहब ने 50 झाड़ू मंगा ली। वे कहते हैं हमारा भी वीर सेवा दल है हम लोगों की प्रतिज्ञा है कि हम भगवान के भक्तों की सेवा करेंगे। झाड़ू लगाकर भी सेवा की जा सकती है। उन्होंने जैसे ही झाड़ू उठाई लोगों ने हाथ से छीन ली और पचासों लोगों ने झाड़ू उठा ली। और कहा बस 2-4 घंटे में काम हो जायेगा। परंतु मात्र 20 मिनिट में ही सारा काम हो गया। कार्यक्रम के अंत में सबका सम्मान किया गया। अब नम्बर आया वीर सेवा दल का। वीर सेवादल के संचालक को बुलाया गया। अन्ना साहब ने एक वृद्ध दादाजी को पगड़ी

लगाकर आगे खड़ा कर दिया। लोगों ने सोचा यही अन्ना साहब हैं और उन्हीं का स्वागत के समय उनको आगे कर दिया। उनके इसी हार्दिक वात्सल्य का प्रभाव था कि हजारों, लाखों लोग उनसे जुड़ते जाते थे। प्रेम तभी सच्चा है जबकि श्रम में हम अपने आपको आगे करें और जब सम्मान का अवसर आये तो दूसरों को आगे करें। तो वह ऐसा जुड़ेगा कि फिर कभी टूटेगा नहीं। राम ने ऐसी घूँटी पिलादी कि इस भव में क्या, किसी भी भव में छूटेगें नहीं। वह सच्चा प्रेम व्यवहार है। कार्य में आगे व सम्मान में पीछे रहिये समझ लेना वह श्रेष्ठ बनेगा। कार्य सत्यनिष्ठा व विश्वास के साथ हो तो सारे जगत में कीर्ति होगी, सारे लोग सिर पर रखेंगे। बहुत स्थानों पर चुनाव होते हैं। दो प्रकार के होते हैं। एक चुनाव में स्वयं लोग चुनते हैं। धार्मिक चुनाव भी होते हैं व राजनैतिक चुनाव भी होते हैं। एक समय वह था कि लोग व्यक्ति को चुन कर स्वयं खड़ा करते थे, फिर उसके संकेत को सब मानते थे। जबरदस्ती से यदि कोई कुर्सी भी पा ले और कोई उसकी बात न सुने तो उस कुर्सी की क्या कीमत है। परस्पर का प्रेम, वात्सल्य अच्छी बात है जब हम पुराना इतिहास उठाकर देखते हैं ऐसे-ऐसे लोग रहे हैं जो कि घर-घर जाकर पता लगाते थे कि किस परिवार को कष्ट है व्यक्ति मिलकर उसे पूछने व सहयोग करने जाते थे। कहने का तात्पर्य है हम प्रेम व्यवहार सीखें। धन दौलत ही जीवन में सब कुछ नहीं है। धन-दौलत तो हाथ का मैल है। जितना निकालोगो उतना बढ़ेगा। कुएं से हम जितना-जितना पानी निकालते जाते हैं वह उतना-उतना खाली नहीं होता अपितु लेवल बराबर ही बना रहता है। उसी प्रकार धर्म क्षेत्र में खर्चा धन घटता नहीं अपितु बढ़ता है। बड़े-बड़े दानवीर दान देते हैं पर उनकी संपदा घटती नहीं, अपितु निरंतर बढ़ती है।

हम समाज के गरीब, दरिद्र लोगों को उठाने का प्रयत्न करें, यदि कोई मजबूरी में कोई नीचा काम कर रहा है तो उसका भरपूर सहयोग कर उसे अच्छे कार्य में लगा दो। यदि ऐसा संगठन देखना है तो श्वेताम्बरों मुस्लिम व सिक्खों में देखने को मिल जाता है। यदि उनके कारखाने या मिलें हैं तो वे प्रमुखता अपनी समाज को देते हैं।

लोहारिया, राजस्थान प्रांत का एक गांव है जो कि पूज्य आचार्य विमल सागरजी के पट्टाचार्य शिष्य आचार्य भरत सागरजी महाराज की जन्मस्थली है।

जब भरत सागरजी गृहस्थ अवस्था में थे तो वे जिस दुकान पर काम करने जाते थे उस दुकान का नियम था कि पहले भगवान के दर्शन करके आओ बाद में काम करो। यदि कोई कर्मचारी भगवान की पूजा करने के कारण दुकान आने में लेट हो गया तो डाँटते नहीं थे। यदि किसी का उपवास हो तो सांत्वना देते थे। यदि मालिक नौकर से अच्छा व्यवहार करेगा तो नौकर भी समर्पित रहेंगे। क्योंकि व्यवहारिकता अच्छी है। प्रेम व्यवहार तो सबमें हो परंतु स्वार्थ दूर ही रहे, वासनायें दूर हो, विकारी परिणाम दूर हो, शरीर के प्रति, कुटुम्ब-परिवार के प्रति आदि-आदि के प्रति मोह दूर हो तथा घट-घट में एकता, प्रेम, संगठन हो। एक-दूसरे को सब प्रेम की निगाहों से देखें। विपत्ति में सभी दूसरों का सहयोग करें। वह प्रेम व्यवहार घर को स्वर्ग बना देगा।

सभी अपने हृदय में इस प्रेम भाव को धारण करें। वही हमारी आत्मा को कल्याण पथ में पहुँचायेगा।

"1008 चंद्रप्रभु भगवान की जय"

दिनांक 01-08-2008

शुक्रवार, प्रात: 9.00 बजे — बोरीवाली, मुंबई

कटुक नहीं मधुर भाषा बोलूँ

भव्य बंधुओ!

अंतिम काव्य की द्वितीय पंक्ति जिस पर सारा लोक व्यवहार टिका है उसके माध्यम से कविवर जुगल किशोर जी बड़े रहस्य की बात हमें बता रहे है वे कहते है-

"अप्रिय कटुक कठोर शब्द नहिं, कोई मुख से कहा करे।"

मेरी भावना की ये पंक्तियाँ अंतर चेतना को जाग्रत करती हैं एक नई ऊर्जा को प्रवाहित करती है। शब्द एक बहुत बड़ी शक्ति होती है। शब्द का बल, ऊर्जा सबसे बड़ी है, बड़े-बड़े बंबों के विस्फोट से भी खतरनाक शब्दों का विस्फोट है। बाह्य शक्तियाँ काम करे या न करे शब्द शक्ति बड़ा काम करती है। मैंने कहा-शब्द शक्ति वह काम करती है जो देव भी नहीं कर सकते। मैंने कहा-आप ऐसा कैसे बोल रहे हैं, '**शब्द ब्रह्म**' बड़ा काम करता है। शब्द को '**ब्रह्म**' की संज्ञा दी गई है। '**ब्रह्म**' भी उसके पीछे है, शक्ति आगे है। महाभारत की कहानी आपने सुनी होगी। महाभारत की संरचना के पीछे अर्थ नहीं शब्द की शक्ति छिपी थी। एक बार दुर्योधन इंद्रप्रस्थ भवन से गुजर रहे थे। इंद्रप्रस्थ तो इंद्रप्रस्थ था जिसकी रचना विशेष प्रकार से की गई थी, फर्श का कलर पानी जैसा था, आगे फर्श के बाद पानी ही था, दोनों के अंतर को जानना कठिन था, दुर्योधन इंद्रप्रस्थ से गुजर रहे थे तो वहाँ सामने खिड़की में द्रोपदी बैठी थी, उसने (दुर्योधन) चलने के पहले पानी की आशंका से अपनी धोती ऊपर चढ़ा ली और आहिस्ते से पैर रखा परंतु वहाँ तो फर्श था। आगे भी पानी जैसा दिखाई दिया परंतु पहले आहिस्ते से पैर रखने पर भी वह फर्श ही था ऐसा सोचकर दुर्योधन ने उसे फर्श समझकर जैसे ही पैर आगे बढ़ाया तो धड़ाम से पानी में गिर गये, द्रोपदी यह दृश्य देख रही थी

दुर्योधन जैसे ही गिरा वह जोरों से हंस पड़ी और उपहास पूर्ण वचन बोलती हुई कहती है कि-"**अंधे के अंधे ही होते है।**" महाभारत की पूरी कहानी इस शब्द के कारण हुई तथा कई अक्षौहिणी सेना ध्वस्त हो गई। अक्षौहिणी सेना में कई करोड़ प्राणी मारे जाते हैं। मात्र चार शब्दों के कारण इतना बड़ा महायुद्ध हुआ। इसीलिए आचार्य कहते हैं कि शब्दों को बोलो पर पहले तौलो। साधुओं के लिए कहा जाता है कि साधु यद्यपि मौन ही रहते हैं। ये वचन गुप्ति का पालन करते हैं। न बोलते हैं, न बोलने का प्रयास करते हैं, अपनी शुद्धात्मा में लीन रहते हैं, आत्म-रस का पान करते हैं। जिसे एक बार आत्मा का स्वाद आ जाता है उसके लिए सारे रस नीरस हो जाते हैं, फिर उसका किसी वस्तु में मन नहीं लगता। योगीजन ध्यान में लंबा-लंबा समय व्यतीत कर देते हैं। लोग 4-4 महीने का ध्यान करते हैं। वर्षायोग धारण कर लेते हैं। बाहुबली मघमुनिराज ने 1 वर्ष तक ध्यान किया था और 1 वर्ष में उन्हें यह भी ध्यान नहीं रहा कि मैं कहाँ खड़ा हूँ तथा मेरे शरीर पर कौन-कौन से पक्षी विचरण कर रहे हैं। विच्छु, सांप, छिपकली लिपटे हैं। ये आत्म रस में मन डूबा जाता हैं। तो बाह्य पदार्थ जड़ हो जाते हैं। वे वचन गुप्ति के पालक महामुनिराज, आत्मरस में डूब कर अपना सारा जीवन व्यतीत कर देते हैं। वचन गुप्ति से वचन सिद्धियाँ हो जाती हैं और वचन सिद्धि का तात्पर्य यह हैं कि वे जैसा बोल देते हैं, वैसा हो जाता है। किसी को आशीर्वाद दे दें कि स्वस्थ रहो तो वह वास्तविकता में स्वस्थ हो जाता हैं। महाराज! सिर दर्द हो रहा है, ठीक जो जायेगा। महाराज परेशान हूँ, अमुक पड़ौसी परेशान करता है। महाराज कह देते हैं-आज से नहीं करेगा वह पूरा चेंज हो जाता है। महाराज डर है-कोई रास्ते में लूट न लें, निर्भय रहो। कहने का तात्पर्य है-वचन सिद्धि है, जो वचन गुप्ति से होती है। इसीलिए मुनि अर्थात् जो मौन रहे वह मुनि है। एक बार एक व्यक्ति ने पूछा-महाराज मौन रहना कौन सा मूलगुण है। पांच महाव्रत में मौन रहने की बात नहीं आई, पांच समितियों में कोई मौन नाम की समिति नहीं। पांच इंद्रिय निरोध, षट् आवश्यक व 7 शेष गुण में कहीं भी मौन की बात नहीं कही।

मुनिराज रात्रि में मौन क्यों रहते हैं वे मुनि हैं इसलिए मौन रहते हैं इसलिए अलग से लिखने की आवश्यकता नहीं पड़ी। रात्रि भोजन का त्याग किसे कराया जाता है उसे जो रात्रि भोजन करता हो, जो रात्रि भोजन करता ही न हो उसे रात्रि भोजन कराने से क्या प्रयोजन? मुनि कम से कम बोलते हैं भाषा समिति उनकी

होती है अर्थात् वे हित, मित और प्रिय वचन बोलते हैं, जैसे बहुत से लोग सीमित चर्चा करते हैं। अच्छा किया मुनियों के पास रहकर कम से कम इतना तो सीख लिया। मुनिजन हाँ-हाँ, न-न कठिन है इत्यादि में बहुत सी बात कर लेते हैं। सर्वार्थ सिद्धि ग्रंथ में कहा गया है-''**अवाक् विसर्गं निरुपयन्ति मोक्षमार्ग:।**'' कुछ भी न बोलते हुए भी जो मोक्षमार्ग का निरुपण करते हैं। उनकी चर्या, ध्यान बहुत बड़ा उपदेश, शिक्षा देती है कवि कह रहे हैं-

''अप्रिय कटुक कठोर शब्द नहिं कोई मुख से कहा करें।''

गोली और बोली में इतना अंतर है कि गोली का घाव तो भर जाता है परंतु बोली का घाव नहीं भर पाता। एक बार की बात थी। एक जंगल में एक लकड़हारा लकड़ी काटने गया, तभी उसे एक वृक्ष के नीचे एक शेर दिखाई दिया, शेर के पैर में बड़ा भारी कांटा लग गया था जिससे वह कराह रहा था, लकड़हारे ने जैसे ही देखा उसके हृदय में शेर के प्रति दया उमड़ आई। यद्यपि शेर एक खूंखार प्राणी है तथापि जब हृदय में धर्म जजगता है तो व्यक्ति दूसरे की पीड़ा को दूर करने का प्रयास करता है। दयालु अपने दु:ख की परवाह नहीं करता स्वयं कष्ट मोल लेकर भी दूसरे के दु:ख को दूर करता है। अत: साहस करके वह शेर के पास गया और उसका कांटा निकाल दिया। जैसे कांटा निकला शेर को बहुत राहत मिली वह प्रसन्न हो गया और उसने खुश होकर लकड़हारे से कहा-तुमने मुझे इतने बड़े कष्ट से उबारा है, मैं बहुत आभारी हूं तथा आपका उपकार चुकाना चाहता हूं बताइए मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूं। लकड़हारे ने कहा मैं तो लकड़ी काट-काट कर बाजार में बेचता हूं और उसी से अपना गुजारा करता हूं। तुम मेरी क्या मदद करोगे, शेर कहता है-जो लकड़ी का गट्ठा तुम अपने सिर पर लेकर चलते हो वह मेरी पीठ पर रख दो मैं तुम्हारे स्थान तक पहुँचा दूंगा। लकड़हारा बहुत खुश हो गया। अब क्या था वह तो प्रतिदिन से दोगुनी-चौगुनी लकड़ी काटकर शेर पर लादने लगा, शेर बेचारा चुपचाप लकड़ी ढोता रहता। अब लकड़हारे की आमदनी चार गुनी हो जाने से वह बहुत बड़ा धनपति सेठ बन गया तब सभी लोगों को आश्चर्य हुआ कि यह गरीब लकड़हारा इतना अमीर कैसे हो गया, एक दिन उस लकड़हारे के पड़ौसी ने पूछा भाई! आखिर तुम इतने अमीर कैसे हो गये तो लकड़हारा अभिमान में फुलते हुए बोला-कुछ नहीं भाई! मेरे हाथ आजकल एक गीदड़ का बच्चा लग गया है। बस उसी के कारण यह हुआ। जैसे ही शेर के कान में ये वचन

पड़े उसके हृदय पर गहरा आघात पहुँचा।

दूसरे दिन जब लकड़हारा लकड़ी के गट्ठरों को शेर की पीठ पर लादने को तत्पर हुआ, शेर ने जोर से दहाड़ लगाई और बोला-खबरदार! तुम अपने हाथ में जो कुल्हाड़ी लिये हो उसे पैना करो और मेरी गर्दन पर पूरी ताकत से वार करो और यदि तुमने ऐसा नहीं किया तो मैं तुम्हें खा जाऊँगा। शेर की गर्जना सुनकर लकड़हारा थर-थर कांपने लगा और अपनी मृत्यु के भय से उसने कुल्हाड़ी पैनी की और भर जोर शेर की गर्दन पर दे मारी। शेर की गर्दन लटक गई परंतु जिंदगी के अंतिम क्षणों में शेर ने लकड़हारे से अपनी बात कही कि आज तुम्हारे इस प्रहार से उतना कष्ट नहीं हुआ जितना उस समय हुआ था जब तुमने मुझे गीदड़ का बच्चा कहा था। इसीलिए किसी ने कहा भी है कि-

शब्द सम्हारे बोलिये, शब्द के हाथ न पाव।
एक शब्द अमृत करें, एक हृदय में घाव।।

हम बिना विचारे बोल देते हैं। आचार्य कहते हैं कि शब्दों को संभालना चाहिए-पहले शब्दों को तोलो बाद में कुछ मुख से बोलो। बिना हाथ पांव का शब्द गहरा घाव करता है, शब्दों के घाव भरते नहीं हैं। कभी-कभी हम अपने घरों में ऐसे शब्दों का प्रयोग करते है जो दूसरों को तीर की तरह चुभ जाते है। हमारे तीर्थंकर देव कहते हैं कि हे भोले मानव! यदि बोलना ही है तो मधुर वचन बोलो, अच्छे वचन बोलो। मधुर वचन वशीकरण मंत्र की तरह होते हैं। अत: कठोर वचनों का त्याग कर देना चाहिए। अच्छे वचन बोलने से चेहरे प्रफुल्लित हो जाते है। अप्रिय कटुक, कठोर वचनों से सभी की खुशी, आनंद का संवेदन समाप्त हो जाता है। प्रेम का धागा कच्चा होता है, शीघ्र टूट जाता है। शब्द संभाल कर बोलो। सोच विचार कर बोलोगे तो हर व्यक्ति प्रसन्न हो जायेंगे। संगठित हो जायेंगे, समर्पित हो जायेंगे बोलो तो ऐसा बोलो जैसे मिश्री घुली हुई हो मीठा बोलने में हमारा जाता ही क्या है।

"प्रिय वाक्य प्रदानेन वचनेषु का दरिद्रता"

घर के नौकर से भी आप यदि मीठा बोलोगे तो वह भी आपका आदर करेगा, रूखे शब्दों का प्रयोग करोगे तो वह प्रतिउत्तर नहीं देगा। यह संभव है क्यों कि वह दुर्बल है आपके अधीन है लेकिन उसकी आत्मा, मन, हृदय शायद उतना प्रसन्न नहीं हो पायेगा, जितना पहले था वह मन मसोक कर रह जायेगा। सब कुछ होने पर भी वह यही कहेगा कि मेरा मालिक तो अच्छा है परंतु उसके शब्द सच्चे

नहीं है। भागवत गीता में कहा है-

"सत्यं ब्रूयात प्रियं मा ब्रूयात सत्यमप्रियं।"

अर्थात् सत्य बोलो, प्रिय बोलो परंतु अप्रिय सत्य भी मत बोलो।

सत्य भाषा/मीठी भाषा में यदि आप किसी का कोई दोष भी बता दोगे तो भी वह स्वीकार कर लेगा और यदि आपने अमर्यादा के साथ, कटुक शब्दों के साथ किसी के साथ अच्छा व्यवहार भी किया तो भी वह अच्छा नहीं लगेगा। यदि कोई व्यक्ति आपके दरवाजे पर आये और आप पूछे कि आप क्यों आये हैं? खाना खाकर तो आये होंगे? अथवा वहाँ रखा है खा लेना तो यह आपका रूखा व्यवहार कहलायेगा। परंतु कोई यदि ऐसा कहे-भैय्याजी आप कहाँ से आये हैं? आइए-आइए, बैठिए चलिये भोजन कर लीजिए मैं आपको परोसे देता हूँ। दोनों को खाना खिलाया, एक आनंदित है, दूसरा कान पकड़ लेता है अबकी बार तो आये आगे नहीं आऊँगा। और जिसके प्रति प्रेम पूर्वक मीठा व्यवहार किया है तो वह कहेगा आप जब भी बुलाओगे तो आ जाऊँगा, भोजन छोड़कर भी आ जाऊँगा। एक मीठी भाषा है-सत्य बोलो पर प्रिय बोलो। ऐसा सत्य भी मत बोलो जो अप्रिय हो। कहा जाता है-

काना से काना कहो, तुरतहि जाहे रूठ।
धीरे-धीरे पूछ लो, कैसे गई है फुट॥

कोई व्यक्ति आंखों से काना है। और आपने उससे कह दिया ऐ कनवा, तेरी आंख कैसे फुट गई। तो वह यही कहेगा-तुम्हें सभ्यता नहीं बोलने की, मां-बाप ने क्या यही सिखाया और धीरे-धीरे महाभारत शुरू हो जायेगी। आपका कर्त्तव्य है कि धीरे-धीरे पूछ लो-बड़ी तकलीफ है आपको, आपकी आंख खराब हो गई और धीरे-धीरे वह अपनी सारी आप बीती सुना देगा। कि इस-इस कारण से आंख खराब हो गई कुछ लोग दूसरों का भला तो करते हैं परंतु उसकी पूरी बेइज्जती कर देते हैं, उसके सम्मान का ध्यान नहीं रखते। किसी शराबी से चार लोगों के बीच में कहो कि धिक्कार है तुम्हें जो शराब पीते हो, इसे छोड़ दो। वह नहीं छोड़ पायेगा और यदि छोड़ भी दिया तो आपके शब्द उसे चुभेंगे। उसकी शराब छुड़वाना ही है तो उसे अलग से बिठाकर बोलो-देखो! यह बुरी लत है। किसी ने सिखाया तो नहीं देखो इससे तुम्हारे मां-बाप व धर्म की हंसी होती है। शरीर अनेक व्याधियों का शिकार हो जाता है। वह व्यक्ति खुश हो जायेगा और

उस व्यक्ति का उपकार मानेगा। कोई मंदिर न जाता हो और आपन उसकी हंसी कर दो, तो वह कभी नहीं आ पायेगा। यदि आप उसे प्रेम से समझाओगे तो उस पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा। हम किसी का उपकार करें, सहायता करें, यह दूर की बात है पहले प्रिय वचन बोलना शुरू कर दो। श्रावक का श्रेष्ठ धर्म है। अत: हम अच्छे शब्दों को प्रयोग करें, कठोर शब्दों का नहीं।

रोष में व्यक्ति को होश नहीं रहता। और कभी-कभी न चाहते हुए भी कठोर वचन रोष में मुख से निकल जाते हैं। तो मलहम पट्टी भी आपको करना होगी। इस तरह से क्षमा मांगो कि सामने वाला पानी-पानी हो जाए, यह श्रमण संस्कृति है। शब्द गलत निकल जाए तो क्षमा कीजिए पहले ही बोल देना। अथवा जो भी गलत शब्द मुख से निकले हो उसकी क्षमा मांग लीजिए। सोरी मात्र बोलने से सामने वाला शांत हो जाता है। ऐसे शब्द निकल गये हैं तो क्षमा मांग लीजिए। और यदि कोई क्षमा मांगे तो पिघल जाइए, मत दुहराइए पुरानी बातों को। गड़े पत्थर निकालने से फायदा नहीं। बंदूक की गोली एक बार निकल जाए तो वापस नहीं आती उसी प्रकार मुख से निकले शब्द कभी वापस नहीं हो सकते।

किसी ने आपको गाली दी और फिर कहा कि गाली बुरी लगी हो तो वापस कर दो। और यदि वापस कर दिया तो आपकी सज्जनता नहीं रही। मैंने आपको गाली दी, आप भी दे दो बात समाप्त कर दो और आपने वैसा ही किया तो आप भी दुर्जन कहलायेंगे। सज्जन तो कहेगा मैं आपको गाली नहीं दूंगा। अज्ञानता में रोष-तोष में गाली दी हो तो क्षमा करो। यही आपकी ज्येष्ठता, सज्जनता है कि वह माफी मांगे तो आप माफ कर दो। यदि आपने माफ कर दिया तो इस भव का इस भव में ही रह जायेगा। जब हम शास्त्रों को उठाकर देखते हैं तो छोटे-छोटे शब्दों ने भव-भव में घुमाया।

कमठ ने मरूभूति की पत्नी से गलत व्यवहार किया जिससे सारे गांव के लोगों ने मिलकर उसका मुंह काला करके घर से निकाल दिया। जब मरूभूति परदेश से वापस आया तो उसे पता चला कि मेरे भाई कमठ को देश निकाला दे दिया गया है तो वह तुरंत अपने बड़े भाई के पास गया जहाँ वन में पत्थर की शिला लिये कमठ कुतप कर रहा था। मरूभूति शांत व सरल परिणामी थे वे सोचते हैं कि संसारी प्राणी से ही तो गलती होना संभव है, गलती को सुधार लेना महान बात है मेरा भाई अब ऐसा नहीं करेगा परंतु क्रोधाग्नि में जलता कमठ यही सोचता है कि

मुझे नगर से निकालने वाला तू ही है। मेरी बेइज्जती की मैं दूख लूंगा तुझे। यद्यपि मरूभूति ने क्षमा मांगी-भैय्या कषाय छोड़ दो, घर चलो मैं तुम्हें लेने आया हूं परंतु क्रोध से भरे कमठ पर उसके मृदु वचनों का उल्टा ही असर हुआ और उसने गुस्से में वह भारी पत्थर की शिला मरूभूति के सिर पर दे मारी वैर का बीज प्रारंभ हो गया और लगातार 10 भवों तक यह वैर चला। अत: कषाय न बांधे, कुछ भी बात हो जाए तो तुरंत सुलझा ले। यदि आपने कषाय रखी है तो वह तुरंत निकाल दो यदि वह अतंर्मुहूर्त से अधिक रही तो साधुओं के लिए कहा जाता है वे मुनि फिर मुनि नहीं रहेंगे। साधुजन प्रतिक्रमण व सामायिक में हमेशा एक श्लोक बोलते हैं :-

खम्मामि सव्व जीवाणं सव्वे जीवा खमंतु मे।
मेत्ती में सव्व भूदेसु, वैरं मज्झं ण केण वि।।

यह बात अंतरमन से बार-बार बोलना महत्वशाली है। यदि किसी का अनादर हो जाए तो मैं क्षमा मांगता हूं व सबको क्षमा करता हूं। देशव्रती की 15 दिन से आगे कषाय नहीं जाती व अविरत सम्यग्दृष्टि की ६ माह तक रहती है उससे अधिक बड़ी तो सम्यक्त्व छूट जाता है। अत: सम्यग्दर्शन का रक्षण करने के लिए सदैव कषायों से बचते रहना चाहिए।

कोई भी बात हो जाए तो तुरंत सुलझा लेना चाहिए लेकिन अप्रिय, कटुक व कठोर वचन कभी भी मुख से नहीं निकालना चाहिए। और कभी दूसरों से ऐसा व्यवहार भी नहीं करना चाहिए कि जिससे उसकी कषाय भड़क जाये।

इस प्रकार यदि कुछ प्रयत्न व प्रयास यदि किया जाए तो हम अपने आसपास के वातावरण को प्रशस्त कर सकते है व आनंद का संचरण कर सकते है। किसी कवि ने कहा भी है-

मीठो-मीठो बोल थारो काई बिगड़े, कांई बिगड़े थारो कांई बिगड़े,
संसार किसी का घर नहीं, कब निकले प्राण मालूम नहीं,
मीठो-मीठो बोल थारो कांई बिगड़े।
इसी भावना के साथ....।

"1008 महावीर भगवान की जय"

दिनांक 02-08-2008
शनिवार, प्रात: 9.00 बजे बोरीवली, मुंबई

देशोन्नति और वस्तु रूप विचारूँ

भव्य बंधुओ!

''मेरी-भावना के अंतिम काव्य के अंतिम चरण की ओर हम बढ़ते जा रहे है जिसमें कवि कहते है-

बनकर सब युगवीर हृदय से देशोन्नित रत रहा करें,
वस्तु स्वरूप विचार खुशी से सब दु:ख संकट सहा करें।।1।।

आध्यात्मिक जगत में क्रांति लाने वाले महाश्रमण महावीर भगवान हुए हैं, जिन्होंने हमें आदर्शता के सूत्र दिये। मात्र बाह्य शत्रुओं को जीतने का नाम वीरता नहीं अपितु अंदर में विद्यमान काम, क्रोध, मान आदि को जीतने वाला वीर है, जिसने अपने अंदर के विकारों को जीत लिया वही सच्चा वीर है। आज का व्यक्ति विषय, वासना, कषायों का गुलाम है। सम्पूर्ण प्राणी जगत में पराधीनता छाई है। हम स्वतंत्र होकर भी परतंत्र हैं। महावीर भगवान ने सच्ची स्वतंत्रता का रास्ता बतलाया और कहा-भो भव्य! अंतर जगत को निहारने का प्रयत्न करो। तुम्हारी आत्मा परतंत्र है, कर्मों के आधीन है, पराधीन है। उसे स्वतंत्र करने की वीर शक्ति, वीर कदम उठे तो समझना आप महावीर के लघु नंदन हैं। हमने इन बातों पर विचार नहीं किया जो महावीर ने करके दिखा दिया कि कर्मों को नष्ट ऐसे करें। आत्मा अनंत शक्तिशाली होने पर भी दर-दर की ठोकरें खा रही है। गति-गति में भटक रही है। जिस भी पर्याय में पहुँचती है वहाँ ही पराधीनता नजर आती है। अनंत सुखों का सागर आज दु:खों का सागर बनी है। वीर प्रभु कहते हैं-जागो और अपनी पराधीनता को तोड़ने के लिए वीर पराक्रमी कदम उठाओ जिससे कर्मों की जंजीरों को तोड़ कर्मों की पराधीनता से मुक्त हो सको तभी तुम्हारा सच्चा स्वतंत्रता दिवस होगा। ऐसे भाव जिसके अंदर आ जाते हैं तो अंतरंग की कमजोरी दूर होती

है। महात्मा गाँधी ने भगवान महावीर के सूत्र को फैलाया। अस्त्र से नहीं शत्रु को निरस्त्र से जीतना महानता है। शत्रुभावना से पराधीनता की ही प्राप्ति होती है। अस्त्र-शस्त्र से किसी को जीतना महत्वशाली नहीं। शत्रु को अस्त्र-शस्त्र से झुका सकते हैं लेकिन तब तक, जब तक कि हाथ है। जब सामने वाले के पास बल आ जायेगा तो वह बदला लेगा। यही कारण है कि भगवान महावीर का संदेश ''**अहिंसा परमोधर्मः**'' व ''**जियो और जीने दो**'' को महात्मा गाँधी ने स्वीकारा है। वे रायचंदजी से बहुत प्रभावित थे व उन्हें अपना गुरु मानते थे। एक बार की बात है-महात्मा गांधीजी बैरिस्ट्री पढ़ने विदेश जा रहे थे तो आशीर्वाद लेने अपनी माता पुतलीबाई के पास पहुँचे। मां पुतलीबाई, गांधी जी को महाराज की पास ले गई और महाराज से बोली महाराज मोहन को आशीर्वाद दीजिए कि वह विदेश में जाकर भी अपनी संस्कृति को कायम रखे। महाराज के सामने मोहन परस्त्री सेवन त्याग व अंडे, मांस आदि की किसी भी कीमत पर सेवन न करने का नियम लेते है। वे महाराज के चरणों में प्रणाम करते हैं और कहते हैं-अब मेरे सामने दो गुरु है-1. धर्म गुरु, 2. जन्म देने वाली माँ है। दोनों के समक्ष ली गई प्रतिज्ञा को नहीं तोड़ेंगे। विदेश डॉ. ने उन्हें अंडे खाने की सलाह दी। तब गांधीजी बोले-मुझे मरना मंजूर है, परंतु अंडे नहीं खाऊँगा। यह महात्मा गांधी की अहिंसा व धर्म पर अकाट्य श्रद्धा थी व व्रतों के प्रति अकाट्य श्रद्धा थी। आज का व्यक्ति संसार की आपाधापी में अपने लिये व्रतों को तोड़ने को तैयार हो जाता है। हमें शिक्षा लेना चाहिए कि राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने मरना स्वीकार किया परंतु अंडे खाना स्वीकार नहीं किया। उन्होंने अहिंसा के क्षेत्र में कदम बढ़ाया तो लोगों ने कहा-ऐसे देश स्वाधीन नहीं हो पायेगा। तब गांधी जी ने कहा-मुझे विश्वास है-अहिंसा के बल पर जब प्राणी कर्म क्षय कर परमात्म पद पा सकता है तो क्या हम देश को स्वतंत्र नहीं कर सकते। और एक दिन उन्होंने सत्य, अहिंसा, के बल पर स्वतंत्रता प्राप्त कर ली। अहिंसा व सत्य में बड़ी शक्ति है। अस्त्र से जीता शत्रु पुनः बार कर सकता है। परंतु जिसे श्रद्धा, व्यवहार, नियम, कानून से झुका दिया वह अंदर से झुक जाता है फिर विरोधी शक्ति उत्पन्न नहीं होती। हम किसी को ऐसा झुकायें कि शत्रु-भाव ही समाप्त हो जाए। शांतिधारा में कहा जाता है-मम शत्रुभावं-छिंदी-छिंदी, भिंदी-भिंदी। आचार्य कहते हैं-एक शत्रु आपका नष्ट होगा तो नये 4 शत्रु उत्पन्न हो जायेगा परंतु यदि शत्रु भाव नष्ट हो गया तो शत्रुपने का ही अभाव हो जायेगा। जिस

देश को स्वाधीन बनाने के लिए महात्मा गांधी जैसे लोगों ने श्रम किया उसके पीछे प्राणी जगत के प्रति छिपा प्रेम, वात्सल्य, करुणा की भावना थी।

पुराने व नये नेताओं की भावनाओं में अंतर आ गया है इसलिए देश की शांति का स्तर गिर गया है। गांधीजी ने प्रजापालन के लिए परिपूर्ण वस्त्र पहनना बंद कर दिया वे एक मात्र छोटा दुपट्टा व चादरा लपेटते थे। किसी ने कहा-आप राष्ट्रपिता हैं। आपके पास बड़े-बड़े खजाने है आप बहुत कुछ पहन सकते है, अच्छे वस्त्र पहन लीजिए। किसी ने कीमती धोती दी तो बोले-इतनी कीमती धोती है। इतने में सामान्य 10 धोतियाँ आ सकती हैं। 10 देश के गरीब लोगों को तन ढंकने को वस्त्र मिल जाता। गांधी जी ने कहा-ये धोती इतनी बड़ी है, इसके चार टुकड़े करें तो ३ टुकड़े अन्य के काम आ जायेंगे। ये चिंतन गांधीजी के अंदर अपरिग्रहवाद से उत्पन्न हुए। जबकि आज का समय ऐसा है, वोट मांगने नेता भिखारी की तरह आगे आ जाते हैं, बड़े-बड़े आश्वासन देते हैं। वोट मिलने के बाद जनता, नागरिक को नहीं दिखते, बाद में वह अवस्था नहीं रहती अत: जीवन में शांति भंग हो रही है। इस देश में पहली घी, दूध की नदियाँ बहती थी, आज का समय बदल गया, आज खून की नदियाँ बहती हैं। चर्म, मांस का निर्यात हो रहा है। पहले के समय में मक्खन, दही, मट्ठा बिकता था और आज मांस। पहले एक कसाई हो तो दूर निकाल देते थे कोई छूता भी नहीं था। पहले भारत में 360 कत्लखाने थे और आज उनकी संख्या बढ़कर 36000 हो गई। हम शांति की बात करते है हमारा देश अहिंसा के बल पर स्वतंत्र हुआ, आज हिंसा होती रहे तो देश स्वतंत्र होते हुए भी परतंत्र ही रहेगा। आज आवश्यकता है कि हम पुराने विचारों की ओर कदम बढ़ाएं। आज मांस का निर्यात हो रहा है। प्रात: काल सूर्योदय होते ही लाखों प्राणी मौत के घाट उतार दिये जाते हैं। यांत्रिक कत्लखानों में वे प्रतिदिन मारे जाते है व विदेशों में निर्यात होता है।

अब हम कैसे कह सकेंगे कि यह देश रामचंद्र, ईसामसीह, हजरत मुहम्मद, गुरुनानक का देश है। जिन्होंने अहिंसा को जन-जन तक पहुँचाया था, अहिंसा का शंखनाद किया था, वहाँ आज हमारा देश, दूसरे रास्ते पर भटक रहा है। आज देश के नाम संदेश आज देश को ऐसी प्रवृत्तियों से बचाओ ताकि वह पुन: घी व दूध की नदियों को बहाने वाला हो जाए और यह तभी होगा जब हिंसा का तांडव, मांस-निर्यात बंद हो जाए, यह क्षत्रियों का देश रहे, चमड को बेचने वाला

चमारों का देश न रहे। पहले यह सोने की चिड़िया, रत्नों-खजानों का देश कहलाता था परंतु यदि हम न संभले तो यह लोहे की चिड़िया कहलायेगा।

नेता-नागरिकों का निर्माण करने वाले होते हैं देश के सच्चे उत्थान-उन्नति करने वाले होते हैं मुनिजन/साधुजन उपदेशों के माध्यम से देश की उन्नति करते हैं। पूज्य पाद आचार्य महाराज कहते हैं-

हे भगवान शांतिनाथ! हमारे पुर, नगर, गांव में रहने वाले प्राणियों, राजा-महाराजा, नागरिकों को शांति प्रदान कीजिए। शांति तब बन पायेगी जब हम दूसरों के दुःख समझने लग जायेंगे तो हमारे कष्ट भी दूर होंगे और हमारा देश शांति के लक्ष्य को पा सकेगा और उन्नति कर सकेगा।

'बनकर सब युगवीर हृदय से, देशोन्नति रत रहा करें।'

इन पंक्तियों के पीछे यही बात छिपी है। आज का जो युवा वर्ग है वे हृदय से देशोन्नति में संलग्न रहे मात्र भाषण या मंच से नहीं अपितु अंतर मन से देशोन्नति के रास्तों को खोले, तो देश उन्नति व उत्थान को प्राप्त करेगा।

कुछ ऐसे कदम बढ़ाइये जिससे प्रत्येक नागरिक देश, समाज के बीच न्याय नीति उत्पन्न हो, जहाँ न्याय, नीति, सत्य, अहिंसा होगी वहाँ नियम से शांति, आनंद, हर्ष व खुशी की वर्षा होगी। आज भारत को स्वाधीन हुए ६३ वर्ष पूर्ण हो गये, 64 वें वर्ष में प्रविष्ट होने वाले भारत में अहिंसा का विकास हो, शाकाहार का प्रचार व प्रसार हो। जब शाकाहार होगा तो तामसिक वृत्ति स्वयमेव नष्ट हो जायेगी और सात्विकता आ जायेगी।

आज का व्यक्ति एक-दूसरे को संदेह की दृष्टि से देखता है, रास्ते से चलने वाला घबराता है। कि कहीं आतंक न हो जाए, संकट न आ जाए हर व्यक्ति आज घबराया है। हम अच्छे आचरण की ओर कदम बढ़ाएँ तो दूसरे के मन में भी सहायता के विचार उत्पन्न होंगे। देश का राजा यदि न्याय-नीति में कुशल हो तो देश में सर्वत्र शांति बरसेगी।

पहले का प्रशासन राजा अपने राज्य का ध्यान रखता था कि राज्य में क्षेम-कुशल तो है या नहीं जब हम पुराणों के पन्नों को पलटते हैं तो पाते हैं कि उस समय देशों में अन्याय-अशांति नहीं मिलती थी। आज सर्वत्र अन्याय, अराजकता अनीति दृष्टिगोचर होती है और इसका मुख्य कारण अर्थ है अर्थात् धन संपदा है। व्यक्ति आज पैसों के पीछे इतना पागल है कि कर्त्तव्याकर्त्तव्य, न्याय-नीति आदि

सब को भूलता जा रहा है। परंतु आचार्य भगवन् कहते हैं ऐसे अर्थ से भी क्या प्रयोजन जो दु:खों का मूल है। कहा जाता है-

''अर्थस्योपार्जने दु:खं अर्जितस्य च रक्षणे।
आये दु:खे व्यये दु:खे धिगर्थं किं प्रयोजनम्॥''

जब आध्यात्मिक विचार वाले लोग आध्यात्मिक चिंतन में डूबते हैं तो अंतरंग में उतर जाते है मुनि कोलेरस के सान्निध्य में जब सम्राट सिकंदर आया तो वह अपार धनसंपदा के विषय में विचार करता है। जो धन कमाता है तो कमाने में दु:ख है अब धन आ गया तो रक्षण में दु:ख है। बड़े-बड़े राजाओं को सबसे अधिक चिंता अपने धन की रहती है। कि इस संपत्ति को कहाँ छिपा कर रखें। धनिक को चिंता रहती है कि कहीं कोई धन मांगने न आ जाए, कहीं कोई मेरे धन को छीन न ले, कहीं मेरा जीवन न चला जाए। आय में भी दु:ख है और जब धन नष्ट होता है तो उसको नष्ट होने में भी दु:ख है। जब व्यक्ति बाजार सब्जी लेने जाता है तो मोल भाव करता है इतने की नहीं, कुछ और कम करके दो, थोक भाव में दे दो। वह भी देने को तैयार हो जाए तो भावना होती है कुछ और कम कर दो।

जब व्यक्ति मंदिर की गोलक में पैसे डालता है तो भी उन खोटे पैसों को डालता है जो कि बाजार में चलते नहीं। कहने का तात्पर्य है कि छोड़ना कठिन है। विरले ही व्यक्ति होते हैं जो कि सब कुछ छोड़कर हल्के हो जाते हैं और एक दिन मुक्ति को पा लेते हैं। मुनि कोलेरस अंतिम वेला में सम्राट सिंकदर को समझाते हैं- जब तुम इस दुनियाँ से जाओगे तो कुछ भी तुम्हारे साथ नहीं जायेगा, मात्र जो पुण्य तुमने उपार्जन किया है वहीं तुम्हारे साथ जायेगा इतना सुनते ही सम्राट सिकन्दर सावधान हो जाता है हमारे सुनने से उसका सुनना श्रेष्ठ था। एक कान से सुनकर दूसरे से नहीं निकाला-वह विचार करता है कि मुनि महाराज बहुत ऊँची बात कह रहे हैं। सत्य कह रहे हैं, वह चिंतन में डूब जाता है। आज तक कितने बड़े-बड़े राजा, महाराजा, सम्राट व चक्रव्रर्ती हुए परंतु वे अपने साथ कुछ भी नहीं ले गये। वह सोचता है-

इस धरा का इस धरा पर, सब धरा रह जायेगा।
मुट्ठी बांधे आया जगत में, कर पसारे जायेगा॥

वह तुरंत ही अपने मंत्रियों और सामंतों को बुलाता है और उनसे कहता है मेरे जीवन के अंतिम क्षणों में मैं एक आज्ञा तुम्हें देता हूं उसका पालन तुम्हें करना

है। मंत्रीगण हाथ जोड़े खड़े थे-वे कहते हैं सम्राट की आज्ञा सर आँखों पर आप हुकुम कीजिए। सम्राट सिंकन्दर कहते है कि जब मेरा देहावसान हो जाए तो मेरी अर्थी से मेरे दोनों हाथ बाहर निकाल देना ताकि दुनियाँ यह जान जाए कि सिकन्दर जब इस दुनियाँ से गया तो उसके दोनों हाथ खाली थे। यह संदेश एक दिगम्बर जैन मुनि का था जिन्होंने सिकन्दर को मृत्यु वेला में उपदेश दिया था। हम शास्त्र तो पढ़ लेते है परंतु अंतरंग में ये बातें उतर नहीं पाती। हम सोच नहीं पाते कि बाहर में कितना भी संग्रह कर लो परंतु जो भाग्य में होगा वही तो मिलेगा। हमारे साथ कुछ भी नहीं जायेगा अपितु शुभाशुभ भावों से जो पुण्य-पाप संग्रह किया है वही साथ जायेगा। जो व्यक्ति बुरे काम करता है, अन्याय अनीति पूर्ण आचरण करता है तो श्रेणिक चरित्र में कहा है कि ऐसा व्यक्ति जीवित होते हुए भी मृत तुल्य है तीर्थंकर की माता का जब गर्भकल्याणक होता है उस समय अष्टकुमारी देवियाँ गर्भ शोधन करती है तथा 56 कुमारी देवियाँ माता की सेवा करती हैं उनमें से एक देवी माता से प्रश्न पूछती है कि हे माता! बताइए इस जगत में ऐसे कौन से व्यक्ति हैं जो जीते जागते भी मृत तुल्य हैं? माँ त्रिशला गद्गद् हो जाती है और कहती है-हे देवी! प्रश्न अच्छा व समयोचित है इसमें प्राणी मात्र की भलाई व उत्थान छिपा है। मां कहती है-जो अपने जीवन में बुरे काम करते हैं-शराब, मांस, अंडे खाते हैं, निर्बल प्राणियों को सताते है। अन्याय-अनीति पूर्ण आचरण करते हैं वे इस संसार में जीवित होते हुए भी मृत तुल्य हैं तात्पर्य यह है कि ऐसे जीवन से कोई लाभ नहीं जो अन्याय-अनीति से भरा हो।

इसके विपरीत जो जीवन में अच्छे काम कर लेते हैं, जीवन को सदाचारी बना लेते हैं, न्याय नीतिवंत होते हैं। दूसरों को कष्ट में देखकर पिघल जाते हैं। मलहम पट्टी करते हैं वे परोपकारी होते हैं वे मरकर भी अमर हो जाते हैं। देश भर उन्हें स्मरण करता है। फिर कहा जाता है-अमुक व्यक्ति बहुत अच्छे थे, वे हमारे देश के एक ऐसे व्यक्ति हुए जिन्हें सारा देश सिर झुकाता है। कहने का तात्पर्य है हम अपने बुरे संस्कारों की परतंत्रता से दूर हो तो एक दिन मुक्ति मंजिल रूपी स्वतंत्रता हमें प्राप्त हो सकती है। आगे कवि कहता है-

''वस्तु स्वरूप विचार खुशी से सब दुःख संकट सहा करें।''

जीवन में कभी दुःख के क्षण भी आते हैं तथा कभी सुख के। सभी दिन एक जैसे नहीं होते। परंतु प्रायः होता ऐसा है कि सुख आने पर व्यक्ति फूला नहीं

समाता और दु:ख व संकट/विपत्ती के आने पर घबरा जाता है। तो आचार्य भगवन् कहते हैं-दु:ख, विपत्ती, संकट से घबराइये नहीं। अपितु वस्तु स्वरूप का विचार कर हे भव्य! साम्य भाव धारण कर लीजिए। छहढाला में पं. दौलतराम जी ने लिखा है- **पाप पुण्य कलमाहिं हरख, विलखो मत भाई।**

यह पुद्गल पर्याय उपजि, विनसै फिर थाई।।

सुख में फुलो मत दु:ख में कूलो मत। क्यों कि ये पाप व पुण्य दोनों ही पुद्गल की पर्यायें है तुम्हारा वास्तविक स्वभाव नहीं है। जो व्यक्ति/प्राणी स्वभाव का आश्रय लेते है उनके अंदर समता का प्रादुर्भाव होता है और एक दिन अवश्य वे कर्मों का क्षय कर निर्वाण सुख को पा लेते है।

''मेरी-भावना'' की ये पंक्तियाँ बहुत महत्वशाली है तथा संपूर्ण तत्वाभ्यास का सार स्वरूप है इन्हें अपने जीवन में अपना कर आप उस वास्तविक शाश्वत सुख की ओर अपने कदम बढ़ा सकते हैं।

इसी भावना के साथ....।

''1008 पुष्पदंत नाथ भगवान की जय''

दिनांक 03-08-2008

रविवार, प्रात: 9.00 बजे बोरीवली, मुंबई

उपसर्ग विजेता, परम पूज्य गणाचार्य श्री 108 विराग सागरजी महाराज द्वारा लिखित, सम्पादित एवं संकलित तथा श्री सम्यग्ज्ञान दिगम्बर जैन विराग विद्यापीठ द्वारा प्रकाशित प्रवचन सत् साहित्य

सं.	नाम	मूल्य
1.	संस्कृत सर्वोदया टीका (वारसाणुवेक्खा) भाग 1-2	150
2.	संस्कृत रत्नत्रयवर्धिनी टीका (रयणसार) भाग 1-2	185
3.	संस्कृत श्रमणप्रबोधनी टीका (पाहुडद्वय)	
	(शोधपूर्ण साहित्य)	
4.	शुद्धोपयोग	40
5.	सम्यग्दर्शन	35
6.	आगम चक्खू साहू	25
7.	सल्लेखना से समाधि	30
8.	संत साधना के प्रेरक प्रसंग	20
9.	परम दिगम्बर जैन मुनि (हिन्दी, मराठी, कन्नड़, तमिल, अंग्रेजी)	45
10.	सर्वोदयी दिगम्बर जैन धर्म	30
11.	तीर्थंकर दिव्य दर्शन	30
12.	तीर्थंकर दर्शन	
13.	व्यसन विचार	25
14.	फूल नहीं, हैं काँटे	
15.	संस्कार सुरभि (हिन्दी, गुजराती, मराठी)	18
16.	जिनेन्द्र दर्शन, जिनेन्द्र पूजन	10
17.	आध्यात्मिक शंका-समाधान	30
18.	आध्यात्मिक तत्त्व-चर्चा	40
	(चिंतन साहित्य)	
19.	चैतन्य चिन्तन भाग-1	15
20.	चैतन्य चिन्तन भाग-2	15
21.	चैतन्य चिन्तन भाग-3	15
	(बालोपयोगी साहित्य)	
22.	बाल विज्ञान भाग-1 (हिन्दी, इंग्लिश, मराठी, कन्नड़)	10
23.	बाल विज्ञान भाग-2 (हिन्दी, इंग्लिश)	10
24.	बाल विज्ञान भाग-3	10
25.	बाल विज्ञान भाग-4	10

26.	कर्म विज्ञान भाग-1 (हिन्दी, इंग्लिश)	10
27.	कर्म विज्ञान भाग-2	10
28.	कर्म विज्ञान भाग-3	10
	(कथा साहित्य)	
29.	नैतिक कथा मंजूषा भाग-1	30
30.	नैतिक कथा मंजूषा भाग-2	30
	(अनुवाद साहित्य)	
31.	वारसाणुवेक्खा	
32.	परमरत्नार्चना संग्रह	20
33.	सामायिक पाठ (हिन्दी, गुजराती)	10
	(पद्य साहित्य)	
34.	भावों के विशुद्ध क्षण	15
35.	मुक्तकाञ्जलि भाग-1	15
36.	मुक्तकाञ्जलि भाग-2	15
37.	नव देवता निर्वाण क्षेत्र पूजा	
	(संकलित/सम्पादित साहित्य)	
38.	साधना से समाधि	20
39.	विमल नित्य पाठावलि	25
40.	आराधना	35
41.	सुभाषित संग्रह	40
42.	आप्त अर्चना	
43.	मानतुंग की अमर भक्ति (सचित्र भक्तामर)	65
44.	साधना	10
45.	अनुप्रेक्षा	10
46.	जिनागम दीप	251
47.	सम्मेद शिखर विधान	
48.	चारित्र शुद्धि व्रत	25
49.	करुणामूर्ति सन्त	100
50.	तपस्वी सम्राट	10
51.	यज्ञोपवीत विधि	
52.	साधना के सोपान	
53.	पदम् पुराण प्रश्नोत्तरी	100
54.	स्तोत्र भारती	51

(एकांकी/नाटक साहित्य)

55. सत्यमित्र-सत्यदृष्टि
56. प्रद्युम्न हरण

(पूज्य आचार्य श्री पर आधारित साहित्य)

57.	विरागाभिवंदन अभिनंदन	
58.	निस्पृही संत भाग-1-2	60
59.	विराग सेतु (महाकाव्य) (हिन्दी, गुजराती, प्राकृत) भाग-1	100
60.	विराग सेतु (महाकाव्य) भाग-2	
61.	संत काव्य की परम्परा में आचार्य विरागसागर	65
62.	कमल के महाकमल	
63.	घटनायें ये जीवन की	80
64.	दिगम्बरत्व के चितेरे	150
65.	विराग सिंधु की उर्मियाँ	15
66.	विराग वाटिका	41
67.	भक्ति की झंकार	25
68.	विराग काव्यांजलि	
69.	धर्म पीयूष	30
70.	ऐसे चलो मिलेगी राह	40
71.	दूर नहीं है मंजिल	30
72.	उड़ रे पंछी	10
73.	तीर्थंकर वर्धमान	15
74.	पहले देव-पूजा फिर काम दूजा	25
75.	तीर्थंकर ऐसे बनो	60
76.	तट की ओर	10
77.	सिर्फ दो प्रवचन	10
78.	इष्टोपदेश (प्रवचन)	
79.	मानतुंग की अमरभक्ति	150
80.	कल्याणक महोत्सव	20
81.	दान तीर्थ	20
82.	धर्म के दश सोपान	20
83.	जीवों पर दया करो, शुद्ध शाकाहार करो	20
84.	बुराईयाँ ही जेल, अच्छाईयाँ ही मुक्ति	10
85.	प्रवचन वर्षा	25

86.	कर्तव्यमेव कर्तव्यं	25
87.	श्रद्धा प्रसून	25
88.	मोक्ष की राह	25
89.	विरागामृत-1	30
90.	विरागामृत-2	
100.	समाधि तंत्र (प्रवचन)	
101.	समयोचित शिक्षायें भाग-1	20
102.	समयोचित शिक्षायें भाग-2	20
103.	समयोचित शिक्षायें भाग-3	20
104.	विराग मंथन (हिन्दी, अंग्रेजी)	5
105.	रजत पुष्प	51
106.	कहानी सबसे सुहानी	30
107.	अक्षय निधि (हिन्दी, अंग्रेजी)	10
108.	संस्कार की लहरें	20
109.	चलो चलें प्रभु दर्शन को	30
110.	आध्यात्मिक धर्म प्रवचन	30
111.	घर-घर की कहानी	30
112.	वारसाणुवेक्खा प्रवचन	125
113.	पर्यूषण निधि	15
114.	पद्मनंदि पंचविंशतिः अधिकार 1. धर्मोपदेशामृतम्	200
115.	पद्मनंदि पंचविंशतिः अधिकार 2. दानोपदेशम्	40
116.	पद्मनंदि पंचविंशतिः अधिकार 3. अनित्य पञ्चाशत्	50
117.	पद्मनंदि पंचविंशतिः अधिकार 4-5. एकत्व सप्तति तथा यतिभावनाष्टकम्	85
118.	पद्मनंदि पंचविंशतिः अधिकार 6. उपासक संस्कार	60
119.	पद्मनंदि पंचविंशतिः अधिकार 7. देशव्रतोद्योतनम्	60
120.	पद्मनंदि पंचविंशतिः अधिकार 8-9 सिद्धस्तुति एवं आलोचना	85
121.	मेरी भावना	
122.	आचार्य विराग सागर साहित्य दर्शन	10
123.	मेरी भावना प्रवचन	
124.	फॉर यूथ प्रोग्रेस	22
125.	रत्नकरण्डक श्रावकाचार प्रवचन भाग-1	100

126.	सामायिक पाठ प्रवचन	85
127.	विराग संध्या	20
128.	विराग अर्चना	40
129.	स्वर्ग पुष्प	30
130.	षट्लेश्या प्रवचन	
131.	ऐसे बनायें घर को स्वर्ग	
132.	क्यूँ इतना अभिमान है....	30
133.	सिद्धों का खजाना	30
134.	अपने नैतिक कर्त्तव्य	30
135.	श्रुतज्ञानवर्धक विधान	20

Video D.V.D

1. आचार्य पदारोहण द्रोणगिरि
2. राष्ट्रीय रजत मुनि दीक्षा जयन्ती, उद्गाँव
3. उपसर्ग पर उत्कर्ष की यात्रा
4. आर्यिका विशाान्तश्री माताजी, समाधि
5. व्यसन मुक्ति शाकाहार अभियान
6. लोक और मध्यलोक
7. ज्योतिर्लोक और चन्द्रयात्रा
8. जेल प्रवचन
9. स्कूल प्रवचन
10. शाकाहार रैली
11. अहिंसा रैली
12. न्यायालय में प्रवचन
13. 25 दीक्षायें- श्रवणबेलगोला
14. 11 दीक्षायें-गाँधीनगर
15. 8 दीक्षायें-गिरनारजी
16. 11 दीक्षायें-किशनगढ़
17. 26 दीक्षायें-उदयपुर
18. 25 दीक्षायें-जयपुर
19. 8 दीक्षायें-इन्दौर

20. स्वर्णिम जन्म जयन्ती
21. सिद्धांत एवं आध्यात्मिक प्रवचन ,
22. मातृभक्ति (वारसाणुवेक्खा, सामायिक पाठ,
23. देश के नाम कलंक बूचड़खाने तत्त्वार्थ सूत्र, पद्मनंदि पंचविंशतिका भाग-1-14)

Audio DVD

1. श्यामा के लाल
2. साधना के सरताज
3. गुरुवर का जयकारा
4. प्रवचन वर्षा (दशधर्म, सोलहकारण)
5. श्री विराग सागर नमोऽस्तु ते
6. करें गुरु भक्ति
7. चलें गुरुवर के द्वार
8. गीत गुरु के गायेंगे
9. जियो हजारों साल गुरुवर
10. मेरे मन वीणा के तारे
11. विराग स्वर्णोत्सव
12. रजतवर्ष मुनिदीक्षा का
13. आचार्य श्री विरागसागरजी महाराज पूजा
14. हे सन्मति-सन्मति दो
15. स्वर्णिम जयन्ती याद रहेगी
16. प्रथम सूरि बुंदेलखण्ड के
17. गुरु नाम की धूम मची है

साहित्य प्राप्ति स्थान

1. **श्री सम्यग्ज्ञान विराग विद्यापीठ**
   चैत्यालय मंदिर, बताशा बाजार, भिण्ड (म.प्र.)
   सम्पर्क सूत्र : पं. वीरेन्द्र जैन (मो. 9754803220)

2. **आचार्य श्री विराग सागर विद्यापीठ (बी.एड.कॉलेज)**
   पुष्प विहार कॉलोनी, बीना-470113, जिला-सागर (म.प्र.)

3. **विराग फाउण्डेशन,** द्वारा-श्री अरुण कोटड़िया, II-A विक्रम नगर सोसायटी, उस्मानपुरा, अहमदाबाद-380013 (गुजरात)

4. **श्री भूपेन्द्र शांतिलाल शाह,** 12-B, वर्धमान सोसायटी, डेरी रोड, मेहसाना-2 (गुजरात) सम्पर्क सूत्र- श्री भूपेन्द्र शाह (मो. 9898494914, 9829452020)

5. **विराग महिला मंच,** बोरीवली, मुम्बई (महा.)

6. **श्रीमती पुष्पा पाटनी,** 574, शांतिनगर, जैन मंदिर के सामने, गोपालपुर वायपास, जयपुर (राज.) मो. 09460765050

7. **श्री मनीष पाटनी,** नया बाजार, 54, धर्मकांटा के पास, अजमेर (राज.) मो. 09414002306

8. **श्री तिलोक प्रिंटिंग प्रेस, विष्णु व्यास**
   मोहता हॉस्पिटल के पास, मोहता चौक, बीकानेर (राज.) मो. 9314962475

9. **राष्ट्रीय विराग युवा मंच, अध्यक्ष - श्री राजेश जैन**
   अंजनी नगर, इन्दौर मो. 09425316970

10. **राष्ट्रीय युवा मंच अध्यक्ष - श्री पंकज पाटनी**
    72, विंध्याचल नगर, एरोड्रम रोड, इन्दौर मो. 09425476665

11. **डॉ. महेन्द्र कुमार जैन 'मनुज'**
    22/2, रामगंज, जिन्सी, इन्दौर-7 मो. 09826091247

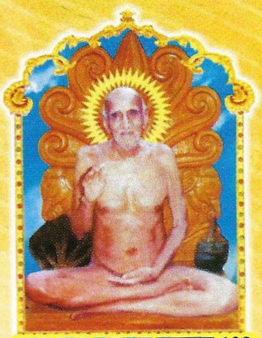

परम पूज्य वात्सल्य रत्नाकर 108
आचार्य श्री विमलसागर जी महाराज

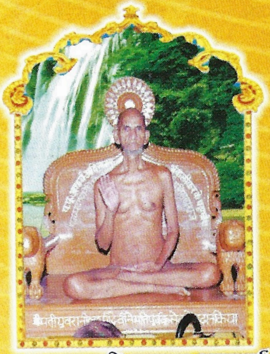

प.पू. तपस्वी सम्राट आचार्य
श्री 108 सन्मतिसागरजी महाराज

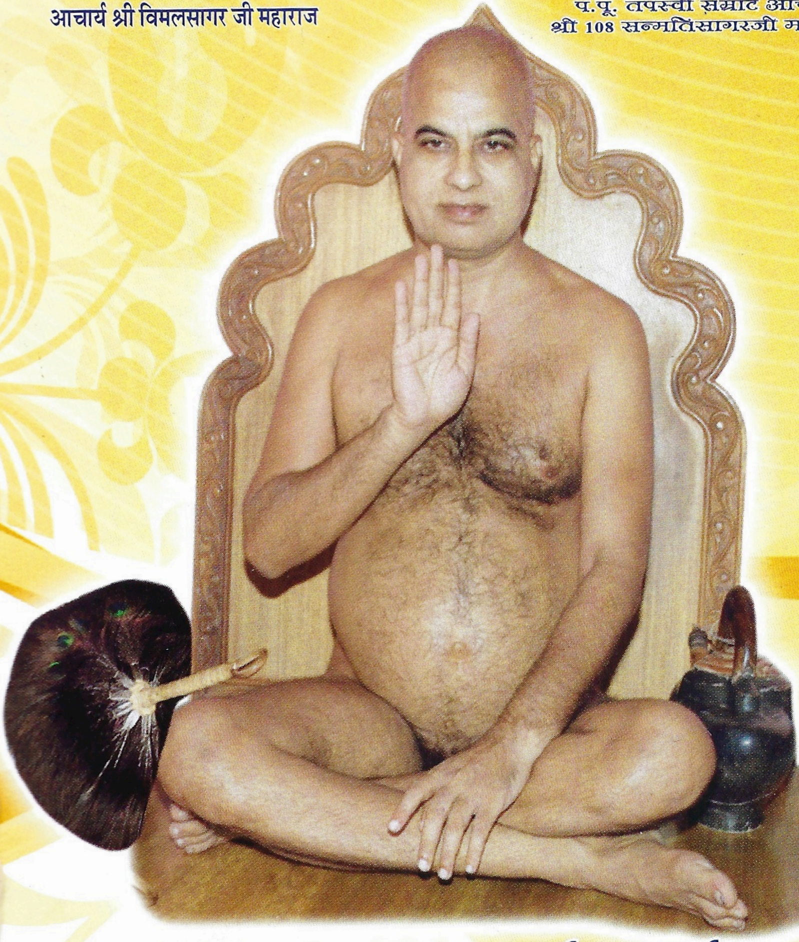

प.पू. युगप्रमुखश्रमणाचार्य गणाचार्य
श्री 108 विरागसागर जी महाराज

मेरी भावना (प्रवचन)

प. पू. राष्ट्रसंत युगप्रमुख श्रमणाचार्य, गणाचार्य श्री 108 विरागसागरजी महाराज

तिलोक प्रिंटिंग प्रेस : 9314962474/75